कालपी

श्री अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद'

सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र
(संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार का स्वायत्तशासी संस्थान)

कालपी

अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद'

सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र
नई दिल्ली

सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र
15ए, सेक्टर-7, द्वारका, नई दिल्ली-110075
द्वारा प्रकाशित

मूल्य : ₹ 225/-

प्रथम संस्करण : 2018

ISBN : 978-81-937829-0-3

© सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र

आवरण : सिद्धि गणेश मंदिर का बाहरी दृश्य, कालपी (उत्तर प्रदेश, भारत)

इस प्रकाशन में प्रस्तुत मत या विचार मात्र लेखक के हैं और वे सांस्कृतिक स्रोत एव प्रशिक्षण केन्द्र, नई दिल्ली के विचार या मत को उद्घाटित करें, यह आवश्यक नहीं।

शहरों की अनकही दास्ताँ पुस्तकों-शृंखला के बारे में

भारत राष्ट्रीयता के साथ स्थानीय संस्कृतियों से संपन्न देश है। विभिन्न क्षेत्रों, नगरों की विशेषताएँ इस देश को महत्त्वपूर्ण बनाती हैं। ये मात्र भौगोलिकता तक सीमित नहीं। इनमें रुचियों के विभिन्न पहलू देखे जा सकते हैं, जैसे वहाँ की वास्तुकला, धर्म, लोकगीत, वेशभूषा, भाषा, प्रकृति, पर्यावरण आदि। कई बार ये आपस में जुड़ते हैं तो कई बार सीमाओं का अतिक्रमण भी करते हैं। स्थानीयता के बावजूद उनमें ऐसे तत्त्व होते हैं जो भारतीयता के सहज आधार बनते हैं। यदि गाँव सांस्कृतिक एकरूपता के प्रतीक हैं तो शहर सांस्कृतिक विविधता के प्रतीक। ये एक तरह से हमारी ऐतिहासिक/सांस्कृतिक धरोहर हैं।

संस्कृति मंत्रालय व सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केंद्र की संयुक्त अवधारणात्मक फलश्रुति हैं – इस शृंखला के तहत विभिन्न लघु नगरों/नगरों पर प्रकाशित होने वाली पुस्तकें। हमने पाया कि इन लघु नगरों/कस्बों/नगरों की श्रेष्ठ सांस्कृतिक विरासत को पुस्तक-वैचारिकी के रूप में सबके सामने तथ्यपरक ढंग से प्रस्तुत किया जाए ताकि वहाँ का सांस्कृतिक/शैक्षिक व अन्य विविध वैभव उजागार हो सके। इस माध्यम से न केवल उस लघु नगर/नगर के लोग अपनी सांस्कृतिक आभा से परिचित हो सकेंगे वरन् वे लोग भी जो ठीक से उन शहरों की संस्कृतियों से रूबरू नहीं हो पाए हैं उनको जान सकेंगे।

आज के समय में तीव्र सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन शहरी जीवन की विशेषता बनते गए हैं तथा पारंपरिक व शाश्वत महत्त्व पृष्ठभूमि में चले गए हैं। हमारी कोशिश है कि इन दोनों धाराओं को इन पुस्तकों में समाहित करते हुए हम परिपूर्णता का प्रयत्न करें। शहरी जीवन के लाभ ने मानदण्डों, विचारसरणियों और व्यवहार पैटर्नों के संबंध में परिवर्तन किए हैं किंतु पारंपरिक प्रसंगों, लोकगीतों, स्थानीय जीवन की प्रत्याशाओं के बगैर इनको नए रूप में पहचाना नहीं जा सकता। कई लघु नगर/नगर/वृहत् ग्राम भारत की आज़ादी के आंदोलन की पृष्ठभूमि में रहे हैं तथा कई कलाओं, संस्कृतियों को विन्यस्त करने की दिशा में अग्रणी। कई ने स्थानीयता के अलावा भारतीय जीवन के संस्कार निर्मित किए हैं तो कइयों ने हमारी आज की दृष्टियाँ निर्मित की हैं।

इन विशिष्ट लघु नगरों/नगरों पर आधारित पुस्तक-शृंखला में 'कालपी' पुस्तक आपको सौंपते हुए मुझे हर्ष है। मुझे आशा व विश्वास है कि यह पुस्तक सिर्फ़ शहर की गाथा न होकर संस्कृति, जिजीविषा, नवाचार, परंपरा, जिज्ञासा, समझ व नए समय को दर्शाती जीवन-दृष्टि की वाहक के रूप में पाठकों के बीच आदर का विषय बनेगी।

गिरीश चंद्र जोशी
निदेशक, सीसीआरटी

संकेत सूची

1.	1857–जालौन	–	1857 तथा जालौन जनपद का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (ले. – देवेन्द्र कुमार सिंह)
2.	आइने कालपी	–	ले. इनायतुल्ला
3.	कालपी कीर्ति अंक	–	एस.एस.वी. इण्टर कॉलेज कालपी की पत्रिका–स्वर्ण जयंती अंक
4.	कालपी माहात्म्य	–	कालपी माहात्म्य (हिन्दी भवन, कालपी)
5.	जा.सा. अंक	–	जालौन जनपद के साहित्यकार अंक ('सबकी खैर खबर' पत्रिका–सं. नासिर अली 'नदीम')
6.	जगनिक	–	ले. अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद' (साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली प्रकाशन)
7.	प्रा.नि.	–	प्राच्य निबन्धावली, खण्ड–4 (ले. डॉ. वी.वी. मिराशी)
8.	बु.फा.	–	बुन्देलखण्ड की फागें (सं. अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद') (प्रकाशक–उ.प्र. संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ)
9.	बु.लो.जी.	–	बुन्देलखण्ड का लोकजीवन (ले. अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद') (प्रकाशक–संस्कृति विभाग उ.प्र., लखनऊ)
10.	मदनी	–	बुन्देलखण्ड का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास (ले. अब्दुल कय्यूम मदनी, कालपी)
11.	मामुलिया	–	बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर (म.प्र.) की पत्रिका (सं. नर्मदा प्रसाद गुप्त)
12.	सारस्वत	–	सरस्वती विद्या मन्दिर इण्टर कॉलेज उरई – पत्रिका (जालौन जनपद विशेषांक)
13.	सां.बु.	–	सांस्कृतिक बुन्देलखण्ड (ले. अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद', उरई)
14.	सूर्यांक	–	कल्याण, गीता प्रेस, गोरखपुर का 'सूर्यांक' (लेख – भारत के अत्यंत प्रसिद्ध सूर्य मन्दिर, लेखक – जानकी नाथ शर्मा)

प्रस्तावना

कालपी पर पुस्तक पाठकों को सौंपते हुए मुझे विशेष प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है, क्योंकि बहुआयामी कालपी की विविधताओं और रोचकताओं को समेटकर एक सूत्र में पिरोकर उसे एक पुस्तक का स्वरूप देना दुष्कर कार्य था और यह जटिल कार्य आज पूरा हो गया है। कालपी एक छोटा किन्तु अति प्राचीन नगर है। विभिन्न कालखण्डों में यह चर्चित तथा महत्त्वपूर्ण रहा है। इसकी भौगोलिक स्थिति ने इसे सामरिक तथा व्यापारिक दृष्टि से और भी अधिक विशिष्टता प्रदान की। प्राचीन काल में इस सघन वन क्षेत्र में असाधारण बड़े आकार के हाथियों, दरियाई घोड़ा तथा ऊदबिलाव की दुर्लभ प्रजातियाँ पाई जाती थीं। कालपी के एक उत्खनन में 45,000 वर्ष से अधिक प्राचीन जीवाश्म मिले हैं। इन जंगलों में 'सफेद हाथी' तथा 'काले हिरण' की प्रजातियाँ भी पाई जाती थीं। मुगल बादशाहों का यह प्रिय आखेट स्थल रहा। बाबर, हुमायूँ तथा अकबर यहाँ के जंगलों में शिकार खेलने आते थे। बाबर ने अपने संस्मरणों में यहाँ के जंगलों का रोचक वर्णन लिखा है। यहाँ का रमणीय यमुना तट जाने कितनी जानी–अनजानी प्रणय–गाथाओं का साक्षी, सहज उद्दीपक दृश्यावली, मन की तरंगों की भाँति तरंगायित, गाम्भीर्य का हरित–जल अपने वक्ष में समेटे है। यहाँ प्रेम की कोमलता है तो अनेक युद्धों में तलवारों की झनकारों ने शौर्य की झंकृतिमय कठोरता भर दी है। इससे यहाँ कोमलता और कठोरता का अद्‌भुत समन्वय है।

कालपी शास्त्रों तथा शस्त्रों की भूमि रही है। यहाँ के सघन वन क्षेत्र में, प्राचीन काल में, अनेक ऋषियों–मुनियों के आश्रम थे, जिन्होंने कल्पसूत्रों, संहिताओं आदि की रचना की थी। संसार के सबसे प्राचीन तथा बड़े साहित्यकार वेद व्यास की यह जन्मभूमि है। उन्होंने वेदों का संपादन किया, अठारह पुराणों तथा *महाभारत* की रचना की जिनके बारे में मान्यता है कि 'जो संसार में है, वो इसमें है, जो इसमें नहीं संसार में नहीं।' कालपी मुस्लिम धर्म मतावलंबियों के लिए भी पवित्र नगरी है। इसे 'कालपी शरीफ' कहा जाता है। हजरत मुहम्मद साहब के वंशजों का आस्ताना 'खानकाह शरीफ' यहाँ है, जिसे बड़े शायरों ने मक्का की संज्ञा दी है। इसके गद्दीनशीन स्वयं बड़े शायर थे तथा जायसी, कुतुबन जैसे सूफी कवियों के वे गुरु रहे। 'नगर कालपी हुत गुरु थानू' लिखकर जायसी ने स्वयं इस तथ्य को स्वीकार किया

है। संस्कृत नाटककार भवभूति ने अपने नाटकों की प्रस्तावना में यह स्वीकार किया है कि उनका प्रथम मंचन यहीं कालप्रियनाथ मन्दिर के मेले के समय मन्दिर की रंगशाला में हुआ था। तब दर्शक–श्रोता कितने विद्वान रहे होंगे कि संस्कृत भाषा के संवाद समझते होंगे। कालपी के निकट इटौरा नामक स्थान पर रोपणि गुरु हुए। उनकी आध्यात्मिक सिद्धियों की प्रशंसा सुनकर बादशाह अकबर स्वयं उनके दर्शनार्थ इटौरा गया था, वहाँ उसने अकबरपुर बसाया, बाद में रोपणि गुरु का मन्दिर के लिए बनवाने लाल पत्थर भेजा था, जो रोपणि गुरु के देहावसान होने के बाद वहाँ पहुँचा, जिससे वहाँ समाधि–मन्दिर का निर्माण हुआ। इसके सामने विशाल तालाब के मध्य गुरु की बारादरी अभी भी बनी हुई है। भूमाफियाओं ने इसका क्षेत्रफल बहुत कम कर दिया है। इस तालाब की सफाई होकर अब बरादरी तक जाने का सुंदर मार्ग बन गया है तथा तालाब में 'नौकाविहार' की सुविधा से पर्यटक आकर्षित हो रहे हैं। हिन्दी के सर्वांग निरूपक, रीति–कवि आचार्य श्रीपति मिश्र भी कालपी के ही थे। मनीषी कवियों–साहित्यकारों की यह परम्परा अभी तक विद्यमान है।

कालपी का महत्त्व इससे आँका जा सकता है कि बादशाह अकबर के नवरत्नों में से तीन कालपी के थे। वीरता का उत्कर्ष यह था कि मुगल सेना में प्रतिवर्ष दो हजार सैनिक (बन्दूकची तथा धनुर्धर) और हाथी कालपी से भेजे जाते थे। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का नियंत्रण कक्ष 2 जनवरी 1858 से 22 मई 1858 तक कालपी दुर्ग में रहा। उस अवधि में क्रान्तिकारियों का झंडा यहाँ फहरता रहा। यहाँ नाना साहब, तात्या टोपे, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, पटना के कुँवर सिंह तथा नवाब बाँदा ने मिलकर उस संघर्ष की व्यूह रचना की थी। यही से 'खल्क खुदा का, मुल्क बादशाह का, राज्य पेशवा का' के फरमान जारी होते रहे। क्रान्तिकारी पराजित भले ही हुए हों किन्तु नियोजन इतना अच्छा था कि कोई बड़ा क्रान्तिकारी न मारा गया और न ही बन्दी बनाया जा सका। स्वदेशी तथा अन्य रचनात्मक कार्यों का भी राष्ट्रीय महत्त्व का केन्द्र रहा।

कालपी का व्यापारिक उत्कर्ष यह था कि यह प्राचीन काल से ही 'सार्थवाह' परम्परा का बड़ा केन्द्र था। कभी रोम आदि देशों से माल आता था तथा यहाँ के सूर्यपत्तन बन्दरगाह से, नौकाओं से माल ताम्रलिपि बन्दरगाह तक जाता था। यहाँ कपास तथा रुई की सफेदी, मुलायम, उच्च गुणवत्ता के कारण ईस्ट इंडिया कम्पनी ने यहाँ कॉटन–एजेन्सी खोली थी। अनेक कालखण्डों में यहाँ की विभिन्न मिठाइयाँ–मिश्री ख्याति प्राप्त रहीं। हस्तनिर्मित कागज की परम्परा एक हजार वर्ष से भी अधिक पुरानी है तथा वह

देश–विदेश में लोकप्रिय है।

पर्यटन की दृष्टि से विश्व का अनूठा स्थल 'पंचनदा' यहाँ से कुछ दूरी पर है जहाँ थोड़ी–थोड़ी दूरी पर पाँच नदियाँ मिलकर विशाल जलराशि यमुना नदी को सौंपकर उसे भरा–पूरा बनाती हैं। इस पंचनद से कालपी तथा और आगे तक डाल्फिन मछली की दुर्लभ प्रजापति सहित लगभग पचास–साठ प्रकार की मछलियाँ यमुना में पाई जाती हैं। बहु–प्रजातीय 'मत्स्य–घर' की परियोजना यहाँ साकार हो सकती है। पर्यटन के अन्य अनेक स्वरूप यहाँ साकार हो सकते हैं। कभी मुगल शासक अकबर आदि अपनी राजधानी आगरा से कनार (पंचनदा) कालपी होकर इलाहाबाद, बनारस तक जाते थे। केन्द्र सरकार की जल परिवहन नीति 2015 लागू होने के बाद कालपी मार्ग से 'शाही जलयान–पर्यटन' तथा 'वाटर–टैक्सी' परियोजनाओं की संभावना बलवती हुई है। इस अँचल में 'बीहड़ी पर्यटन' की नई अवधारणा लागू हो सकती है, किसी एक ऊँचे रिवॉल्विंग टॉवर अथवा रज्जु मार्ग (रोप वे) से दूर–दराज बीहड़ दर्शन तथा पाँचों नदियों के मिलन का दुर्लभ नजारा यहाँ मिल सकता है। संयुक्त राष्ट्र संघ की ग्रामीण पर्यटन तथा 'जंगलों में शहर' की अवधारणा यहाँ जीवन्त स्वरूप ग्रहण कर सकती है। मुगलकालीन कालपी सरकार में कालपी से कनार (पंचनदा) तक का क्षेत्र सम्मिलित रहा है, इस दृष्टि से इस पुस्तक में उक्त विविध आयामी पर्यटन तथा अनेक क्षेत्रों में विकास की सम्भावना पर भी विचार किया गया है।

यह संयोग ही है कि इस पुस्तक का लेखन कार्य विजयादशमी (दशहरा) के दिन पूर्ण हो रहा है। यह दिन राम–रावण युद्ध में श्रीराम की विजय का पर्व है तथा दशानन के शौर्य तथा पाण्डित्य की चर्चा का भी, जिसके पाण्डित्य से प्रभावित श्रीराम ने उसे 'सेतुबंध रामेश्वर की' प्राण–प्रतिष्ठा का आचार्य बनाया था। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कालपी के एक वकील मथुरा प्रसाद निगम ने रामलीला में 'रावण' का अभिनय करते–करते अपने को 'लंकेश' का अवतार मान लिया था। उनके सिर पर 'लंकेश' का ऐसा जुनून सवार हुआ कि उन्होंने अपनी वकालत की सारी कमाई लगाकर कालपी में काफी ऊँची 'लंका मीनार' का निर्माण कराया जो दिल्ली की 'कुतुबमीनार' तथा चित्तौड़ के 'विजय स्तम्भ' की लगभग ऊँचाई की है। इसमें एक विशेष बात यह है कि इसकी दीवालों पर राम नहीं, वीर रावण केन्द्रीय नायक के रूप में चित्रित है। यह उत्तर भारत में रावण का एकमात्र स्मारक है। यह 'लंका मीनार' पर्यटकों को सहज ही आकर्षित कर लेती है।

व्यास कूप

मैं सी.सी.आर.टी. के निदेशक श्री गिरीश जोशी जी तथा उनकी परामर्श समिति का आभारी हूँ कि उन्होंने 'शहरों की अनकही दास्ताँ' पुस्तक परियोजना में मुझे इस पुस्तक के लेखन का दायित्व सौंपकर सुअवसर प्रदान किया। विशेष आभारी हूँ सप्रे संग्रहालय, भोपाल के संस्थापक निदेशक पद्मश्री विजय दत्त श्रीधर तथा निदेशक डॉ. मंगला अनुजा का जिन्होंने, वहाँ संरक्षित अपने संग्रह से, कालपी से सम्बन्धित साहित्य के अध्ययन तथा नोट्स आदि लेने की त्वरित सुविधा उपलब्ध कराई जिससे इस पुस्तक का लेखन सम्पन्न हो सका। रामपुर रज़ा लाइब्रेरी रामपुर का आभारी हूँ कि वहाँ के अधिकारियों ने लगभग एक दशक पूर्व वहाँ संरक्षित अकबर के एलबम से, दरबारी चित्रकारों द्वारा चित्रित राजा बीरवर (प्रचलित नाम–बीरबल) के चित्र का फोटोग्राफ मुझे उपलब्ध कराया तथा उसे अपनी पुस्तक में प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान की थी। उत्तर प्रदेश राज्य पुरातत्व सर्वेक्षण की बुन्देलखण्ड इकाई के डॉ. एस.के. दुबे का आभारी हूँ कि उन्होंने कालपी में उत्खनन की रिपोर्ट का सारतत्व लिखित उपलब्ध कराया। डॉ. राजेन्द्र पुरवार का आभार कि उन्होंने कालपी नगर का मानचित्र उपलबध कराया। कालपी के स्वर्गीय बाबू रामरतन लाल मैहर, रामशिरोमणि मैहर एडवोकेट, बाबू मोतीचन्द्र वर्मा एवं चन्द्रभानु विद्यार्थी, राधाकृष्ण अग्रवाल तथा श्रीप्रकाश जैतली का कृतज्ञ

होना सहज ही है कि उन्होंने आज से लगभग चार–पाँच दशक पूर्व मुझे कालपी के दुर्लभ प्रसंगों की जानकारी देकर उसके प्रति मेरी रुचि तथा जिज्ञासा जाग्रत की थी। इससे मैं कालपी पर पुस्तक की रूपरेखा मनो–मस्तिष्क में सँजो सका। इस पुस्तक के लेखन–काल में कालपी के चार–पाँच दिवसीय प्रवासों में मेरे साथ निरंतर सहयोग करने वाले वरिष्ठ पत्रकार ब्रजेन्द्र निगम, प्रकाश नारायण द्विवेदी, रामप्रकाश पुरवार 'ताऊ जी', बाल व्यास मन्दिर के प्रबन्धक तथा पुजारी श्री प्रसाद जी एवं ज्योति जी तथा शब्द–संयोजन हेतु शैलेश गुप्ता का आभार शब्दों में व्यक्त करना सम्भव नहीं है। उन्हें मेरी हार्दिक बधाई जिनके सत्प्रयास से यह लेखन पूरा हो सका। जिन सज्जनों ने अपने साक्षात्कार में कालपी के बारे में विविध जानकारी देकर मेरा ज्ञानवर्द्धन किया, उनके नाम संदर्भ–सूची, परिशिष्ट में संलग्न हैं।

इस समय हमारी स्मृति से, जो बिसर गए, उनको प्रणाम।

अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद'

अनुक्रम

प्रस्तावना

1. देखी तेरी कालपी बावनपुरा उजाड़ 11
2. युगों–युगों में कालपी 19
3. स्वातन्त्र्यचेता कालपी 37
4. सांस्कृतिक नगरी कालपी 51
5. साहित्यिक कालपी 92
6. दर्शनीय कालपी 116
7. उद्यमशील कालपी 148
8. संभावना–सक्षम कालपी 161

परिशिष्ट

1. संदर्भ सूची 166
2. 'देहाती' का सम्पादकीय 170
3. कालपी में झाँसी की रानी का युद्ध (चयनित कविता) 173
4. कालपी में लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व 176
5. मानचित्र 178
6. चित्रावली (रंगीन चित्र) 180

देखी तेरी कालपी, बावनपुरा उजाड़

बावन उजाड़ मुहल्लों को अपनी गोद में समेटे कालपी नगर यमुना नदी के किनारे 26.12^0 उत्तर तथा 79.93^0 पूर्व अक्षांश देशान्तर के मध्य स्थित है। समुद्र तल से इसकी ऊँचाई लगभग 112 मीटर ऊपर है। वर्तमान काल में यह उत्तर प्रदेश राज्य के जालौन जिले की कालपी तहसील का मुख्यालय है। पौराणिक–ऐतिहासिक यह नगर विभिन्न कालखण्डों में आक्रान्ताओं द्वारा लूटा–रौंदा गया तथा इसका वैभव नष्ट किया गया। यह भोगनीपुर (प्राचीन नाम–भोगनगर, स्वभोग नगर तथा भोगपुर रहे हैं) शिवपुरी एन.एच. 25 पर तथा कानपुर–झाँसी (उत्तर मध्य रेलवे खण्ड) के मध्य एक महत्त्वपूर्ण रोडवेज तथा रेलवे स्टेशन है। सांस्कृतिक–राजनैतिक दृष्टि से यह 'बुन्देलखण्ड' का अंग है। यहीं से, उत्तर से दक्षिण अथवा पूर्व से पश्चिम जाने वाला राजपथ यमुना के उस पार भोगनीपुर से होकर जाता है। प्राचीन काल में यह उत्तरापथ तथा दक्षिणापथ के संगम बिन्दु पर था। यह प्राचीन 'सार्थवाह' परम्परा का एक प्रमुख राजमार्ग था। 'सार्थवाह' परम्परा के अधिकारी विद्वान डॉ. मोतीचंद्र के अनुसार 'प्राचीन महापथ की एक शाखा विदिशा से बेतवा घाटी होती हुई कौशाम्बी पहुँचती है।' इस प्राचीन पथ का रुख विदिशा से झाँसी–कालपी होते हुए रेलपथ के समानान्तर जाता था। यह स्थान **exydkyhu dkyih ljdkj** का हिस्सा रहा है।

यह प्राचीन काल में देश के तीन प्रमुख सघन वनों–नैमिषारण्य, तुंगारण्य तथा दण्डकारण्य में से तुंगारण्य के मध्य सघन वन क्षेत्र का हिस्सा था जो चित्रकूट से दण्डकारण्य तक विस्तृत था। यहाँ राजपथ पर 'बटमार' तथा जलमार्ग में 'जलदस्युओं' का आतंक था। पाणिनि ने पाणिनि सूत्र में एक वैदिक मंत्र का उल्लेख किया है, जिसमें कहा गया है कि 'भगवान करे, तुम्हें मार्ग में कहीं बटमार न मिलें।' इस महापथ की सूचना महाभारत के नलोपाख्यान में भी मिलती है जिसमें दमयन्ती एक सार्थवाह के साथ चेदि देश के राजा सुबाहु के यहाँ पहुँच गई थी। बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक भूगोल के विद्वान डॉ. कन्हैया लाल अग्रवाल का कहना है कि 'यही संभावित जान पड़ता है कि वह झाँसी, चिरगाँव, मोंठ, कालपी, चिल्ला आदि स्थानों से होती हुई चेदि देश पहुँची। इस पक्के मार्ग का निर्माण पहली बार कुषाण काल में हुआ। चंद्रगुप्त मौर्य ने अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को विकसित करने के लिए मथुरा

को केन्द्र बनाकर जो पाँच मार्ग बनवाए थे, उनमें से एक काम्पिल्य शांकस्य, कान्यकुब्ज, कौशाम्बी, प्रयाग, वाराणसी, पाटलीपुत्र होते हुए दूसरे राजमार्ग को मिलाता था उसी पर कन्नौज तथा कौशाम्बी के मध्य कालपी पड़ता था। सम्राट स्कन्दगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति तथा ऐरण अभिलेख के अनुसार प्रयाग से कौशाम्बी होकर विदिशा जाने का मार्ग 'स्वभोगनगर' होकर जाता था। डॉ. अग्रवाल ने 'स्वभोगनगर' को एरिकेण या ऐरिकच्छ (वर्तमान एरिच) से समीकृत किया है। मेरा विनम्र मत है कि यह 'स्वभोगनगर' ही वर्तमान भोगनीपुर था, जो कालपी नगर से सटी हुई यमुना नदी के उस पार था। यही व्यापारिक काफिलों का मार्ग था। यमुना से उस समय भी जल–परिवहन द्वारा ताम्रलिप्ति बन्दरगाह तक माल जाता था। इस प्रकार कालपी को व्यापारिक नगर बनने का अवसर प्रकृति ने सहज ही दे दिया था।

इस बुन्देलखण्ड क्षेत्र के नाम, विभिन्न कालखण्डों में पुलिन्द, चेदि, दशार्ण, जिजौति, जैजाकभुक्ति, चिचिन्टो, मध्य देश, युद्ध देश तथा बुन्देलखण्ड आदि रहे हैं। इनके अंतर्गत आने वाला इसका उत्तरी प्रवेश द्वार कालपी नगर था। उत्तर प्रदेश पर्यटन विभाग ने कुछ दशक पूर्व इसे 'इन्द्र देश' नाम से प्रचारित किया था। सम्भवतः इसका कारण इस नगर को प्राकृतिक वरदान रहा होगा। कालपी क्षेत्र सात पवित्र नदियों के जल से अभिसिंचित है – यमुना, बेतवा, पहूज, चम्बल, सिंध, क्वॉरी तथा व्यास–जन्म–सरित (जौंधर)। इनमें से पाँच यमुना, चम्बल, पहूज, सिंध, क्वॉरी नदियाँ पंचनद नामक संगम बनाती हैं। ये पौराणिक स्थल है। यहाँ प्रतिदिन हरिद्वार की गंगा आरती की तर्ज पर पंचनद आरती होती है। इस लेखक को यह विनम्र श्रेय है कि यह आरती उसके द्वारा रचित है। यहाँ की कृषि, उर्वरा होने के कारण उपज अच्छी है। यहाँ की प्रमुख फसलों में गेहूँ, चना, मटर, अरहर, जौ, ज्वार, बाजरा, कोदो, सवा, लाही, अलसी, तिल, कपास, सनई तथा गन्ना, वानस्पतिक रंगों के पौधों में नील, कुसुम, आल, टेसू प्रमुख हैं। 'यहाँ के वनों तथा राज उद्यानों से आती केतकी, चम्पा, चमेली, मोगरा, मातियाँ, कामिनी, मालती कनार, रजनीगंधा, सेवती, गुड़हल, हरसिंगार, अमलताश की मादक सुगन्ध ने यहाँ के लोगों को वात्सल्य, करुणा, श्रृंगार एवं शौर्य तथा उदारता का भरपूर सहयोगपूर्ण वातावरण प्रदान किया है।' गेंदा, गुलाब, रातरानी तथा पलाश–पुष्पों ने भी अतिरिक्त मादकता भर दी है। यहाँ नीम, आम, महुआ, शीशम, पाखर, बरगद, पीपल, खैर, आँवला तथा बबूल के वृक्ष प्रचुरता से हैं। इसके बावजूद मौसम की प्रतिकूलता के कारण अवर्षण या अतिवर्षण का प्रकोप यहाँ अकाल का कष्ट दे जाता है। खनिजों की दृष्टि से यहाँ की बालू (रेत) अधिक प्रसिद्ध

है, जो निर्माण की दृष्टि से उत्तम कोटि की मानी जाती है। वर्तमान काल में इस पर माफियाओं की नजर है। इसके पट्टों की अनियमितता की जाँच न्यायालीन आदेश की परिधि में है। यहाँ बेतवा नदी की रेत से, 'सज्जी मिट्टी' निकलती है जो कि सोडियम कार्बोनेट का अशोधित रूप है। इसका उपयोग धोबी कपड़ा धोने में करते हैं, इसे चूने से शोधकर कास्टिक सोडा तैयार किया जाता है जो कि साबुन, वनस्पति घी, कपड़े, रंग और पेंट बनाने के काम आता है। भवन निर्माण में प्रयुक्त होने वाला कंकड़ भी यहाँ प्रचुरता से पाया जाता है। प्राचीन काल में इससे चूना बनाकर मजबूत दुर्गों के निर्माण में प्रयुक्त होता था। इसका एक प्रतिकूल प्रभाव भी है, इससे भूमितल के लगभग दस मीटर नीचे कठोर अधःस्तर बन जाता है, इससे सतही जल, भूमिगत नहीं हो पाता है तथा भूमि विभिन्न प्रकार के लवणों से घिरने के कारण क्षारित अथवा ऊसर हो जाती है, इसलिए इस अंचल में बंजर भूमि भी अधिक है, इसको पुनः उपजाऊ बनाने के तरीके वैज्ञानिकों द्वारा खोजे जाते हैं। इससे कृषि तथा वन–उत्पाद भी प्रभावित होते हैं।

यमुना नदी में अनेक जलचर जीव हैं। इनमें – कछुवा, मगरमच्छ, घड़ियाल तथा सर्पों के अतिरिक्त मछलियों की पचास से अधिक प्रजातियाँ हैं। मध्य प्रदेश वन विभाग के सर्वेक्षण में 'पंचनदा' के पास दुर्लभ प्रजाति की डॉल्फिन मछली पाई जाती है। रामगंगा कमाण्ड बंगाल के पूर्व अधिकारी डॉ. प्रमोद कुमार अग्रवाल, आई.ए.एस. का मानना है कि बंगाल की डॉल्फिन मछलियाँ पंचनद तथा कालपी क्षेत्र में प्रजनन करने आती हैं। कालपी से इलाहाबाद के मध्य फतेहपुर में डॉल्फिन मछली का संरक्षण केन्द्र खोला गया है। अनुमान है कि वह मछलियाँ पंचनद–कालपी से ही होकर वहाँ पहुँची होंगी। प्राचीन काल में यहाँ हाथी भी बहुत पाए जाते थे।

उत्तर प्रदेश पुरातत्त्व तथा लखनऊ एवं बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के भूगर्भ–वैज्ञानिकों ने कालपी में यमुना किनारे के उत्खनन में 45,000 वर्ष प्राचीन जीवाश्म खोजे हैं जिनका आकार वर्तमान से काफी बड़ा था। इनमें हाथी दाँत की लम्बाई सात फुट, व्यास लगभग 8 इंच एवं कंधे की हड्डी के पाँच फुट लम्बे जीवाश्म मिले हैं। इनमें दरियाई घोड़ा तथा ऊदबिलाव के भी जीवाश्म मिले हैं। अन्य वन पशुओं में नीलगाय, चौसिंघा, भेड़िया, जंगली कुत्ता, जंगली बिल्ली, लकड़बगा तथा मोर पाए जाते हैं। इतने सघन वनक्षेत्र के कारण यह दस्यु दलों का अभ्यारण्य रहा है। प्राचीन काल में यह जातुधान, दस्यु, शबर, गोंड, निषाद आदि से बहुल क्षेत्र था। सुप्रसिद्ध महिला दस्यु फूलन देवी, जो बाद में मिर्जापुर से सांसद बनीं, कालपी से दस किलोमीटर

दूर शेखपुर गुढ़ा की निवासिनी थीं। यहाँ दस्यु मुस्तकीम, रामआसरे फक्कड़, निर्भय गूजर आदि का आपरेशन एरिया रहा है। इस अँचल की दस्यु गतिविधियाँ देश में चर्चित रही हैं। इन दस्यु दलों को पुलिस का भी संरक्षण प्राप्त रहता है। लगभग एक दशक पूर्व कालपी के निकट पुलिस तथा दस्यु दलों के बीच हुई मुठभेड़ में 'दस्यु शिविर' से आते हुए एक डिप्टी एस.पी. (पुलिस) को सेवामुक्ति का शिकार होना पड़ा था।

कालपी शस्त्रों तथा शास्त्रों की भूमि है। सामरिक महत्त्व की स्थिति के कारण यहाँ अनेक युद्ध हुए। इस अँचल में अनेक ऋषि–आश्रम थे, जो आर्य–धर्म का प्रचार–प्रसार करते, धार्मिक ग्रंथों का प्रणयन करते तथा भारतीय जीवन–शैली के विनयमितीकरण के लिए अपने आश्रमों में संहिताओं का निर्माण कर रहे थे। इनमें ऋषि कल्प, पराशर (परासन), वेद व्यास (कालपी), जमदग्नि, कुम्भज (कुरहना), वाल्मीकि (बबीना), कर्दम (कँहटा) आदि प्रसिद्ध रहे हैं।

कालपी क्षेत्र का सीमा निर्धारण नदियाँ करती हैं। मुगल शासन में कालपी को आगरा सूबे की 'सरकार' का दर्जा प्राप्त था। इसका विस्तार यमुना नदी के किनारे पंचनदा के 'कनार' से लेकर सूर्य मन्दिर क्षेत्र कालपी तक विस्तृत था। कालपी नगर में ही 'प्रभावती' मुहल्ले से सूर्य मन्दिर तक लगभग सात किलोमीटर की यमुना तटीय पट्टी है। यहीं से बुन्देलखण्ड की सीमा उत्तर से दक्षिण की ओर जाती है। बुन्देलखण्ड के सीमा निर्धारण हेतु निम्नांकित दोहा प्रायः उद्‌घृत किया जाता है –

इत यमुना, उत नर्मदा, इत चंबल उत टौंस।
छत्रसाल सौ लरन की, रही न काहू हौंस।

अर्थात् यमुना से नर्मदा तथा चंबल से तमसा नदी (मिर्जापुर के निकट) तक किसी में महाराजा छत्रसाल से लड़ने का हौसला नहीं रहा था। एक प्रकार से यह छत्रसाल के शौर्य की सीमा थी।

कालपी के उत्तर में पंचनदा क्षेत्र है – जहाँ पाँच नदियों का संगम है। यह असली पंजाब है, जहाँ लगभग आठ–दस कोस की दूरी पर पाँच नदियों को एक दूसरे से मिलते देखा जा सकता है। पंचनदा के निकट यमुना नदी चार अन्य सहायक नदियों चम्बल, सिन्ध, क्वाँरी तथा पहूज को अपनी गोद में बिठाकर कालपी होती हुई, इलाहाबाद के संगम पर गंगा को अपना स्वत्व समर्पित कर देती है। यह सघन बीहड़ क्षेत्र भी है। पंचनदा के उस पार मध्य प्रदेश के जिला भिण्ड, दतिया तथा उत्तर प्रदेश के जालौन, इटावा एवं

औरय्या जिलों की सीमाएँ मिलती हैं। कालपी क्षेत्र की दक्षिणी सीमा बेतवा बनाती है। इसे 'कलियुग की गंगा' कहा गया है। यह कालपी तहसील के अंतर्गत परासन से होकर हमीरपुर जिले में प्रवेश करती है तथा यमुना में मिल जाती है। ब्रिटिश काल में कालपी हमीरपुर जिले का हिस्सा रहा है इसलिए कुछ विद्वानों ने बेतवा को कालपी के निकट यमुना में संगमित होना बताया है। प्राचीन काल में पंचनद के उस पार सेवढ़ा (म.प्र.) का वन पंचनद क्षेत्र का ही हिस्सा माना जाता था। 'कालपी माहात्म्य' नामक एक प्राचीन पुस्तक में, ब्रह्माण्ड पुराण के आधार पर कालपी क्षेत्र की लम्बाई चार योजन तथा चौड़ाई दो योजन बताई गई है। यह क्षेत्र भयनाशक भी बताया गया है।

चतुर्योजेन दीर्घेण योजन द्वय मर्यितम।
देवर्षि मुनि वृन्दाढ्यं, संसार भय नाशनम्।

सौरमण्डल के ग्रहों के संचरण पथ (ऑरबिट) के पथ में कालपी स्थित है। इसी दृष्टि से प्राचीन काल में जो अति प्राचीन तीन सूर्य मन्दिर बने थे, उनमें से एक कालपी में बनाया गया था। ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर ने यहीं अपनी वेधशाला स्थापित करके 'सूर्य सिद्धान्त' की रचना की थी। खग्रास सूर्य ग्रहण के समय यहाँ से श्रेष्ठतम रूप में सूर्यग्रहण देखा जा सकता है। विगत अक्टूबर 1995 में जब खग्रास सूर्यग्रहण पड़ा था, उसे जिन स्थलों पर देश में सबसे अच्छी तरह देखा गया था, उनमें एक कालपी भी था। उस दिन यहाँ देश–विदेश के खगोल–शास्त्रियों ने अपनी–अपनी प्रयोगशालाएं तथा वेधशालाएँ स्थापित की थीं। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आई.आई.टी.) कानपुर ने भी उस दिन यहाँ अपनी वेधशाला स्थापित की थी। इस पुस्तक का लेखक भी उक्त खग्रास सूर्यग्रहण का प्रत्यक्षदर्शी था।

कालपी के नामकरण को लेकर विद्वानों में भारी मतभेद है। 'जालौन जनपद के स्थान नामों का व्युत्पत्तिपरक अनुशीलन' (शोध प्रबन्ध–डॉ. यामिनी श्रीवास्तव) में बताया गया है कि 'प्राचीन काल में यहाँ कालिब नामक ऋषि तपस्या करते थे। उन्हीं ऋषि के नाम पर वर्ण विपर्यय द्वारा, कालान्तर में परिवर्तित होकर इस स्थान का नाम 'कालपी' पड़ा। इस प्रकार कालपी व्यक्तिवाचक स्थानों के अन्तर्गत आता है।' कुछ विद्वानों के अनुसार पुराणकालीन प्रसिद्ध 'कालप्रिय नाथ सूर्य मन्दिर' होने के कारण इस स्थान को 'कालप्रिय' कहा जाता है। राजशेखर अपने ग्रंथ 'काव्य मीमांसा' में इस नगर का नाम 'कालप्रिय' ही बताते हैं। उन्होंने इसे गाधिपुर (वर्तमान कन्नौज) के दक्षिण में माना है तथा कन्नौज से कालपी की दूरी 75 किलोमीटर बताई है। वर्तमान में लगभग इसी दूरी पर कन्नौज से कालपी स्थित है। प्राचीन ग्रंथ 'कालपी

माहात्म्य' में रायड़ स्थान से माणिक्येश्वर (वर्तमान मनकेश्वर मन्दिर–पातालेश्वर परिसर) के मध्य की भूमि को उत्तम काल ऊषर, ऋषियों मुनियों से पूरित तथा भव–भय नाशक कहा गया है। यहाँ मृत्यु के स्वामी यम, निज तेज द्वारा काल से रक्षा करते हैं। उन्हें प्रिय होने से यह 'कालप्रिय' कहलाया। पुरातत्व शास्त्री डॉ. डी.सी. सरकार (*स्टडीज इन दी ज्योग्राफी ऑफ एंशियेंट एण्ड मेडिवल इंडिया,* पृष्ठ 244) तथा डॉ. वी.वी. मिराशी (*प्राच्य निबंधावली,* खण्ड–4, पृष्ठ 77–78 सपठित *स्टडीज इन इण्डोलॅजी,* भाग–1, पृष्ठ 3542) में यह सिद्ध किया गया है कि कालप्रिय का सूर्य मन्दिर कालपी में था। यह शिव मन्दिर न होकर सूर्य मन्दिर था। संस्कृत नाटककार भवभूति ने अपने नाटक *उत्तर रामचरितम्, महावीर चरितम्* तथा *मालती माधव* की प्रस्तावनाओं में इन नाटकों का मंचन 'कालप्रियनाथस्य यात्रायाम्' लिखकर कालप्रियनाथ के मेला में करने को स्वीकार किया है। भारत के तीर्थ (लेखक पं. रामगोपाल मिश्र) में इसका नाम 'प्रभावती' बताया है। प्रभावती सूर्य की पत्नी का नाम बताया जाता है। इस प्रकार यह नगर, प्रभावती से सूर्य मन्दिर तक का क्षेत्र, इस युगल–प्रभा से प्रभासित था। पुरातत्ववेत्ता प्रो. कृष्णदत्त बाजपेयी इसे महाभारतकालीन 'मत्स्यगंधापुर' मानते हैं, जहाँ ऋषि पराशर तथा केवट कन्या सत्यवती के मिलन से वेद व्यास का जन्म हुआ था। सत्यवती के अन्य नाम 'मत्स्योदरी', 'मत्स्यगंधा' तथा 'योजनगंधा' भी मिलते हैं। इसी स्थान पर राजकुमार देवव्रत, जो बाद में भीष्म कहलाए, पिता शान्तनु के लिए सत्यवती को निषादराज से लेने गए थे तथा वहीं स्वयं विवाह न करने की प्रतिज्ञा की थी। उस कठिन प्रतिज्ञा के कारण वह 'भीष्म' कहलाए। महाभारत के युद्ध में वंश की वरिष्ठता के कारण उन्हें 'भीष्म पितामह' कहा गया।

तुगलककालीन इतिहास की एक अप्रकाशित पाण्डुलिपि *तारीखे मुहम्मदी* (लेखक–बिहामद खानी) ब्रिटिश–संग्रहालय में संरक्षित है। उसके अनुसार कालपी का नाम मुहम्मद साहब के नाम पर 'मुहम्मदाबाद' रखा गया। इस प्रकार कालपी का एक नाम मुहम्मदाबाद भी रहा है। इस पाण्डुलिपि के अनुसार "मलिकजादा (महमूद बिन जिसे आज हुमायूँ के नाम से भी जाना जाता है) फीरोजाबाद से शाहपुर के मार्ग से यमुना तट पर पहुँचा और कालपी ग्राम का नाम, जो काफिरों एवं दुष्टों का निवास स्थान एवं केन्द्र था, मुहम्मद साहब के नाम पर मुहम्मदाबाद रखा। मन्दिरों के स्थान पर अल्लाह की एबादत के लिए मस्जिदों का निर्माण कराया और उस नगर को अपनी राजधानी बनाया।" इसी पाण्डुलिपि में आगे लिखा है कि "अधिकांश आलिमों तथा दिल्ली के प्रतिष्ठित मालिकों ने सुल्तान नासिरुद्दुनियाँ बद्दीन मुहम्मद

शाह बिन फिरोजशाह बिन मलिक ताजुद्दीन तुर्क से, जो मुहम्मदाबाद उर्फ कालपी में बड़ा शक्तिशाली था, देहली आने की प्रार्थना की। वह मुगलों की दुर्घटना के उपरान्त सुल्तान हुआ।" कालान्तर में इस पाण्डुलिपि को इतिहासकार पीटर हार्डी ने अपनी पुस्तक *हिस्टोरियन्स ऑफ मेडिवल इण्डिया* (प्रकाशक–मुंशी राममनोहर लाल प्रा.लि., नई दिल्ली, 2011) में सम्मिलित करके प्रकाशित किया। इसमें कालपी के उक्त कालखण्ड के स्थानीय शासकों से सम्बन्धित सामग्री दी गई है। यह भी उल्लेखनीय है कि इस पुस्तक में कनार को 'नगर' तथा कालपी को 'ग्राम' लिखा है। इससे पता चलता है कि उस समय कनार की तुलना में कालपी अपेक्षाकृत छोटा स्थान था, भले ही वह सैनिक अड्डा तथा बन्दरगाह रहा हो। संप्रति 'कनार' गैर–आबाद ग्राम है तथा 'कनारखेड़ा' के नाम से जाना जाता है। उक्त विश्लेषण तथा ऐतिहासिक–सांस्कृतिक आधार पर 'कालप्रिय' से 'कालपी' का नाम पड़ना तर्कसम्मत प्रतीत होता है।

बुन्देलखण्ड पर्वतों, पठारों से कंकरीली, पथरीली मिट्टी से भरा पड़ा है, किन्तु यहाँ एक समतल पट्टी भी है जो दक्षिण से उत्तर की ओर जाती है। कालपी बुन्देलखण्ड की उत्तरी सीमा होने के कारण इसी समतल पट्टी पर है किन्तु सात नदियों के कारण इस अँचल में बीहड़ तथा जंगलों (कनार से कालपी तक) की बहुलता है।

कालपी क्षेत्र अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण सामरिक महत्त्व का है। पूर्व से पश्चिम अथवा उत्तर से दक्षिण जाने के लिए यह महत्त्वपूर्ण चौराहे पर स्थित है। जलीय परिवहन की दृष्टि से भी यह महत्त्वपूर्ण बन्दरगाहों को जोड़ता है। इसलिए अधिकांश आक्रान्ता–शासकाओं ने इसे अपने कब्जे में रखना चाहा है। इसे वे मध्य भारत की 'चूल' कहते थे इसलिए लगभग सभी कालखण्डों में यह युद्धभूमि बनी। उन्होंने नरसंहार तथा लूटपाट ही नहीं की, यहाँ के भवनों, मन्दिरों आदि को भी नष्ट करने में अपना हित समझा। अंग्रेजों ने भी सत्तावनी क्रान्ति के महत्त्वपूर्ण केन्द्र कालपी दुर्ग के कोषागार भवन को छोड़कर अधिकांश हिस्सा, तहखाने तोड़ दिए। सम्प्रति इसके दुर्ग की एक दीवाल शेष है जो पुरातत्व विभाग द्वारा संरक्षित पुरावशेष है तथा विध्वंस की कहानी कह रही है। मुस्लिम सल्तनत समाप्त होने के बाद उस काल के अनेक भवन, मज़ारात, मस्जिदें रख–रखाव के अभाव में खँडहर हो गई हैं अथवा खँडहर बनने के निकट हैं। कभी श्रीसम्पन्न इस नगर के भवन सुन्दर, मजबूत तथा आकर्षक थे। यह नगर बावन मुहल्लों में बसा हुआ था, अतः इससे इसे 'बावन उजाड़ मुहल्लों का नगर' कहा जाता है। इससे एक

कहावत प्रसिद्ध हो गई है – 'देखी तेरी कालपी बावनपुरा उजाड़' तथा 'कल्पदेव की कालपी, बसै न ऊजर होय'।

कालपी राजनैतिक दृष्टि से जागरूक, सामाजिक–सरोकारों की चेतना का प्रमुख नगर रहा है। 'हिन्दी भवन' जैसी संस्था ने इसे गांधीवादी रचनात्मक समाजसेवा तथा हिन्दी–सेवा का राष्ट्रीय ख्याति का केन्द्र बनाया था। 'सेवा समिति', 'लायंस क्लब' तथा 'घुमन्तू हसन्तू क्लब' ने भी अनेक सामाजिक प्रकल्पों द्वारा समाजसेवा की। कालपी क्षेत्र के 'शहीद नगर' में आचार्य विनोवा भावे के भूदान यज्ञ से प्राप्त हजारों एकड़ भूमि उपलब्ध कराई गई जिससे वहाँ भी रचनात्मक कार्यों को गति मिली। साहित्य के क्षेत्र में संस्कृत, उर्दू तथा हिन्दी के अनेक अच्छे कवि हुए। इससे यहाँ के बौद्धिक स्तर का पता चलता है। यह औद्योगिक–व्यापारिक क्षेत्र में कभी उत्कर्ष पर रहा किन्तु अब पराभव की ओर है। यह अपने पुरातन–वैभव की वापसी की प्रतीक्षा कर रहा है।

⌘

महामहिम राज्यपाल के.एम. मुंशी द्वारा 1953 में उद्घाटित व्यास स्मारक मन्दिर

युगों–युगों में कालपी

(प्राचीन काल से 1857 तक)

आदिकाल से ही धर्मग्रंथों, पुराणों आदि में विभिन्न नामों से इस नगर की चर्चा मिलती है। पुरातत्वीय उत्खनन में यहाँ लगभग 45,000 वर्ष पूर्व से, मानव जाति के संचरण, उनके द्वारा निर्मित पुरा–ऐतिहासिक लौह–उपकरणों–आयुध तथा अनेक पशुओं के जीवाश्म मिले हैं। यह गंगा घाटी सभ्यता का क्षेत्र रहा है। यहाँ सुन्दर वन क्षेत्र था, उसमें अशोक, चम्पक, आम, अतिमुक्तक, कनेर बकुल, अतिपाल, गुलाब, नरिकेल, चन्दन, अर्जुन, महुआ, पलाश आदि के सुन्दर सुगन्धित वृक्ष थे। इस सघन वन क्षेत्र में कालपी अति प्राचीन नगर था, जिसकी स्थापना अयोध्या तथा इन्द्रप्रस्थ से पूर्व ही हो चुकी थी।

रामायण तथा *महाभारतकाल* में आर्यजन इस अँचल में यमुना के उत्तर में निवास करते थे। यमुना के दक्षिण में, वनों में, ऋषियों मुनियों के आश्रम थे, जो आर्य धर्म का विस्तार कर रहे थे। इस क्षेत्र में बसने वाले आर्य चेदि थे। मनु की वंश परम्परा में एल पुरुरवा → आयु → नहुष तथा ययाति थे। यह चंद्रवंशी थे। ययाति की राजधानी कानपुर में गंगा तट पर स्थित जाजमऊ में मानी जाती है। ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदुवंशी कहलाए। यहाँ उनकी सघन बस्तियाँ रही हैं। हैहयवंश के प्रभाव से यदुवंश निष्प्रभावी हो गया। इक्ष्वाकुवंश की इकतालीसवीं पीढ़ी के राजा अयोध्या–नरेश सगर ने चेदिराज सहित सम्पूर्ण उत्तर भारत पर अधिकार कर लिया था। अयोध्या–नरेश दशरथ, लोकश्रुतियों के अनुसार इस क्षेत्र में मृगया के लिए आते थे। यहीं राजा दशरथ ने श्रवण कुमार के पिता को बाण मारा था, उनका मन्दिर अभी भी जालौन, हमीरपुर तथा झाँसी जिले की सीमाओं पर, बेतवा–धसान के संगम पर, बना है।

इसी कालपी के मत्स्यगंधापुर (जिसे अब मदारपुर तथा व्यास क्षेत्र कहते हैं), भगवान वेद व्यास का जन्म यमुना तथा व्यास–गंगा नदियों के संगम पर स्थित एक द्वीप पर हुआ था। इसे व्यास–टीला कहते हैं। व्यास–गंगा का नाम पुराणों में व्यास–जन्म–सरित मिलता है तथा वर्तमान में 'जौंधर नाला' कहलाता है। इन व्यास जी का पूरा नाम कृष्ण द्वैपायन व्यास था। काला रंग (श्याम वर्ण) होने के

कारण वे 'कृष्ण', द्वीप पर जन्मने के कारण 'द्वैपायन' तथा वेदों के संपादन, विस्तार तथा व्याख्याता होने के कारण 'व्यास' कहलाए। इससे उनका पूरा नाम कृष्ण द्वैपायन व्यास हुआ। प्रत्येक मन्वंतर में अलग नाम का 'व्यास' होता है, वर्तमान अट्ठाइसवें मन्वंतर के व्यास का नाम 'कृष्ण द्वैपायन व्यास' है। कालपी में व्यास–जन्म की कथा महाभारत (आदि पर्व अ0 105 श्लोक 6 से 14, शिवपुराण–उमा संहिता अध्याय 44, श्री देवी भागवत पुराण (प्रथम स्कन्ध, अध्याय–2) तथा ब्रह्माण्ड पुराण के अध्याय 1 एवं 6 में नारद–व्यास संवाद में उल्लिखित है।

जन्म कथा के अनुसार, ऋषि पराशर का आश्रम कालपी के निकट ही वेत्रवती तट स्थित 'परासन' में था। महातेजस्वी पराशर ऋषि एक समय तीर्थ यात्रा के लिए पर्यटन करते हुए कालप्रिय (कालपी) के यमुना तट पर आए। वहाँ केवटों की सघन बस्ती थी। धीवरराज की राजधानी यहाँ थी। उन्हें यमुना पार कराने के लिए निषाद कन्या सत्यवती आई। उसका एक नाम मत्स्योदरी भी था। वह श्यामलवर्णी तथा मत्स्यगंधी देह होने के कारण 'मत्स्यगंधा' भी कहलाती थी। नौका पर सवार ऋषि उसके अंग–विन्यास पर मुग्ध होकर कामार्त हो गए। ऋषि के प्रणय–निवेदन पर उसने निवेदन किया कि सामने यमुना तट पर उसके परिजन आदि देख रहे हैं, मैं मत्स्य दुर्गन्ध युक्त तथा श्यामला हूँ। इस पर ऋषि पराशर ने उस पर कमण्डल से अभिमंत्रित जल छिड़ककर नौका के चारों ओर कोहरे (नीहार) का निर्माण कर दिया। जल छिड़कने से उसके शरीर की दुर्गन्ध दूर हो गई, योजनों तक उसकी सुगन्ध फैल गई। उसका नाम 'योजनगन्धा' हो गया। मुनि ने उससे संसर्ग किया, वह गर्भवती हो गई। उसे उसी द्वीप पर संरक्षित किया गया, आगामी आषाढ़ माह की पूर्णिमा को शिशु व्यास का जन्म हुआ। *महाभारत* में महर्षि वेद व्यास की जन्मकथा का मूल पाठ निम्नवत् है –

तस्मान्निशम्य सत्यं मे कुरुष्व यदनन्तरम्।
धर्म युक्तस्य धर्मार्थं पितुरासीत्तरी मम।।6।।
सा कदाचिदहं तत्र गता प्रथमयौवनम्।
अथ धर्मविदां श्रेष्ठः परमर्षिः पराशरः।।7।।
आजगाम तरीं धीमांस्तरिष्यन्यमुनां नदीम्।
स तार्यमाणो यमुनां मामुपेत्याब्रवीत्तदा।।8।।
सान्त्वपूर्व मुनिश्रेष्ठः कामार्तो मधुरं वचः।
उक्तं जन्मकुलं मह्यमस्मि दाशसुतेत्यहम्।।9।।
तमहं शापभीता च पितुर्भीता च भारत।

बरैसुरलभै रुक्ताम प्रत्याख्यातुमुत्सहे।।10।।
अभिभूय स मां बालां तेजसा वशमानयत्।
तमसा लोकमावृत्य नौगतामेव भारत।।11।।
मत्स्यगन्धो महानासीत्पुरा मम जुगुप्सितः।
तमपास्य शुभं गन्धमिमं प्रादात्स मे मुनिः।।12।।
ततो मामाह स मुनिर्गर्भमुत्सृज्य मामकम्।
द्वीपेऽस्या एव सरितः कन्यैव त्वं भविष्यसि।।13।।
पाराशर्यो महायोगी स वभूव महानृषिः।
कन्या पुत्रो मम पुरा द्वैपायन इति श्रुतः।।14।।
(महाभारत आदि पर्व अ. 105।।6–14।।)

1953 में उत्तर प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल श्री के.एम. मुंशी ने, व्यास–स्मारक मन्दिर का शिलान्यास करते हुए उनका महत्त्व निम्न प्रकार रेखांकित किया था –

'भगवान व्यास आर्यत्व की मूर्ति थे। आर्यत्व के एक आदि संस्थापक के पौत्र, माछी मात्र के दौहित्र वे भारतीय जातियों के मिश्रण के प्रतीक थे। छिन्न–भिन्न हुए वेदों को उन्होंने एकत्रित किया, संस्कृति के अव्यक्त मूल को व्यक्त किया और अपनी संस्कृति का सातत्य किया। पांडव कौरव के वे पितामह थे। भारत युद्ध का काल जिसमें भारतीय जीवन एकत्रित हुआ उस समय वे पूज्य और प्रेरक थे। भगवान श्री कृष्ण की महत्ता उन्होंने देखी, उनका प्रचण्ड व्यक्तित्व शब्दों द्वारा मूर्तिमान किया, उनके संदेश को शब्ददेह देकर मानव उद्धार के लिए अमर कर दिया। जो सनातन थे उनकी अपनी शब्द संजीवनी के द्वारा फिर से सनातनत्व दिया। Mahabharat has woven the Collective Unconscious of India इसमें कोई संदेह नहीं। भारत का सामुदायिक मानस व्यास जी ने चुना है। तीन हजार वर्ष पूर्व उनकी साहित्य शक्ति से रचे हुए जीवन और आदर्श ने ताने–बाने दिए हैं। जिसे कृष्णार्जुन का परिचय न हो और जिस पर द्रौपदी के ज्वलन्त व्यक्तित्व, भीष्म की एकनिष्ठा तथा धर्मराज की सत्यप्रियता का असर न हो, उसको भारतीय कहना कठिन हो जाता है। जिसे गीता का स्पर्श न हुआ हो वह भारत के आदर्श से अस्पष्ट ही रहेगा। जहाँ तक भारतीयों के हाथ में महाभारत है, वहाँ तक भारत का भविष्य उज्ज्वल है।

भगवान व्यास ही भारत के गढ़ने वाले उसके अधिष्ठाता और प्रणेता हैं। यह भारत केवल हिन्द देश ही नहीं है, यह तो संस्कार और भावना से

गढ़ा हुआ भारत का प्रभावशाली सूक्ष्म शरीर है। जो भारत तीन हजार साल से जैसा था वैसे ही जीवित चला आया है, जो समस्त संसार के उद्धार के लिए आज जिन्दा है।

'भगवान व्यास जगत के आद्य पैगम्बर हो गए हैं। उन्होंने अनुभव किया, सिखलाया कि मनुष्यमात्र में दैवी अंश है। जब भी राग, भय और क्रोध की शृंखला टूट जाती है तब इस देह में होते हुए भी उनको सिद्धि मिलती है। उन्होंने जो धर्म सिखलाया वही सनातन है। आज भारत जिन्दा है इसी धर्म के कारण। यदि भारत महान् होगा तो इसी धर्म के द्वारा समस्त संसार को एक और अपूर्व करने के लिए ?

'उनको मैं बह्विस्तंभ के रूप में देख रहा हूँ। जिन–जिन को उसकी प्रेरणा मिलती है उनको यह स्तम्भ आत्मसिद्धि के रास्ते पर आगे ले जाता है।'

ईसा से लगभग 400 वर्ष पूर्व यह क्षेत्र महापद्मनन्द के अधिकार में आया, चन्द्रगुप्त मौर्य ने उसे हराकर यहाँ मौर्य वंश की पताका फहराई। बिन्दुसार के शासन में यह क्षेत्र अवन्ति प्रान्त में था, जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी। इसका छत्रपति अशोक था, जिसने कालपी के पंचनदा क्षेत्र से आगे कुछ दूरी पर गुजर्रा (जिला दतिया) में अपना शिलालेख लगवाया था।

कालपी में चन्द्रगुप्त मौर्य तथा कुमारगुप्त के सिक्के प्राप्त होने की भी सूचना मिलती है। इतिहासकार फरिश्ता के अनुसार कालपी की स्थापना कन्नौज के राजा वसुदेव ने चौथी शताब्दी में की थी। हर्षवर्धन के राज्य में कालपी में विशाल सूर्य मन्दिर का पुनर्निर्माण हुआ तथा यहाँ सूर्य मेला की परम्परा प्रारम्भ हुई। इसे ही कालप्रियनाथ सूर्य मन्दिर कहते थे।

उल्लेखनीय है कि सूर्य मन्दिर की सर्वप्रथम स्थापना यहाँ द्वापर युग में यदुवंशी कृष्ण की रानी जाम्बवंती से उत्पन्न पुत्र शाम्ब ने की थी। सुदर्शन व्यक्तित्व के धनी शाम्ब को शापवश कुष्ठ हो गया था। उन्होंने कुष्ठ से मुक्ति के लिए यहाँ सूर्य की आराधना की थी। उसने तीन प्राचीन सूर्य मन्दिर बनवाए थे, जिनमें एक मूल स्थान (मुल्तान, अब पाकिस्तान में), एक कालप्रिय (कालपी) में तथा एक सुतीर (कोणार्क) में बनवाया था। यह तीनों ही सूर्य के संचरण–पथ (ऑरबिट) पर थे तथा यहाँ से खग्रास (पूर्ण) सूर्यग्रहण भलीभाँति देखकर उसका अध्ययन किया जा सकता था।

प्राच्यविद् डॉ. वी.पी. मिराशी ने 'मामुलिया' में लिखा है कि राष्ट्रकूट (आधुनिक मालखण्ड, आन्ध्र प्रदेश) के राजा इन्द्र तृतीय ने 915 ई. के आसपास, जब दक्षिण से उत्तर भारत आकर कन्नौज पर आक्रमण किया तो

यमुना पार करते समय उसकी सेना यमुना के तट पर स्थित सूर्य मन्दिर के प्रांगण में ठहरी थी। यह प्रांगण इतना विस्तृत था कि हाथी, घोड़ों तथा पदाति सैनिकों सहित उसकी संपूर्ण वाहिनी इसमें समाहित हो गई थी। इस विशाल मन्दिर के प्रांगण की दीवारों को हाथियों ने अपने दाँतों के प्रहारों से क्षतिग्रस्त कर दिया था। तद्नुसार –

यन्माद्यत् द्विपदन्त घात विषमं कालप्रिय प्रांगङ्म्
तीर्णा यन्तुर गौर गाध यमुना सिन्धु प्रतिस्पर्धिनी।
येनेदं द्वि महोदयानि नगरं निर्मूलन्भुक्ति तं
नाम्नाऽद्यापि जनैः कुशस्थल मितिख्यातिं परां नीयते।

अर्थात् (भगवान) कालप्रिय (के मन्दिर) का प्रांगण उसके अर्थात् इन्द्र तृतीय के मदस्रावी हाथियों के दाँतों के घात से ऊबड़–खाबड़ हो गया था। उसके घोड़ों ने विस्तार में समुद्र से स्पर्द्धा करने वाली अगाध यमुना पार की। उसने शत्रु के नगर का उन्मूलन कर दिया। जिसके फलस्वरूप अब भी वह जनसाधारण में कुश स्थल (घास से भरा स्थान) के नाम से परमप्रसिद्ध को प्राप्त होता है (प्रा.नि.)।

आइने कालपी के अनुसार महमूद खाँ लोदी के समय में कालपी पर लहरिया राजा उर्फ श्रीचंद का शासन था। वह कालपी का अंतिम हिन्दू राजा था। कालपी पर अधिकार करने के उपरान्त महमूद खाँ लोदी ने श्रीचंद का वध कर दिया था। उसकी सात रानियाँ कालपी के सूर्य मन्दिर पर जाकर सती हो गई थीं। उनकी स्मृति में यहाँ सात मठियों का निर्माण किया गया। जिला गजेटियर के अनुसार राजा श्रीचंद्र का सिर कालपी नगर के एक दरवाजे के नीचे गाड़ दिया गया, जिसे आजकल 'श्री दरवाजा' कहते हैं। स्त्री सती पति की चिता के साथ ही होती है अतः मेरे विचार से, सतीत्व रक्षा के निमित्त किए गए रानियों के इस प्राणोत्सर्ग को 'जौहर' कहना अधिक प्रासंगिक है। साथ ही श्री दरवाजे का नामकरण भी बाद में किया गया होगा। इस घटना का उल्लेख इस रूप में यहाँ प्रासंगिक है कि कालपी में सूर्य मन्दिर का अस्तित्व मुसलमानों के आधिपत्य जमाने तक रहा। भले ही इसका अधिकांश भाग इंद्र तृतीय की वाहिनी ने नष्ट कर दिया हो।

वहाँ सात मठियाँ बनने से इस स्थान को स्थानीय शब्दावली में 'सतमठिया' कहते हैं तथा सूर्य मन्दिर के कुण्ड को, श्रीचंद्र राजा की पटरानी लोधादेवी के नाम पर 'लोधा कुण्ड' के नाम से जाना जाता है। अब कुण्ड की प्राचीर यमुना के थपेड़ों से यमुना में विलीन हो चुकी है, किन्तु जनमानस इस

(ह्रद) को 'लोधा कुण्ड' ही कहता है। इन पंक्तियों के लेखक ने लगभग दो दशक पूर्व, उक्त स्थान पर लगने वाले सूर्यमेला में भाग लिया था, जिसमें आस–पास के कई जिलों के श्रद्धालु यमुना में स्नान कर रहे थे तथा भग्न सूर्य मन्दिर के स्थान पर पताकाएँ फहरा रहे थे। यहाँ से स्थानीय हिन्दी भवन के कार्यकर्ताओं को भगवान सूर्य की एक भग्न प्रतिमा प्राप्त हुई थी, जो कभी यहाँ महात्मा गांधी हिन्दी संग्रहालय में सुरक्षित था। उसका एक फाइल चित्र, इस लेखक के पास सुरक्षित है। अखिल भारतीय काशिराज ट्रस्ट द्वारा शोधकार्य के निमित्त आये पं. श्याम बिहारी मिश्र ने ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित 'पुराणम्' में लिखा है कि 'वह सूर्य की भग्न प्रतिमा है, जो प्राचीन सूर्य मन्दिर में रही होगी।' आजकल उस स्थान पर न तो मन्दिर का कोई भवन है और न सूर्य प्रतिमा ही। अलबत्ता कुछ भग्न शिलाखण्ड तथा प्रस्तर स्तम्भ चक्र–गदा आदि पड़े थे। किन्तु हजारों ग्रामीणों के हृदय में इस स्थल के प्रति गहरा श्रद्धा भाव है। उनके विश्वास से, उनकी मनौतियाँ पूरी होने पर वे 'डला' (प्रसाद) तथा पताकाएँ चढ़ाते हैं। यह आस्थामयी परम्परा ही इस सूर्यमेला की आत्मा है।

कहा जाता है कि ह्वेनसांग के समय कालपी में बौद्धों का एक विशाल मठ था। यह शिक्षा, वाणिज्य तथा कला–कौशल का बड़ा केन्द्र था। इसके पूर्व में कौशाम्बी तथा दक्षिण–पश्चिम में जैजाकभुक्ति नामक दो बौद्ध राज्य थे। इनके बीच में कालपी ही आवागमन का सरल मार्ग था, अतः इसके भी उच्च शिक्षा केन्द्र होने की सम्भावना बलवती होती है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन कुछ दिनों कालपी में रहे थे, उन्होंने स्थानीय विद्वानों से चर्चा में, चौरासी गुम्बद को बौद्धकालीन शिक्षा केन्द्र होने की सम्भावना जताई थी। *दैनिक जागरण* के संस्थापक पूर्णचंद्र गुप्त की स्मृति में प्रकाशित ग्रंथ *पूर्ण प्रदक्षिणा* (सम्पादक – योगेन्द्र मोहन गुप्त) में भी चौरासी गुम्बद के चित्र–परिचय में लिखा है – 'अशोककालीन विद्यालय, वर्तमान में चौरासी गुम्बद के नाम से विख्यात है।' (*पूर्ण प्रदक्षिणा,* पृष्ठ 19)

'सकल उत्तरापथनाथ' सम्राट हर्ष के पश्चात् यह क्षेत्र चन्देलों के अधीन हो गया। उन्होंने दसवीं शताब्दी में सामरिक महत्त्व के कालपी नगर में यमुना की कगार के ठीक ऊपर एक भव्य दुर्ग का निर्माण कराया, जिसके अंदर भूमिगत संरचना तथा विशाल भण्डारागार थे। चन्देलों के अधिकार में कालिंजर, महोबा तथा कालपी के दुर्ग होने से उनकी स्थिति काफी मजबूत हो गई थी। चन्देल शासकों ने यहाँ सैन्य छावनी स्थापित की थी। राजा धंग के समय यहाँ 2500 पदाति, 5000 अश्वारोही तथा 21 हाथियों के दल

स्थायी रूप से रहने की सूचना मिलती है।

इसके पश्चात् भारत में उत्तर पश्चिम की ओर से यवनों के आक्रमण होने लगे थे। इन आक्रमणों का प्रतिरोध करने के लिए हिन्दू क्षत्रिय राजपूतों के 36 वंशों ने एक 'संघ' बनाया था। चन्देल नरेश गंड भी इस संघ में सम्मिलित था। इसी अवधि में काशी क्षेत्र के बनस्पर क्षत्रिय भी इस अँचल में आ गए थे। इन्हें स्थानीय बोली में 'बनफर' कहते थे। उनकी बोली 'बनाफरी' थी। वीर युवक आल्हा–ऊदल–मलखान इसी बनाफर जाति के थे जिन्हें चन्देल नरेश परमर्दिदेव (परमाल) की महारानी मल्हना ने अपने दत्तक पुत्र की भाँति पाला–पोसा था। इनकी शूरता–वीरता की धाक बुन्देलखण्ड ही नहीं, समस्त उत्तर एवं मध्य भारत तक थी।

आल्हाखण्ड की अनेक लड़ाइयाँ कालपी क्षेत्र में लड़ी गईं। 'बेतवा नदी के दरैरो' में इस अँचल के चतेला, बागी, मरगायाँ तथा बबीना में लड़ाइयाँ होने, योद्धाओं के शिविर लगने तथा युद्धरत वीरों के पलायन का उल्लेख मिलता है। बेतवा की लड़ाई के समय पृथ्वीराज की सेना द्वारा लाखन के डेरे पर अचानक नृत्य की महफिल में आक्रमण किया गया। उस समय आल्हा–ऊदल तथा उनके साथियों ने कालपी क्षेत्र के उक्त ग्रामों में शरण ली थी –

नाच होत तौ तहुँ पातुर का, छापा जोधन मारौ जाय,
भगदड़ मच गऔ तुरत नाच माँ, सबरे भाग गए सरदार।
आल्हा भाग रयें बागी कों, मरगाएं को लहुरवा लाल,
कौनऊँ भागौ गाँव चतेला, कौनऊँ भागौ बबीना जाय।

(जगनिक, पृष्ठ–8)

उल्लेखनीय है कि इसी गाँव चतेला में आल्हा के गुरु–श्रेणी के गायक सूफी संत पीरासाईं भी रहते थे, जिनके एक शिष्य नामी–गिरामी अल्हैत फत्ते कसाई, मूसानगर ग्राम के थे। यह मूसानगर (जिला–रमाबाईनगर, कानपुर देहात) चतेला के निकट, यमुना के उस पार स्थित है। वहाँ मुक्ता देवी का चन्देलकालीन सिद्ध मन्दिर है। उनका स्मरण आल्हाखण्ड रचयिता जगनिक ने कुछ वर्णनाओं की सुमरिनी में किया है। आल्हाखण्ड में बेतवा की लड़ाई में, इस अँचल में 'परासन' के बेतवा घाट को धाँदू–योद्धा द्वारा घेरने तथा वहाँ युद्ध करने का भी उल्लेख मिलता है –

घाट घिराये बेतवती के, घाटन पहरौ दियौ लगाय,
नगर लुटन की अब बारी है, घर घर महुबौ लियो घिराय।

कब्जा करौ बेतवा ऊपर, मुंशी जौन चौड़िया राय,
घाट पराशन 'धाँदू' घेरें, 'ताहर' रिरुआ लियौ दबाय।

(सारस्वत–जालौन जनपद विशेषांक, पृष्ठ–34)

पृथ्वीराज चौहान तथा परमाल के मध्य आखिरी लड़ाई (जैतखम्भ की लड़ाई) 1182 ई. अकोढ़ी–बैरागढ़ के मैदान में हुई थी। इसमें पृथ्वीराज विजयी हुआ था तथा चंदेल राजा परमाल पराजित हुआ। परिणामतः कालपी भी पृथ्वीराज चौहान के अधीन हो गया, जहाँ वह अपने प्रतिनिधि पज्जनूराय को शासन सौंपकर दिल्ली वापिस चला गया। चन्देल शासक भी यहाँ अधिक दिनों तक सत्तासीन नहीं रह सके। शहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ोरी ने आक्रमण करके तराइन के मैदान में 1193 ई. को पृथ्वीराज चौहान को हरा दिया तथा ग़ोरी ने अपने एक गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक को शासन सौंप दिया। ऐबक ने 1202–1203 ई. में आक्रमण करके कालिंजर, महोबा तथा कालपी के किलों पर अधिकार करके यहाँ मुस्लिम शासन स्थापित कर लिया।

फरिश्ता, इसके आगे लिखता है कि कालिंजर विजय के बाद ऐबक ने कालपी को राज्य की राजधानी बनाकर, महोबा के किले पर विजय प्राप्त किया तथा सेना 'बदायूँ' की ओर रवाना हुई। निष्कर्ष यह कि कालपी, कुछ अवधि तक, कालिंजर तथा महोबा की राजधानी भी रही। शासन की सुविधा के लिए ऐबक ने, कालपी क्षेत्र के कनार मोहाल में, एक विश्वस्त अफगान सरदार की नियुक्ति करके उसका मुख्यालय बनाया।

हिन्दुओं के प्रसिद्ध तीर्थ कालंजर, जो कि कालपी के अंतर्गत आ गया था, की दुर्दशा का चित्र भी समकालीन इतिहासकार ताजुल–मा–अतहर के शब्दों में देखिए–

हि. 599 (सन् 1202 ई.) में कुतुबुद्दीन ने कालंजर पर आक्रमण किया। उस अभियान में उसके साथ साहिब–किरान शम्सुद्दीन अल्तमश भी था। कालंजर का राजा अभिशप्त परमार, लड़ाई के मैदान में सामना करने के पश्चात् भग्नांश किले में भाग गया। बाद में आत्मसमर्पण करके उसने गले में पराधीनता का कंठाभूषण पहन लिया किन्तु राजभक्ति का वचन देने के पश्चात् उसे उसी रूप में ग्रहण कर लिया गया जिस रूप में मु. सुबुक्तगीन द्वारा उसके पूर्वज ग्रहण किए गए थे। उसने कर और हाथी देने की शर्त स्वीकार की। इन शर्तों में से किसी एक का भी पालन करने के पूर्व ही उसकी स्वाभाविक मृत्यु हो गई। उसका दीवान जिसका नाम अजदेव था, उतनी सरलता से आत्मसमर्पण के लिए तैयार नहीं था, जितनी सरलता से उसके

मालिक ने कर दिया था। अपनी शत्रुओं को वह परेशान करता रहा। जब किले के भीतर सब जलाशय साधनों के काट देने से सुखा दिए गए तब अंत में वह आत्मसमर्पण के लिए बाध्य किया जा सका। बीसवीं राजब, दुर्गरक्षक सेना अत्यंत छिन्न–भिन्न और दुर्बल रूप में सामने आई। उसे अपने स्थान को खाली करके छोड़ना पड़ा। कालंजर दुर्ग जो विश्व–भर में सिकंदर की दीवार की भाँति मजबूती के लिए प्रसिद्ध था, ले लिया गया। मन्दिर मस्जिद बना दिए गए। सौजन्य के स्थान, अक्षमाल के जाप करने वालों के स्वर और प्रार्थना के लिए आमंत्रित करने वालों की वाणी सबका अंत हो गया। मूर्ति–पूजा का नाम मिटा दिया गया। पचास हजार आदमी गुलाम बनाए गए। वह भाग हिंदू–विहीन हो गया। हाथी, पशु और अगणित शस्त्रास्त्र भी विजेता के हाथ लगे।

कालंजर और महोबा की राजधानी कालपी में क्या हुआ ? कालंजर की राजधानी कालपी होने के कारण क्या इस मन्दिर भंजन अभियान में कालपी भी शामिल था ? इसके लिए तत्कालीन इतिहास की परतें खँगालना, शोध–अध्येताओं का काम है। *तारीखे मुहम्मदी* के अनुसार कालपी (मुहम्मदाबाद) में मन्दिरों के स्थान पर अल्लाह की एबादत के लिए मस्जिदों का निर्माण कराया और उस नगर को अपनी राजधानी बनाया। इससे हिन्दू मन्दिरों का विध्वंस किया जाना प्रतीत होता है।

इस संदर्भ में इतिहासकार चि.वि. वैद्य (*हिस्ट्री ऑफ मेडिवल हिन्दू इंडिया*, भाग–3, पृष्ठ–183) लिखते हैं कि परमर्दि की शक्ति पृथ्वीराज के आक्रमणों से बहुत क्षत–विक्षत हो गई। इसे एक ऐसी भूल समझनी चाहिए जो राष्ट्रीय विनाश का कारण बनी, क्योंकि चन्देल तत्कालीन भारत के अग्रणी शासकों में थे। इससे विदेशी हमलावरों को भारत प्रवेश का खुला मार्ग मिल गया।' इससे हिन्दू तीर्थों की क्या दुर्दशा हुई, इसका विवरण मुस्लिम इतिहासकारों की कलम से देखने को मिलता है। *तारीखे फरिश्ता* (उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान संस्करण) के अनुसार कुतुबद्दीन ऐबक ने, बनारस में ही एक हजार हिन्दू मन्दिरों को ध्वस्त किया। बनारस में शिहाबुद्दीन ग़ोरी का दरबार हुआ, वहाँ हाथियों का समूह जीत की खुशी में ग़ोरी के सामने पेश किया गया। इनमें एक सफेद हाथी भी था, वह शिहाबुद्दीन ग़ोरी ने ऐबक को भेंट कर दिया (पृष्ठ–135)। अनुमान है कि यह सफेद हाथी कालपी के जंगलों से, ग़ोरी ने प्राप्त किया होगा, क्योंकि उस समय सफेद हाथी की प्रजाति कालपी में पाई जाती थी।

चन्देलों ने यह आकलन भलीभाँति कर लिया था कि कालपी यमुना नदी पर स्थित है, इसका जलमार्ग से इन्द्रस्थ से सीधा जुड़ाव है। राजमार्ग पर उत्तरापथ तथा दक्षिणापथ के संगम पर स्थित होने के कारण यह उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम जाने का सुगम रास्ता है तथा इसे केन्द्र बनाने से व्यापारिक तथा सामरिक स्थिति मजबूत हो जाएगी। कालपी दुर्ग पालकों की महत्त्वपूर्ण हैसियत होगी। यमुना, बेतवा तथा चम्बल के भूभाग पर भी अधिकार स्थापित करने के लिए, कालपी का मजबूत होना आवश्यक है। इसीलिए उन्होंने यहाँ विशाल दुर्ग बनवाया था।

कालान्तर में इसका महत्त्व परवर्ती शासकों की समझ में आ गया था। 'यह भी कहा जा सकता है कि कालपी परिक्षेत्र (उत्तरी बुन्देलखण्ड) गुड़ की पारी (ढेली) के समान था। जैसे गुड़ की पारी पर चींटी, चीटा ततइया, बर्रे मँडराती हैं वैसे ही इस कालपी परिक्षेत्र के सरसब्ज भूभाग को हथियाने हेतु महमूद गजनवी, मुहम्मद ग़ोरी, कुतुबुद्दीन ऐबक जैसे अफगान लुटेरे शासक, सिकन्दर एवं इब्राहीम लोदी जैसे लोदी सुल्तान, जहीरुद्दीन बाबर दिल्ली, शेरशाह सूरी, वीर सिंह बुन्देला, ओरछा, छत्रसाल बुन्देला, गोविन्द बल्लाल खेर मराठा, बालाजी गोविन्द राव ने बार–बार आक्रमण किए।' (*संधान*–10, पृष्ठ–104) अंग्रेजों सहित इन आक्रान्ताओं का उद्देश्य लूट तो होता ही था। उन्होंने न जाने कितनी बार लूटा, रौंदा, इमारतों को ध्वस्त किया, महिलाओं को अपमानित किया। उक्त दृष्टिकोण से सभी आक्रान्ताओं ने अति विश्वस्त अधिकारी वहाँ नियुक्त किए अथवा विश्वस्त लोगों को कालपी का आधिपत्य दिलाकर उनसे अपने अनुकूल संधियाँ कीं। उदाहरण के लिए हुमायूँ ने अपने पिता बाबर के भाई नासिरुद्दीन मिर्जा के पुत्र यादगीर नासिर मिर्जा (अपने सगे चचेरे भाई) को गर्वनर बनाया। सिकन्दर लोदी ने अपने पुत्र जलाल खाँ को कालपी की जागीर सौंपी थी। बादशाह अकबर ने अपने नवरत्नों में से एक अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना को गवर्नर बनाया था। बाजीराव पेशवा ने छत्रसाल से उत्तराधिकारी के रूप में संधि पर आधारित बुन्देलखण्ड का हिस्सा प्राप्त किया। बाजीराव पेशवा ने अपने अति विश्वस्त गोविन्द पंत बल्लाल खेर थे। पेशवा बाजीराव ने उन्हें बुन्देलखण्ड का सूबेदार बनाकर गोविन्द पंत बुन्देला की उपाधि दी थी। उन्होंने पहले अपना मुख्यालय गुरसराय तथा जालौन बनाया। इसमें भी उसने कालपी, जालौन तथा उरई का इलाका अपने छोटे पुत्र गंगाधर गोविन्द को सौंपा जो जालौन के राजा कहलाए किन्तु उन्होंने अपना मुख्यालय भी कालपी में ही बनाया। इनके शासनकाल में गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्ज ने बंगाल से बम्बई जाने

वाली सेना का मार्ग कालपी होकर निर्धारित किया तथा जबरन कालपी के किले पर कब्जा कर लिया। विवश गंगाधर गोविन्द को भी अंग्रेजों से सन्धि करनी पड़ी। अंग्रेजों का मानना था कि कालपी केन्द्रीय भारत की चूल है तथा उस पर प्रत्येक स्थिति में उनका आधिपत्य रहना ही चाहिए। यह तथ्य 1858 की लड़ाई के समय, इतिहासकारों ने अपने–अपने ढंग से लिखा।

पुरातत्वविदों के अनुसार दसवीं से तेरहवीं सदी तक जो पुरावशेष कालपी तथा उसके आस–पास मिले उससे पता चलता है कि धार्मिक एवं व्यावसायिक क्षेत्र के साथ ही स्थापत्य एवं मूर्तिकला में कालपी ने अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया था। तेरहवीं–चौदहवीं शताब्दी में यहाँ बुन्देलों का भी प्रवेश हो गया था। वह अपनी आदि राजधानी मऊ–मिहोनी (कोंच) से कालपी तक आ गए थे। इसी बीच फीरोज तुगलक ने सर्वप्रथम अपने अधीनस्थों का मुख्यालय यहाँ बनाया, बाद में उसके पुत्र मुहम्मद खाँ के पास रही। तत्पश्चात् मुहम्मद खाँ पुत्र कादिर खाँ (1426 ई. में) यहाँ का शासक बना।

सैयद वंश के शासकों के समय यह जौनपुर के शर्की शासकों तथा मालवा के शासकों की युद्धभूमि बना। तत्पश्चात् कादिर खाँ उर्फ कादिर शाह तथा उसका पुत्र नादिरशाह शासक बना। 1479 में यह लोदीवंश के अधीन हो गया तथा मुहमद खाँ लोदी तथा उसके मरणोपरान्त उसका पुत्र जलाल खाँ लोदी शासक हुआ।

पानीपत की लड़ाई में, लोदीवंश के पतन के पश्चात्, कुछ दिनों की अफरा–तफरी में कालपी के स्थानीय शासक आलम खाँ के पास रहा। 1527 में बाबर की विजय के पश्चात्, हुमायूँ ने आलम खाँ को अपदस्थ करके यहाँ मुगल साम्राज्य का झण्डा गाड़ दिया। बाद में, बाबर ने आलम खाँ को अभयदान देकर कालपी का जागीरदार उसके पुत्र जमाल खाँ को दे दिया। बाबर कालपी दो बार आया था। एक बार दिसम्बर 1527 में चन्देरी विजय के समय तथा दूसरी बार बिहार–बंगाल की विजय के बाद लौटते समय। बाबर ने 22 फरवरी 1528 को, कनार घाट से नदी पार की। इन यात्राओं के समय उसने कनार से कालपी के जंगलों को कटवाकर सेना के रसद ले जाने योग्य बनवाया, कनार घाट पर नावों की व्यवस्था की। कालपी में उसका भव्य स्वागत आलम खाँ ने किया था। बाबर ने अपने संस्मरणों में कालपी यात्रा का रुचिकर वर्णन किया है। उसके अनुसार 'कालपी का इलाका घने जंगलों का था, जहाँ हाथी भी थे। इन हाथियों को पकड़कर कड़ा मानिकपुर के बाजार में बेचा जाता था।' मुगल सेना में भी कालपी के हाथी, बन्दूकची

तथा धनुषधारी भर्ती किए जाते थे। कालपी को 'सरकार' का दर्जा प्राप्त था। उसमें कनार, भदेख, रायपुर, मुहम्मदाबाद, चुर्खी तथा कालपी नामक मोहाल थे। कालपी दो मोहालों में विभक्त था। एक का नाम 'हवेली' तथा दूसरे का 'बुल्दा' था। कालपी परगने का कुल राजस्व लगभग चार करोड़ अट्ठाइस लाख रुपये था। कालपी से आगरा तक की वापसी यात्रा बाबर ने घोड़े से की थी। हुमायूँ के काल में, कालपी पर कुछ दिनों शेरशाह सूरी का भी शासन रहा। उसकी मृत्यु के कुछ दिनों बाद सूरी वंश के ही आदिलशाह सूरी तत्पश्चात् हेमू ने कालपी पर अधिकार कर लिया। पानीपत की दूसरी लड़ाई में अकबर द्वारा हेमू को परास्त करने के बाद मुगलों का कालपी सहित पूरे क्षेत्र पर अधिकार हो गया था। अकबर ने अब्दुल्ला खाँ उजबेक को 'सुजात खाँ' की उपाधि देकर कालपी की जागीर दी। (फरिश्ता, पृष्ठ–135)

अकबरकालीन इतिहास की अनेक यादें कालपी से जुड़ी हैं। कुछ प्रस्तुत हैं–

कालपी के कुछ स्थानीय राजपूत यहाँ मुगल सेना का विरोध कर रहे थे इसलिए जब अकबर ने चित्तौड़ के राणा उदय सिंह पर आक्रमण किया तो कालपी से लगभग एक हजार बन्दूकची चित्तौड़ की रक्षा के लिए गए। इनके साथ कुछ अच्छे धनुर्धर भी थे। इन्होंने अकबर की सेना को अपनी अचूक निशानेबाजी से नाकों चने चबवा दिए। इसकी नाराजी से अकबर ने चित्तौड़ विजय के बाद कालपी के बन्दूकचियों को कड़ा दण्ड दिए जाने का आदेश दिया किन्तु (डॉ. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव के *अकबर दी ग्रेट*, भाग–1, पृष्ठ–19 के अनुसार) ये सैनिक पहले ही वेष बदलकर, चित्तौड़ से निकलकर कालपी वापिस आ गए। इसके बाद मुगल सेना ने यहाँ से बन्दूकची भर्ती करने प्रारम्भ कर दिए थे। उल्लेखनीय है कि पंचनदा (कनार) के निकट कुछ गाँव सैन्य बहुल हैं, जहाँ से सेना में जवान बराबर शहीद होते रहे हैं। इस अँचल के गाँव हदरुख में दिवंगत सैनिकों की याद में 'शहीद स्मारक' भी बनाया गया है। इस क्षेत्र में पूर्व सैनिकों के परिवारों की संख्या दस हजार से अधिक है। अनेक क्षत्रिय उच्च सेनाधिकारी भी रहे हैं। इनमें अशोक चक्र विजेता भी सम्मिलित हैं।

मुगल रोमांसिज (ले. चोब सिंह वर्मा) में कालपी के एक युवक की प्रेम–कथा का विवरण मिलता है। अकबर के समय कालपी के प्रमुख सैयद मूसा थे। रणथम्भौर के आक्रमण में जाने के लिए उनका पुत्र सैयद मूसा आगरा गया। वहाँ एक स्वर्णकार की एक सुन्दरी पुत्री मोहिनी के आकर्षण में उससे प्रेम की पेगें भरने लगा। किन्तु सामाजिक कारणों से परिवार वालों

ने विवाह की अनुमति नहीं दी, उसके दुःख में सैयद मूसा की मृत्यु हो गई। प्रेमी के विरह में सुन्दरी ने भी अपने प्राण त्याग दिए। दोनों प्रेमियों की कब्र आगरा में ताजमहल के निकट एक टीले पर अभी भी बनी हुई है।

कालपी के निकट एक गाँव इटौरा है। यह मार्ग (वर्तमान में) आटा ग्राम से परासन के मार्ग में है। यहाँ निरंजनी सम्प्रदाय के प्रवर्तक संत रोपणि गुरु साधना करते थे। वह मूलतः उरई के निकट कुकरगाँव के निवासी थे। वहाँ इनका मन्दिर बना है जिसमें उत्तर–मध्य कालीन भित्ति चित्रों का अद्‌भुत खजाना है। इनकी आध्यात्मिक शक्तियों की काफी चर्चा रहती थी। कालपी के महेश दास दुबे {जो बाद में बीरवर (बीरबल) के नाम से विख्यात हुए तथा अकबर के नव–रत्नों में थे}, यहाँ आते–जाते थे। काशी नागरी प्रचारिणी सभा की एक पाण्डुलिपि में, इस सम्प्रदाय का नाम 'प्रणामी पंथ' भी कहा जाता था। शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास भी प्रणामी पंथ की शिष्य परम्परा में थे। रोपणि गुरु के शिष्य रतिभान कवि ने 'जैमिनी पुराण' का हिन्दी काव्यानुवाद किया था। यह धर्म भी सर्वधर्म का समन्वयक था। अकबर 1583 ई. में कालपी आया था तथा वहाँ के जागीरदार मतलब खाँ का अतिथि रहा था। उसने वहाँ रोपणि गुरु की सिद्धियों की चर्चा सुनी तथा उनके दर्शनार्थ

रोपन गुरु समाधि मन्दिर, अकबरपुर (इटौरा) कालपी

इटौरा गया। यह इटौरा उरई से लगभग 40 किलोमीटर तथा कालपी से लगभग 25 किलोमीटर दूर है। उनसे प्रभावित होकर अकबर ने वहाँ विशाल तालाब तथा एक मन्दिर बनवाने की घोषणा की। आगरा जाकर उसने लाल पत्थर भिजवाया। तब तक रोपणि गुरु का देहावसान हो गया था। वहाँ लाल पत्थर से रोपणि गुरु का समाधि मन्दिर बना तथा विशाल तालाब के बीच में एक बारादरी बनवाई गई। गाँव का नाम इटौरा अकबरपुर कर दिया गया। अब यहाँ दो गाँवों का समूह है एक गुरु का इटौरा तथा एक इटौरा अकबरपुर। इनको मिलाकर एक ही ग्राम सभा है – इटौरा। यहाँ कार्तिक माह में 'गुरु का मेला' लगता है। अनेक श्रद्धालु बालकों का मुण्डन कराने को यहाँ आते हैं। अब यह तालाब अतिक्रमण की चपेट में है।

अकबर के समय में ही अरबी–फारसी के एक विद्वान शेख हसन कालपी वाले रहते थे। फैजी की पुस्तक 'मवरिक उल्कामिल' में शेख हसन के कई पत्रों का उल्लेख है। एक पत्र में फैजी ने लिखा था कि जब आप आवें 'मकसद उशशोअरा' नामक ग्रंथ अवश्य लेते आवें। (रामचन्द्र वर्म्मा, अकबरी दरबार भाग–2, पृष्ठ–415)

राजा बीरबल देश में 'राष्ट्रीय एकता तथा साम्प्रदायिक सद्भाव' के शिखर पुरुषों में एक थे। अकबर द्वारा प्रचलित 'दीन–ए–इलाही' (सर्वधर्म समन्वयक धर्म) की परिकल्पना बीरबल की ही थी। जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन (*वर्नाकुलर लिटरेचर ऑफ माडर्न हिन्दुस्तान,* पृष्ठ–35) के अनुसार 'धार्मिक मुसलमान इसे इस्लाम धर्म का अधोपतन मानते थे तथा उनका मानना था कि बीरबल ने इसके लिए अकबर पर प्रभाव डाला था।' इसी महत्त्व के कारण सम्राट अकबर ने उन्हें अपने नवरत्नों में स्थान दिया था। उसका जन्म 1528 तथा मृत्यु 1583 में बताई जाती है। उसका शव भी युद्धभूमि से नहीं मिल सका। अतः निधन तिथि एवं स्थान में भी मतान्तर है।

अकबर अपने अनन्य मित्र तथा विश्वस्त मंत्री बीरबल की मृत्यु से अत्यन्त दुखी था। उसने बीरबल की मृत्यु पर अपना दुख इन शब्दों में व्यक्त किया था –

कदम दिल के अजीन वाकिया जिगर ख़ूँ ने अस्त।
कदम दीदा के अजीन हादिसा जिगर खूने अस्त।

शेरशाह सूरी तथा अकबर के माल–मंत्री रहे (राजा) टोडरमल खत्री की ससुराल कालपी थी, जहाँ वह घर–जमाई के रूप में रहे। वर्तमान में, इसमें एक खत्री परिवार का निवास है। इसे 'टोडरमल की कचैरी' कहते हैं।

यहाँ वे अपना दरबार लगाते तथा नागरिकों से मंत्रणा करते थे। उनका ऐतिहासिक योगदान यह था कि उन्होंने 5 वर्ष में ही पूरे देश की खेतिहर जमीन की पैमाइश करवाई, मालगुजारी निर्धारित की तथा पेशावर से कलकत्ता तक पक्का जी.टी. रोड बनवाया। अकबर ने कालपी की जागीर अब्दुर्रहीम खानखाना को देकर कालपी का गवर्नर नियुक्त किया था। इन्हें 'रहीम' कवि के नाम से भी जाना जाता है। अकबर के शासन काल में कालपी की जागीर अन्य कई लोगों को भी समय–समय पर दी गई। इनमें कासिम अली तथा अब्दुल्ला खाँ के पास भी रही।

इस प्रकार कालपी नगर से जुड़ी तीन हस्तियाँ राजा बीरबल, राजा टोडरमल खत्री तथा अब्दुर्रहीम खानखाना, अकबर के नवरत्नों में थे। इससे अकबरी दरबार में कालपी का विशेष महत्त्व सुस्थापित है।

बुन्देलखण्ड तथा कालपी क्षेत्र के अनेक किस्सागो 'अकबर बादशा' के अनेक लम्बे–लम्बे किस्से तथा कहानियाँ रातभर 'अथाई' पर अथवा जाड़ों में 'अलाव' पर सुनाते हैं। उनका अभिलेखीकरण अपने आप में इस विषय पर एकाग्र बड़ा साहित्यिक–अनुष्ठान हो सकता है। इसका लोकेतिहास की दृष्टि से बड़ा महत्त्व होगा। अकबर के शासनकाल में कालपी में एक टकसाल स्थापित की गई थी।

अकबर के बाद जहाँगीर तथा शाहजहाँ के काल में कालपी में कुछ विशेष घटित नहीं हुआ। इसके पश्चात् बुन्देलों का उदय हुआ। इसी जिले के मऊ–मिहौनी में बुन्देली राज्य स्थापित करने वाले बुन्देलों के यशस्वी पुत्र चम्पतराय के पास कालपी जागीर दो बार रही। उसके बाद महाराजा छत्रसाल बुन्देला के रूप में क्षेत्र का नया नायक मिल गया। उन्होंने एरिच कनार से कालपी तक मुगलसत्ता उखाड़कर अपनी विजय पताका फहराई। उनके समकालीन 'लाल कवि' ने *छत्रप्रकाश* काव्य ग्रंथ में लिखा है –

एरिच और पूँछ परजारी,
कुचर कनार कालपी डारी।

इस मुस्लिम शासन में कालपी में कुछ सूफी संतों की समृद्ध परम्परा के दर्शन होते हैं। अकबर के समय में कालपी में एक सूफी संत शेख बुरहान रहते थे। सौ वर्ष की आयु में 1563 ई. में इनका देहान्त हुआ। इनको अरबी नहीं आती थी, किन्तु कुरान की शिक्षा दिया करते थे। शेख बुरहान के शिष्य अवधी के कवि मलिक मुहम्मद जायसी तथा कुतबन थे। जायसी ने *अखरावट* में लिखा है –

नाव पियार शेख बुरहानू।
नगर कालपी हुत गुरु थानू।

इसी कालखण्ड में सैयद मुहम्मद हुए जो हज़रत इमाम हुसैन के वशंज सैयद अबू सईद के पुत्र थे। वह लाहौर से कालपी आए थे जहाँ उनको यह पुत्र हुआ। इसका नाम सैयद मुहम्मद था और बड़े होकर उन्होंने पूरे उत्तर भारत में धार्मिक क्षेत्र में ख्याति अर्जित की। उन्होंने सूफीमत की प्रत्येक धारा में दीक्षा प्राप्त करके 'कुतुब आलम' (जगद्गुरु) की उपाधि प्राप्त की। इनके पुत्र सैयद अहमद हुए। यह भी अत्यंत सात्विक प्रकृति के फकीर थे। वे अच्छे कवि थे और उन्होंने हिन्दी तथा फारसी दोनों में 'काव्य' रचना की। इनका स्थान 'मदरसा' (स्थापित 1047 हिजरी) तथा खानकाह शरीफ (कालपी शरीफ) नाम से प्रसिद्ध हुआ। सैयद मुहम्मद की मृत्यु 1071 ई. में 'मदरसा' (कालपी) में हुई। इनकी मृत्यु पर गुलाम आजाद बिलग्रामी ने लिखा था –

कुत्ब आलम यगा नये दौरा, मीर सैयद मुहम्मद जी शां।
गुफ्त तारीख रेह लतश आज़ाद रफ्ते कुतुब जमां वसुदे जिना।

अर्थात् – कुतुब स्वर्ग की ओर चले गए। इनकी कब्र इसी मदरसे में है।

बुन्देलखण्ड अँचल में बुन्देली शासन का सर्वाधिक विस्तार चंपतराय के पुत्र छत्रसाल बुन्देला ने किया। उस समय बुन्देलखण्ड का प्रवेशद्वार कालपी था। नर्मदा से कालपी की यमुना तक उनका साम्राज्य विस्तृत था। उन्होंने पन्ना को राजधानी बनाकर शासन का संचालन किया। देश में हिन्दू शक्तियों को संगठित करने के लिए उन्होंने छत्रपति महाराज शिवाजी से भी भेंट की थी। स्वाभिमानी छत्रसाल की प्रशंसा में महाकवि छत्रसाल ने *छत्रसाल दशक* तथा शिवाजी की प्रशंसा में *शिवा–बावनी* लिखी। ये दोनों काव्य उस कालखण्ड में हिन्दू शक्तियों के ऊर्जाकरण में विशेष शक्ति का संचार करते थे। छत्रसाल के जीवन के अंतिम चरण में मालवा तथा फर्रूखाबाद के नवाब वंगश ने उन पर अचानक आक्रमण कर दिया। उस समय तक उनके सैनिक, लम्बे सत्ता सुख के बाद उदासीन हो गए थे। उनकी सेनाएँ सामर्थ्य और अभ्यास खो चुकी थीं। हथियार जंग खा चुके थे। अतः उन्होंने पूना के पेशवा बाजीराव से सैन्य सहायता माँगी। उन्हें इस निमित्त भेजे गए पत्र में छत्रसाल ने निम्नांकित मार्मिक (स्वरचित) काव्य पंक्तियाँ लिखीं –

जो गति भई गजेन्द्र की, सो गति पहुँची आय।
बाजी जात बुन्देल की, राखौ बाजी राय।

छत्रसाल ने बाजीराव को अपने पुत्रवत मानने का आश्वासन दिया। बाजीराव ने शर्तें तय करके, एक सन्धि के आधार पर सहयोग किया। इसमें कुल राज्य तथा संपत्ति का एक तिहाई भाग पेशवा को, एक तिहाई वंश परम्परानुसार ज्येष्ठ पुत्र हृदयशाह को तथा शेष एक तिहाई अपने शेष इक्यावन पुत्रों में बाँटा। मालूम हो उसके बावन बेटे थे। इसकी पुष्टि एक लोकगीत से भी होती है – 'बा छतरा के बावन मौड़ा, अपनौ अकेलौ सैयद गाजी।' इस प्रकार पूर्व चिह्नित एक तिहाई राज्य पर मरहठों का शासन स्थापित हो गया। उनके प्रथम गवर्नर गोविन्द पंत बल्लाल खेर बनाए गए। उन्होंने इस अँचल के प्रबन्ध हेतु सागर, गुरसराय तथा जालौन–कालपी तीन केन्द्र बनाए। जालौन–कालपी का मुख्यालय कालपी में रहा तथा वहीं सेना का अड्डा बनाया गया। जालौन के किले में भी राज परिवार के लोग रहने लगे। इस प्रकार कालपी मरहठों का शासन केन्द्र बन गया। यहीं से 1857 की लड़ाई, पूना से निर्वासित पेशवा, नाना साहब (जो बिठूर में रहने लगे थे) के नेतृत्व में लड़ी गई। इस युद्ध का प्रथम चरण मई से कानपुर की पराजय (6 दिसम्बर 1857) तक अनियोजित था। 2 जनवरी 1858 से कालपी दुर्ग को विधिवत 'युद्ध कक्ष' बनाकर युद्ध की घोषणा की गई। कालपी के पतन (22 मई 1858) तक यही युद्ध का संचालन केन्द्र रहा।

यहाँ कालपी क्षेत्रान्तर्गत बावनी–रियासत की चर्चा प्रासंगिक है। बावनी राज्य, जिसका मुख्यालय कदौरा था, इस क्षेत्र में एकमात्र मुस्लिम रियासत थी। 52 ग्रामों का समूह होने का कारण यह 'बावनी' कहलाया। यह 121 वर्ग मील क्षेत्र और दो लाख रुपये राजस्व आय का राज्य था। 1921 में इसकी जनसंख्या 19,732 थी। इस राज्य की स्थापना हैदराबाद के निजाम तथा दिल्ली के बादशाह के मंत्री गाजीउद्दीन खाँ ने 1784 ई. में की तथा वे नबाव गाजी खाँ की रोज जंग कहलाए। इसे पूना के पेशवा द्वारा सनद दी गई थी। जिसे ब्रिटिश शासन ने मान्यता प्रदान की थी। बावनी राज्य के नवाबों का वंशक्रम इस प्रकार है – गाजीउद्दीन, नसीरुद्दौला, नाजिमुद्दौला, मुहम्मद हुसैन खाँ, रियाज–उल–हसन खाँ तथा मुहम्मद मुश्ताक–उल–हसन खाँ। सम्पूर्ण उपाधियों सहित इनका पूरा नाम इस प्रकार लिखा जा सकता था – "आजम उल उमरा, इपि–वखार–उद–दौला, इमाद–उल–मुल्क, साहिब–इ–जाह, मिहिम–सरदार–हिज –हाइनैस नवाब मुहम्मद मुश्ताक– उल–हसन खाँ बहादुर सफदरजंग। नवाब को सभी

दीवानी फौजदारी अधिकार थे तथा ग्यारह तोपों की सलामी तथा वाइसराय से वापिसी मुलाकात का अधिकार भी प्राप्त था। राज्यों के विलीनीकरण के पश्चात् नवाब साहब लखनऊ में रहने लगे थे, किन्तु प्रिवीपर्स समाप्ति के बाद पुनः कदौरा वापस लौट आए। नवाब की शानो–शौकत के किस्से मशहूर हैं। वह अथवा बेगम साहिबा कदौरा से लखनऊ जाने के लिए कालपी रेलवे स्टेशन से बैठते थे। कार से लेकर प्लेटफार्म पर प्रथम श्रेणी के डिब्बे तक 'लाल कालीन' बिछाया जाता था।

⌘

आंचलिक लोकांकन

श्री करवा–चौथ पूजन

नाग पंचमी

देवठान एकादशी

पूजन चौक

स्वातन्त्र्यचेता कालपी

(1857 से 1947 तक)

स्वतंत्रता संग्राम के नब्बे वर्षों में कालपी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में यह पेशवा नाना साहब के नेतृत्व में संघर्ष का केन्द्र रहा। क्रान्तिकारियों का झंडा यहाँ 2 जनवरी 1858 से कालपी के पतन (दि. 22 मई 1858) तक फहराता रहा। यहाँ के संघर्ष तथा संग्राम की चर्चा संसार के प्रमुख इतिहासकारों ने की है। गांधी जी का स्वराज आन्दोलन भी जिले में मुख्यतः कालपी के दो सपूतों मन्नीलाल पाण्डेय तथा बेनीमाधव तिवारी के नेतृत्व में लड़ा गया। पाण्डेय जी मूलतः कालपी के निवासी थे तथा तिवारी जी कालपी के निकट ग्राम आटा के थे। उनका कालखण्ड 'पाण्डेय–तिवारी युग' के नाम से जाना जाता है।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में कालपी की विशेष भूमिका थी। वर्ष 1857 के अन्तिम दिनों में ही कालपी क्रान्ति का प्रमुख केन्द्र बन चुका था। 6 दिसम्बर को कानपुर में नाना साहब की पराजय के बाद क्रान्तिकारी कालपी आ गए थे। किन्तु उन्होंने 2 जनवरी 1858 से कालपी में विधिवत् नियंत्रण केन्द्र बनाकर वहाँ से भावी व्यूह रचना प्रारम्भ की थी। इसी दिन नाना साहब के सेनानायक तात्या टोपे तथा शिविर सहायक मुहम्मद इशहाक ने बुन्देलखण्ड के समस्त शासकों को व्यक्तिगत पत्र भेजकर उनसे सहयोग की याचना की तथा सेनाएँ कालपी भेजने का अनुरोध किया। इन पत्रों में यह स्पष्ट किया गया था कि यह संघर्ष देश में जनशान्ति तथा सद्भाव के लिए किया जा रहा है। इसका उद्देश्य हिन्दू तथा मुस्लिम धर्म भ्रष्ट करने वाले ईसाई शासकों का देश से निष्कासन है। इसका उद्देश्य पेशवा द्वारा किसी राज्य पर कब्जा करना नहीं अपितु विभिन्न शासकों का शासित क्षेत्र उन्हें दिलाना है ताकि वे उस पर शान्तिपूर्वक राज्य कर सकें। मुहम्मद इशहाक ने अपने पत्र में यह भी उल्लेख किया था कि ब्रिटिश नियन्त्रण के राज्य क्षेत्र बुन्देलखण्ड के शासकों में क्रान्ति के सहयोग में उनकी भूमिका के आधार पर वितरित कर दिए जाएंगे। यह पत्र लेकर पं. बाबा देवी गिरि को विशेष दूत के रूप में भेजा गया। यहीं से सामूहिक जन–क्रान्ति का नियोजित अभियान प्रारम्भ हुआ था।

तात्या टोपे की उक्त अपील जारी होने के बाद उन्होंने कालपी में

शस्त्रागार तथा सेना की कमान का नेतृत्व सँभाल लिया। जालौन के तहसीलदार नारायण राव को कार्यालय प्रभारी बनाया गया। नाना साहब पेशवा के भतीजे राव विश्वास ने स्थायी रूप से कालपी दुर्ग में अपना आवास बनाकर डेरा डाल दिया। नाना साहब के भाई बालाभट्ट भी मकर संक्रान्ति के पवित्र दिन कालपी आ गए। कालपी दुर्ग में आयुध निर्मात्री केन्द्र स्थापित कर दिए गए। जालौन से आए कसगरों ने स्थानीय शोरा, कोयला तथा मिर्जापुर से प्राप्त गन्धक से बारूद बनानी प्रारम्भ कर दी। तोपों तथा गोलों की ढलाई तथा कारतूस बनाने का काम जोरों से प्रारम्भ हो गया। किले में अन्दर एक भूमिगत शस्त्रागार बनाया गया जो उस समय देश के क्रान्तिकारियों का सबसे बड़ा शस्त्रागार माना जाता था। जिले में अंग्रेजों का प्रवेश रोकने तथा सीमाओं पर नियन्त्रण के लिए जगम्मनपुर से हमीरपुर जाने वाली समस्त नौकाओं को जगम्मनपुर तथा कालपी में क्रान्तिकारियों ने अपने हाथ में ले लिया।

यमुना घाट तथा हमीरपुर रोड पर बैटरीज स्थापित कर लीं। एक गुप्तचर सूचना के अनुसार 6 जनवरी 1858 को कालपी दुर्ग में 12 तोपों के साथ 3000 क्रान्तिकारी एकत्रित थे जिनमें 2000 इसी जिले के कछवाहाघार के थे। कालपी दुर्ग में हो रही इन तैयारियों का उल्लेख 21 जुलाई 1958 के न्यूयार्क *डेली ट्रिब्यून* के एक सम्पादकीय के रूप में फेडरिक ऐंगिल्स द्वारा इस प्रकार किया गया था – "मई के मध्य तक कालपी की सेना को छोड़कर उत्तर भारत की समस्त विद्रोही टुकड़ियों ने बड़े पैमाने पर लड़ाई करना छोड़ दिया था। कालपी की इस सेना ने अपेक्षाकृत थोड़े ही समय के अन्दर इस शहर में सैनिक कार्यवाहियों का एक पूरा केन्द्र संगठित कर लिया था। खाने–पीने का सामान बारूद और दूसरी आवश्यक चीजें उनके पास प्रचुर मात्रा में थीं। उनके पास बहुत सी तोपें थीं और यहाँ तक कि बन्दूकें तथा हथियार ढालने तथा बनाने के कारखाने भी थे।" लो वेंज कृत "सेन्ट्रल इण्डिया" के अनुसार – "सेनानियों ने किले के अन्दर मकानों तथा शिविरों का निर्माण किया था। आयुधशालाएँ तैयार की थीं। उनके द्वारा ढाले गए कारतूस अदोष थे। उनके पास शैल्स तथा साठ हजार पॉउण्ड बारूद का विशाल भण्डार था। इससे प्रतीत होता है कि वे स्वतंत्रता सेनानी लम्बी अवधि के लिए तैयार थे।"

इसी बीच एक अप्रैल को झाँसी में घमासान युद्ध हुआ। किशोरवय रानी साहस एवं पराक्रम से लड़ीं किन्तु विजय उनके हाथ से निकल गई। वह राव साहब से परामर्श के लिए तात्या टोपे के साथ कालपी की ओर चल दी। सर ह्यूरोज को झाँसी की रानी के कालपी की ओर जाने की सूचना

गुप्तचर तंत्र से मिलते ही उसने कालपी की ओर प्रस्थान किया। क्रान्तिकारियों ने कालपी दुर्ग में मंत्रणा की तथा निर्णय लिया कि सर ह्यूरोज की सेना को कोंच में ही रोक दिया जाए। कालपी सैन्य दृष्टि से इतना अधिक महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन चुका था कि उसे बचाने के लिए कोंच को युद्ध क्षेत्र बनाना उपयुक्त एवं सुविधाजनक समझा गया। कोंच को समरांगण बनाने का निर्णय उसकी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण लिया गया। यद्यपि कोंच एक खुला नगर है तथापि उसके चारों ओर वृक्ष, बाग तथा कुछ मन्दिरों की ऊँची दीवारें हैं जो युद्धकाल में रक्षापंक्ति का काम करती हैं। इससे दुश्मनों की मार आसान नहीं होती है केवल नगर की पश्चिमोत्तर सीमा पर प्राकृतिक अवरोध न्यूनतम थे। रानी तथा तात्या टोपे कोंच आ गए। बाग–बगीचा, गलियों तथा सड़कों में घमासान युद्ध हुआ। अंग्रेज सैनिकों ने मन्दिरों के अन्दर घुसकर वहाँ एकत्रित भक्तों और पुजारियों तक का क़त्लेआम किया, निरीह नागरिकों ने उनका डटकर मुकाबला किया। 16 घण्टे अनवरत युद्ध चलता रहा। अंग्रेजों की समृद्ध तथा सक्षम सेना के आगे क्रान्तिकारी पराजित हो गए। वे भारी मात्रा में शस्त्रास्त्र, बारूद तथा वस्त्र फेंक–फेंककर युद्ध मैदान से भागने लगे। लगभग 500 क्रान्तिकारी शहीद हुए। 52वीं बंगाली सेना लगभग नष्ट हो गई। नौ तोपें, अच्छी अंग्रेजी बारूद तथा भण्डार सामग्री अंग्रेजी सेना को मिल गई। अंग्रेजी सेना के 25 सैनिक मारे गए। कोंच की पराजय से क्रान्तिकारियों को काफी धक्का लगा। रानी कालपी चली गईं। कोंच का सैन्य नियोजन तथा सैनिकों की सुरक्षित वापसी की सराहना सावरकर तथा सभी इतिहासकारों ने की।

कोंच की पराजय से हताश और दुखी जालौन की रानी ताईबाई ने अपने समर्थकों सहित 10 मई, 1858 को उरई में टरनन के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। कोंच की पराजय से क्षुब्ध क्रान्तिकारियों के समक्ष जीवन–मरण का प्रश्न था। रानी, तात्या टोपे, राव साहब, नवाब बाँदा सभी अपने–अपने संसाधनों सहित कालपी पहुँच गए। मार्ग में ग्रामीण इन सबके लिए पेयजल की व्यवस्था तथा स्वागत करते, यात्रा के लिए बैलगाड़ियाँ देते तथा अंग्रेजी डाक छीनकर इन क्रान्तिकारियों को दे देते थे। इस उमड़ते जनसमर्थन से ब्रिटिश अधिकारी हैरत में थे।

इधर कालपी में क्रान्तिकारियों की तैयारी जारी थी। उन्होंने चौरासी गुम्बज से यमुना तक के सभी मार्ग काट दिए। स्थान–स्थान पर खाइयाँ खोद दीं। ब्रिटिश सेना के अवरोध एवं मुकाबले के लिए 13 चौकियाँ स्थापित कीं। दस सहस्र सैनिक युद्ध के लिए सन्नद्ध थे तथा 200 नौकाएँ उनके नियंत्रण

में थीं। उन्होंने बीहड़ों में भी अवरोध बनाकर प्रथम रक्षापंक्ति तैयार कर ली थी। दूसरी रक्षापंक्ति चौरासी गुम्बज की दिशा में बनाई गई।

सर ह्यूरोज की सेना ने यमुना के बाईं ओर पड़ाव डालने के लिए जलालपुर–कालपी मार्ग से, गुलौली की ओर प्रस्थान किया। यमुना का तटवर्ती भाग अत्यन्त खतरनाक है, संचार के लिए वहाँ जासूसों की सेवाएँ जूतों की तल्ली के नीचे पत्र भेजकर ली गई। कुछ जासूस बांसुरी में पत्र छिपाकर लाए थे। जासूस छद्मवेश में ही यह दुष्कर कार्य कर रहे थे। शत्रु के इस खतरनाक इलाके में यह सैनिक चौकन्ने तथा शस्त्र सन्नद्ध चल रहे थे। मार्ग में उन पर विद्रोही अश्वारोहियों ने आक्रमण भी किए किन्तु वह निष्फल रहे। सर ह्यूरोज की सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि बम्बई तथा बंगाल दोनों स्थानों की सेनाएँ आ चुकी थी। मैक्सवेल की सेना भी सहयोग हेतु उपलब्ध थी। कालपी के समृद्ध शस्त्रागार पर उनका संयुक्त प्रहार सुनिश्चित कर लिया गया था। उसके सामने एक नई परेशानी खड़ी हो गई कि जहाँ उसकी सेना एकत्रित थी, गरमी के कारण कुएं सूख गए थे। जल स्तर नीचे चला गया था, प्यास से तरसते सैनिकों को पानी नहीं मिला। अनेक सैनिक और पशु प्यास से मरने लगे। क्रांतिकारी इस परेशानी और बुन्देलखण्ड की तेज धूप सहन न कर पाने की अंग्रेजों की परेशानियों को समझ रहे थे। चिलचिलाती धूप में अंग्रेजी सैनिकों को डोली में रखकर शिविरों में लाया जाता था।

क्रांतिकारियों ने अंग्रेजों की सन्नद्ध सेनाओं को देखकर यह समझ लिया कि अब भीषण संग्राम प्रारम्भ होने वाला है। उन्होंने किलाघाट पर एकत्रित होकर यमुना की पवित्र जलराशि हाथ में लेकर शपथ ली कि वे सर ह्यूरोज की सेना को जलसमाधि देकर ही दम लेंगे अन्यथा मर जावेंगे। "करो या मरो" ही उनका संकल्प था। अंग्रेजी अधिकारियों के पत्र व्यवहार से यह संकेत भी मिलता है कि इन सैनिकों को तन्मयतापूर्वक संघर्षशील बनाए रखने के लिए अफीम की प्रचुर मात्रा में आपूर्ति की गई थी।

22 मई का दिन निर्णायक था। उस दिन अंग्रेजी तोप वाहिनियों ने आग उगलनी शुरू कर दी। क्रांतिकारियों ने नगर तथा बीहड़ों की ओर से प्रहार किए। अंग्रेजी सेना को बीहड़ों में मार्ग ढूँढ़ने में परेशानी हुई। उसने 'ऊँट–वाहिनी' का सहारा लिया। यह युक्ति सफल रही। अभियान आसान हो गया।

क्रांतिकारियों की गोलाबारी धीमी थी। मैक्सवेल की तोपें लगभग 20 घंटे अविराम गोलाबारी करके क्रांतिकारियों के प्रमुख ठिकानों को ध्वस्त

कर चुकी थीं। अंग्रेजी सेनाएं सफलता की ओर बढ़ने लगीं। बीहड़ों को साफ करते तथा क्रांतिकारियों को खदेड़ते हुए उसकी सेना ने अगले दिन 23 मई को उगते सूर्य के प्रकाश में कालपी नगर में प्रवेश किया। प्रमुख क्रान्तिकारी जीवित बन्दी नहीं बनाए जा सके। इनके पलायन की योजना बनी। सैनिक शस्त्र और वस्त्र फेंककर भागे। दुर्ग खाली हो गया। अंग्रेजी सेना ने तीन दिन तक कालपी नगर को जी भर कर लूटा। दुर्ग के एक कक्ष में एक बक्स में रानी लक्ष्मीबाई के कागज बरामद हुए जिनमें महत्त्वपूर्ण पत्र व्यवहार था। इससे विद्रोह तथा विद्रोहियों पर प्रकाश पड़ता था। इस क्षेत्र के कलेक्टर, उप आयुक्त तथा सैटलमेंट ऑफीसर रहे कैप्टेन ए.एच. टरनन के अनुसार On the taking of Calpee a large chest was found in the fort containing much rebel correspondence. Every leading family in the district was compromised. डिप्टी कमिश्नर ने इनमें से बहुत आवश्यक कागजात फॉरेन सेक्रेटरी (विदेश सचिव) को अग्रसारित कर दिए थे।

इस युद्ध में क्रान्तिकारियों को भारी क्षति उठानी पड़ी, उनके 500–600 योद्धा शहीद हुए। कई सज्जित हाथी अंग्रेजों को मिले। तोपें तथा गोला बनाने वाले चार आयुध निर्माण केन्द्र नगर तथा दुर्ग में मिले। दुर्ग में भूमिगत विशाल शस्त्रागार में लगभग 500 बैरल बारूद (लगभग दस हजार पौण्ड) मिली। स्थानीय आयुध निर्माताओं में 18 पाउण्डर ब्रासगन, एक इंची ब्रास मोर्टार, दो ब्रास पाउण्डर तोपें बरामद हुईं। नौ हजार कारतूस तथा अनेक प्रकार के अस्त्र, उपकरण तथा पुर्जे अंग्रेजी सेना के हाथ लगे। कालपी के युद्ध में ब्रिटिश सेना के 4 अधिकारी तथा 40 सैनिक एवं कर्मी मारे गए। अनेक अधिकारी गम्भीर रूप से घायल हुए। अंग्रेज अधिकारियों, विशेषकर राबर्ट हैमिल्टन, ने कालपी युद्ध को अंग्रेजों की उपलब्धि के रूप में देखा।

कालपी पतन के पश्चात् राव साहब पेशवा तथा रानी लक्ष्मीबाई गोपालपुरा पहुँचे। तात्या टोपे यहाँ पेशवा से मिले। बाँदा नवाब के भी वहीं पहुँच गए। भावी रणनीति पर विचार किया गया। तय हुआ कि कुछ दिन वहीं रुककर ग्वालियर पर आक्रमण किया जाए और वे उस ओर चले गए।

प्रथम स्वतंत्रता संघर्ष के समय का एक महत्त्वपूर्ण नाम सामने आया है – 'कालापानी' के सजायाफ्ता मीर कादिर अली का। उनकी एक आत्मकथा 'मुरक्काए–इंकलाब' (उर्दू) की जानकारी पत्रकार–साहित्यकार 'एहसान आवारा' (बाँदा) को अपने मित्र साबिर अदीम हमीरपुरी से हुई। उन्होंने इसे 'क्रान्तिकारी मीर कादिर अली और कालापानी 1857 के *सिंदबाद की आत्मकथा* नाम से बुन्देलखण्ड संग्रहालय से (सं.–देवेन्द्र कुमार सिंह, डॉ. हरिमोहन पुरवार)

प्रकाशित कराया। इससे पाठकों को पता चला कि कालपी के निकट कठपुरवा गाँव के एक जमींदार परिवार में सन् 1822 में जन्मे मीर कादिर अली को किस प्रकार अंग्रेजों का कोपभाजन बनना पड़ा। इस आत्मकथा में .... कालापानी की सजा के दौरान पोर्ट ब्लेयर (अण्डमान तथा निकोबार) जाने, वहाँ से भाग निकलने, जलीय जीव जंतुओं से संघर्ष करके फिर वहीं पहुँचने तथा अंग्रेज अधिकारी को प्रसन्न करके रिहा होने तक की उनकी संघर्षगाथा, रहस्य, रोमांच तथा खतरों से जूझने की अदम्य कथा थी। वह कालपी ही नहीं, जिला जालौन से कालापानी की सजा भुगतने वाले चार साथियों भारत सिंह, चौ. मुकुन्द सिंह, शेखर अजमत अली, काजी रौशन अली के साथ कालपी से गए थे। अतः इस अध्याय में उनकी चर्चा प्रासंगिक है।

इस जनपद के रक्त से जन्मे व्यक्तियों ने भी प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इस दृष्टि से उल्लेखनीय नाम कालपी में नबाव हसीमुद्दीन खाँ की बेटी ताजआरा का है। उनका विवाह अवध के चौथे बादशाह अमजद अली शाह (17 मई 1842–13 फरवरी 1847) के साथ हुआ था। उनको 'मलिका–किश्वर' की उपाधि मिली थी। मलिका–किश्वर यदा कदा ही महलों से बाहर निकली थीं, किन्तु 7 फरवरी 1856 को नवाब वाजिद अली शाह को पदच्युत किए जाने के बाद कालपी की यह बेटी ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकारियों की अन्यायपूर्ण नीति का पर्दाफाश करने तथा महारानी विक्टोरिया से शिकायत करने लंदन तक गईं। इस बीच में क्रान्ति तेज हो जाने से तंत्र व्यस्त हो गया। लंदन में वह अपने पक्ष में कुछ बता नहीं पाईं। अन्याय का प्रतिकार करने का दृढ़ संकल्प लेकर वह जूझती रहीं तथा वहाँ से लौटते समय पेरिस में उनका निधन हो गया।

स्वराज आन्दोलन

जालौन जनपद का स्वराज आन्दोलन, लगभग पाँच दशक की जनचेतना, जनसंलिप्तता तथा जनसंघर्ष का इतिहास है। इसका श्रीगणेश ऋषितुल्य साधक तथा उरई नगर के आधुनिक निर्माता राय बहादुर पं. गोपालदास शर्मा के प्रयासों से हुआ। शर्मा जी 1900 ई. में झाँसी से उरई आकर वकालत करने लगे थे। उसके पूर्व उन्होंने 1892 में प्रयाग कांग्रेस में बहैसियत स्वयं सेवक कार्य किया था। वे सन् 1896 से 1916 तक कांग्रेस के अधिवेशन में प्रतिवर्ष सम्मिलित हुए तथा 1915 में जब लोकमान्य तिलक तथा श्रीमती ऐनीबेसेण्ट ने होमरूल लीग की स्थापना की तो श्री शर्मा ने अपने को 'होमरूलर' घोषित किया। यद्यपि जब 1916 में राष्ट्रीय राजनीति से सर तेज बहादुर सप्रू

तथा सी.वाई. चिन्तामणि ने कांग्रेस छोड़कर इण्डियन लिबरल फेडरेशन की स्थापना की तो शर्मा जी भी कांग्रेस छोड़कर फेडरेशन में सम्मिलित हो गए। रायबहादुर शर्मा जी द्वारा लिबरल फेडरेशन में चले जाने के बाद 1916 में कांग्रेस में जो रिक्तता आई उसे भरने के लिए कालपी के दो युवक, जो उरई में रहने लगे थे, आगे आए। ये थे – फौजदारी के प्रसिद्ध वकील मन्नीलाल पाण्डेय तथा बेनीमाधव तिवारी (आटा)। पाण्डेय जी सक्रिय सदस्य बना लिए गए। बाद में प्रदेश कांग्रेस कमेटी में सदस्य भी बनाए गए। श्री पाण्डेय जी प्रदेश सेवादल के अध्यक्ष तथा प्रदेश स्काउट कमिश्नर भी रहे।

प्रथम विश्व युद्ध के समय महात्मा गांधी के आदेश से अंग्रेजी शासन को सहयोग के लिए पूरे देश में रंगरूटों की भर्ती शुरू हुई। प्रत्येक जिले में सहायक रिक्रूटमेंट अफसर बनाए गए। इस जिले में यह दायित्व श्री मन्नीलाल पाण्डेय तथा पं. बेनीमाधव तिवारी (आटा) को सौंपा गया। उरई क्लब के नवनिर्मित भवन में तत्कालीन कलेक्टर लिडियार्ड की अध्यक्षता में एक विशाल सभा हुई। जिले के सभी वर्गों से एक हजार से अधिक व्यक्ति आमंत्रित किए गए। जनता के मन में यह संदेह था कि एक ओर कांग्रेस अंग्रेजों का विरोध कर रही है तथा दूसरी ओर अंग्रेजों को युद्ध के लिए चंदा और रंगरूट देकर उनके हाथ मजबूत कर रही है। यह दोहरी नीति क्यों ? विशेष रूप से पाण्डेय जी तथा तिवारी ने इस सभा को सम्बोधित करते हुए महासमर में अंग्रेजों के प्रति कांग्रेस के समर्थन का औचित्य स्पष्ट किया। उन्होंने बताया कि ब्रिटिश सत्ता ने महात्मा गांधी को आश्वासन दिया है कि युद्ध में विजय के बाद भारत को स्वराज मिल जाएगा तथा ये अधिकारी हम भारतीयों के मातहत होंगे। तालियों की गड़गड़ाहट से क्लब का मैदान गूँज उठा। इससे अनेक अंग्रेज अधिकारी अप्रसन्न हुए।

अंग्रेजों ने प्रथम विश्व युद्ध के बाद जब होमरूल नहीं सौंपा तो 1920 में पूरे देश में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। यह आन्दोलन शांतिपूर्ण था। कांग्रेस ने आह्वान किया कि अंग्रेजी हुकूमत के साथ पूर्ण असहयोग किया जाए तथा सरकारी पद, उपाधियाँ, अलंकरण त्याग दिए जाएं। विद्यार्थी अंग्रेजी स्कूलों में न जाएं, सरकारी कचहरियों के बजाय पंचायतों में वादों का निपटारा किया जाए, कौंसिलों का बहिष्कार किया जाए। असहयोग आन्दोलन का नेतृत्व पाण्डे जी तथा तिवारी जी ने किया।

3 दिसम्बर 1921 को इलाहाबाद में प्रांतीय कांग्रेस कमेटी की मीटिंग हुई जिसमें प्रिंस ऑफ वेल्स ब्रिटिश युवराज के भारत आने पर

बहिष्कार पर विचार हुआ। इसमें पं. जवाहर लाल नेहरू तथा प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के अन्य 54 सदस्यों सहित उरई के पं. मन्नी लाल पाण्डे की गिरफ्तारी हुई। इससे जिले के युवा वर्ग में क्रोध और देशभक्ति की लहर दौड़ गई। छात्रों ने अंग्रेजी स्कूलों का बहिष्कार प्रारम्भ कर दिया। जिले के युवकों पर पाण्डेय जी का विशेष प्रभाव था। इस गिरफ्तारी के कुछ ही दिन बाद पं. बेनीमाधव तिवारी भी बन्दी बना लिए गए। वे दोनों व्यक्ति कुछ ही दिन लखनऊ सेन्ट्रल जेल में रहे जहाँ उन्हें जनपद में भावी कार्यक्रमों पर विचार करने का पर्याप्त अवसर मिला। तय हुआ कि राजनीति के साथ रचनात्मक कार्यक्रमों तथा समाजसेवा को जोड़ा जाए, हरिजन उद्धार, सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन की दिशा में प्रयास किया जाए।

इस अन्तराल में जनपद में एक महत्त्वपूर्ण घटना घटी पं. बेनीमाधव तिवारी द्वारा *देहाती* समाचार पत्र के प्रकाशन की। बंगाल के सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी गोपीनाथ साहा को मृत्युदण्ड की सजा सुनाने पर तिवारी जी ने एक ज्वलन्त सम्पादकीय (अग्रलेख, देखें–परिशिष्ट–2) में लिखा कि 'यदि गोपीनाथ साहा को फाँसी न देकर ब्रिटेन के उन राजनीतिज्ञों की बुद्धि को फाँसी दे दी जाती तो अधिक अच्छा होता।' इनके इसी से मिलते–जुलते एक अन्य वक्तव्य के कारण उन पर राजद्रोह का मुकदमा चला। तिवारी जी को दो वर्ष की सजा हुई तथा *देहाती* को बन्द करना पड़ा।

इसी अवधि में असहयोग आन्दोलन के विकसित रूप में स्वदेशी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इसमें भारत निर्मित वस्तुओं के उपयोग पर बल दिया गया। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार प्रारम्भ हो गया। स्वदेशी आन्दोलन में कालपी के श्री मुन्नालाल खत्री का योगदान अप्रतिम है। उन्होंने द्वार–द्वार जाकर खादी तथा ग्रामोद्योग की अलख जगाई। वस्तुतः कालपी में कागज उद्योग तथा कुटीर उद्योगों की व्यापकता उनके ही प्रयासों का परिणाम है। महात्मा गांधी ने भी अपने पत्रों में उनके प्रयास को सराहा था। कालपी में गांधी जी के आह्वान पर स्वदेशी तथा रचनात्मक कार्यों का जो आह्वान किया गया था, उसको सक्रिय करने के लिए 1927 में श्री हिन्दी विद्यार्थी सम्प्रदाय द्वारा 'हिन्दी भवन' के बैनर तले काफी काम हुआ।

'हिंदी भवन' का शुभारम्भ 1927 में, कालपी के कुछ युवकों द्वारा 'श्री हिंदी विद्यार्थी सम्प्रदाय' के नाम से किया गया। बाद में उक्त संस्था का मुख्यालय 'हिंदी–भवन' के नाम से बना। इसकी स्थापना में सक्रिय कुछ युवक थे जो सभी स्वतंत्रता–संग्राम सेनानी भी रहे। इनमें से कुछ के नाम

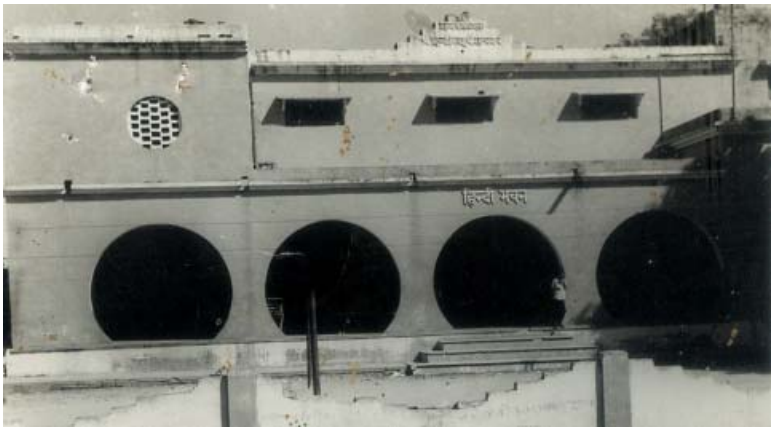

हिंदी भवन कालपी स्थापित 1927

हैं–(अब सर्व स्वर्गीय) चंद्रभानु विद्यार्थी, बाबू मोतीचंद्र वर्मा, पूर्णचंद्र गुप्त, जगदीश नारायण रुसिया तथा श्री चौधरी आदि। इस संस्था ने उस कालखंड में दक्षिण भारत में जाकर हिंदी भाषा का प्रचार–प्रसार किया, विंध्य प्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन तथा अनेक प्रतिष्ठात्मक आयोजन किए। प्रदेश के मुख्यमंत्री सम्पूर्णानन्द जी तथा वरिष्ठ पत्रकार परिपूर्णानन्द वर्म्मा के संरक्षण में हिंदी भवन राष्ट्रीय स्तर की संस्था बन चुका था। इसके द्वारा निर्मित व्यास मन्दिर का शिलान्यास करने 1953 में तत्कालीन राज्यपाल के.एम. मुंशी जी आए थे। इसके बाद लगभग पाँच दशकों तक प्रदेश के अधिकांश राज्यपाल 'हिंदी–भवन' में पधारे थे। इस संस्था के अंतर्गत अनेक शिक्षण संस्थाएँ, हरिजन छात्रावास, महात्मा गांधी संग्रहालय आदि बने। स्वदेशी उत्पादों, खादी तथा हस्तनिर्मित कागज का उत्पादन हुआ। संस्था पत्र लोकसेवा अंत तक हस्तनिर्मित कागज पर ही प्रकाशित होता रहा। इसके संस्थापकों में से एक पूर्णचंद्र गुप्त ने पहले झांसी तथा बाद में कानपुर से *दैनिक जागरण* का प्रकाशन किया। यह पत्र आज संसार के सर्वाधिक प्रसारित दैनिक पत्रों में गिना जाता है। इसी पृष्ठभूमि में में बाबू मोतीचंद्र वर्मा के पुत्र डा. अरुण मेहरोत्रा कालपी विधान सभा से भाजपा विधायक चुने गए, जबकि जातीय दृष्टि से खत्री समाज की संख्या उक्त विधान सभा में नगण्य है। आजकल यह संस्था लगभग बंद रहती है। यद्यपि कुछ वर्षों बाद उसका शताब्दी वर्ष आने वाला है।

लाहौर अधिवेशन (30–31 दिसम्बर 1929 तथा 1 जनवरी 1930) में पारित प्रस्ताव के अनुसार 26 जनवरी को पूरे देश में पूर्ण स्वतन्त्रता का

संकल्प लेने का निश्चय किया गया।

इसी वर्ष जिले की राजनीतिक चेतना को बल देने के लिए एक जिला राजनीतिक सम्मेलन आयेाजित किया गया। स्वागत अध्यक्ष पाण्डेय जी स्वागत मंत्री चतुर्भुज शर्मा जी बनाए गए। सभापतित्व बाँदा के कुँवर हरप्रसाद ने किया। पं.बेनीमाधव तिवारी ने मुद्रित भाषण पढ़ा। सत्याग्रह के लिए स्वयंसेवकों की भर्ती की गई, जिसमें 43 नाम आए।

1930 की एक घटना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 10 अगस्त की कजरी मेले पर जिलाधिकारी चन्द्रदत्त पाण्डे कालपी पहुँचे। उस दिन कालपी नगर के कार्यकर्ता विदेशी कपड़ों की दुकानों पर धरना दे रहे थे। उन सबने जिलाधिकारी का घेराव किया तथा बाध्य किया कि वे तिरंगा लेकर सत्याग्रहियों के साथ जुलूस में चलें। विवश जिलाधिकारी को कुछ दूर झण्डा हाथ में लेकर साथ देना पड़ा। बाद में पुलिस दल ने आकर जिलाधिकारी को मुक्त कराया।

नमक आन्दोलन की समाप्ति तक सम्पूर्ण देश में स्वराजवादी कार्यकर्ता तैयार हो चुके थे किन्तु कांग्रेस को जनाधार की तलाश थी। वह ऐसा जनाधार चाहती थी कि प्रत्येक गाँव एवं शहर में जनता स्वयं उठकर खड़ी हो। इसके लिए शीर्ष नेताओं में चर्चा के दौर चले। 1932 में गोलमेज सम्मेलन से लौटने के बाद स्वराज के लिए जनसंघर्ष नीति को नए सिरे से पुनर्मूल्यांकित करके किसान आधारित आन्दोलन खड़ा करने का निर्णय लिया गया। कांग्रेस ने साहित्यकारों तथा पत्रकारों से किसानों की दुर्दशा पर लेखनी चलाने का आह्वान किया। भूमिगत कांग्रेस बुलेटिन सभी ग्रामों, नगरों तथा शहरों में बँटवाने तथा दीवालों पर पोस्टर चिपकाने का अभियान छेड़ा गया। पार्टी ने इस कार्य के लिए अखबार वितरण करने वाले हॉकर्स से गुपचाप सहयोग माँगा ताकि पुलिस को पता भी न चले और काम बन जाए। कांग्रेस ने कोंच में अपना कार्यालय बनाया था। इस हेतु उरई नगर में दो अखबार वितरक सूर्य प्रसाद दीक्षित तथा जगन्नाथ घोष (निवासी–चुर्खी, कालपी) आगे आए। ये दोनों क्रान्तिकारी विचारों के थे। इस अभियान में यह दोनों व्यक्ति प्राणपण से जुट गए। जगन्नाथ घोष युवकों को क्रान्तिकारियों की कहानियाँ सुनाते तथा उन्हें गरम दल की भावनाओं से जुड़ने को प्रेरित करते थे। सूर्य दीक्षित विद्रोही कवि थे। उन्होंने राष्ट्रीय विषयों पर प्रेरक कविताएँ लिखीं। मुंशी घनू सिंह (हरदोई गूजर) तथा पं. बेनीमाधव तिवारी ने किसानों की दुर्दशा पर काव्य लिखे। द्वारिका प्रसाद 'रसिकेन्द्र' (कालपी) ने भी ओजस्वी कविताएँ मंचों से पढ़कर जनजागरण किया।

1932 के इस आन्दोलन में (पं. चतुर्भुज शर्मा के अनुसार) कालपी के चंद्रभानु विद्यार्थी, मन्नीलाल अग्रवाल, बद्रीप्रसाद पुरवार को सजा मिली (किन्तु स्वतन्त्रता सेनानी समिति के मंत्री हृदयानन्द राय के अनुसार) नारायण स्वामी (कालपी, वंशगोपाल तिवारी (बम्बई), ओमकार नाथ द्विवेदी (माधौगढ़) उनके भाई मदन मोहन सिंह तथा उन्हें स्वयं सजा हुई। अन्तिम चार व्यक्ति जनपद के बाहर कानपुर, इलाहाबाद एवं बलिया में दण्डित किए गए। 1935 ई. में सरकार ने भारत में प्रशासनिक सुधारों के कानून द्वारा प्रांतों में स्वपोषी सरकार बनाना स्वीकार कर लिया। इसके लिए निर्वाचन जनता से होना था। कांग्रेस प्रत्याशी पं. मन्नीलाल पाण्डेय तथा चौ. लोटनराम विजयी हुए। पं. बेनीमाधव तिवारी एम.एल.सी. बनाए गए।

इस अवधि में दूसरी ओर जनपद में क्रान्तिकारी गतिविधियाँ भी जारी रहीं। 1938 के लगभग काले पानी की सजा काटकर लौटे क्रान्तिकारी बटुकेश्वर दत्त कालपी आए। जिले भर के सैकड़ों युवक गर्मजोशी से उनका स्वागत करने कालपी पहुँचे। स्टेशन से लेकर नगर के प्रमुख मार्गों तक उनकी शोभायात्रा निकाली गई। उसका नेतृत्व त्रिभुवन जी सिन्हा ने किया।

1915 से 1939 तक लगभग 25 वर्ष तक पाण्डेय तथा तिवारी जी के संयुक्त प्रयास से जनपद ही नहीं अपितु बुन्देलखण्ड में जनचेतना जागृत हुई। जिले की राजनीति में यह कालखण्ड 'पाण्डे–तिवारी युग' के नाम से जाना जाता है। कांग्रेस पार्टी तथा स्वराज आन्दोलन को उस समय करारा झटका लगा जब 21.12.1939 को पं. मन्नीलाल पाण्डेय का देहावसान हो गया। अब कांग्रेस का कार्य पं. बेनीमाधव तिवारी तथा पं. चतुर्भुज शर्मा (उरई) के कंधों पर आ गया था।

व्यक्तिगत सत्याग्रह 15.4.1940 से सम्पूर्ण देश में फैलने लगा था किन्तु इस जिले में वह जनवरी 41 से जुलाई 41 तक ही चला। इस सत्याग्रह के पूर्व कलेक्टर को नोटिस देना अनिवार्य था। सत्याग्रही नोटिस देकर भूमिगत हो जाते थे तथा नोटिस में अंकित तिथि एवं समय पर प्रकट होकर भीड़ के सामने गिरफ्तारी देते थे। 1940 में इस आन्दोलन में श्री जगन्नाथ घोष तथा चौ. लोटनराम को एक–एक वर्ष के सश्रम कारावास का दण्ड मिला। जनपद के स्वतंत्रता आन्दोलन में तीन सौ से अधिक सेनानियों ने भाग लिया तथा उन्हें दण्डित किया गया। इनमें लगभग पाँच दर्जन स्वतंत्रता सेनानी केवल कालपी क्षेत्र से थे। 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में भी कालपी की सक्रिय भागीदारी रही। अन्त में 15 अगस्त 1947 को लाल किले

पर यूनियन जैक का स्थान तिरंगे ने ले लिया। अंग्रेजों ने इस आजादी के साथ अखण्ड भारत को विखण्डित भी कर दिया किन्तु फिर भी देश को स्वाधीन होने का सुख अपेक्षाकृत अधिक अच्छा लगा। जिले में भी स्वतन्त्रता प्राप्ति का हर्ष मनाया गया।

स्वतंत्रता संघर्ष की यह गाथा ckouh jkT; d efä l?k"k की चर्चा किए बिना अधूरी रहेगी। देश की स्वाधीनता 15 अगस्त 1947 को मिल चुकी थी किन्तु इसके एक भाग, कदौरा बावनी में उस समय भी जनता पराधीन थी। नवाबी शासन का कहर जारी था। उसके विरुद्ध प्रबल जनसंघर्ष हुआ। तब कहीं जाकर वहाँ के नागरिकों ने आजादी की सांस ली। इस संघर्ष को समझने के लिए बावनी राज्य के इतिहास पर विहंगम दृष्टिपात करना है। बावनी राज्य के वैभव की चर्चा पूर्व में की जा चुकी है। इस वैभवपूर्ण साम्राज्य के अन्तिम शासक नवाब मुश्ताक उल हसन का विवाह राजस्थान के टौंक में नवाबी परिवार की एक युवती से हुआ था। प्रथम पत्नी की असामयिक मृत्यु के बाद उसी परिवार की एक अन्य युवती शौकतज़हाँ उनकी दूसरी बेगम बन गईं। वह संगीत प्रेमी थीं। टौंक के ही एक गायक बुन्दू कव्वाल को वे अपने साथ लाई थीं। वह नवाब साहब के महल 'शौकत मंजिल' में बेगम सहिबा का सबसे विश्वस्त व्यक्ति था। नवाब साहब खुदापरस्त संत व्यक्ति थे। बेगम शौकतज़हाँ ने धीरे– धीरे राज्य का संचालन सूत्र अपने हाथ में ले लिया। बड़ी बेरहमी से उसने जनता का शोषण प्रारम्भ कर दिया। उसकी आराम–तलबी तथा संगीतमय वातावरण में बाधा न पड़े इसलिए शंख, घंटा, घड़ियाल का बजाना अवैध तथा अपराध घोषित कर दिया। तिरंगा पैरों तले रौंदा जाने लगा। तिरंगा फहराने, भाषण देने, नारे लगाने तथा जुलूस निकालने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। बेगार प्रथा चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई। इसके विरोध हेतु बावनी प्रजामण्डल का गठन पं. विश्वनाथ व्यास के नेतृत्व में किया गया। गांधीवाद के वातावरण में बेगार से त्रस्त जनता की मुक्ति के लिए उन्नीस सौ छियालीस में जनजागरण प्रारम्भ हुआ। नवाबी हुकूमत के विरुद्ध आवाज उठाने के विरोध में दीवान ख्वाजा फिरोजुद्दीन की अनुशंसा पर नवाब साहब ने पाँच अगस्त उन्नीस सौ छियालीस को पं. विश्वनाथ व्यास, उनके पुत्र रमाशंकर व्यास तथा जगन्नाथ सिंह (कानाखेड़ा) को रियासत से निष्कासन आदेश दे दिया।

रियासत के अधिकारियों द्वारा दमनात्मक कार्यवाही का चरमोत्कर्ष पच्चीस सितम्बर उन्नीस सौ सैंतालीस को देखने को मिला। उस समय तक देश आजाद हो चुका था मगर बावनी राज्य की जनता नबाव की पराधीन

प्रजा थी। जनता ने ग्राम हरचन्दपुर में झण्डा फहराने का कार्यक्रम बनाया। बावनी राज्य प्रजामण्डल द्वारा आयोजित जुलूस में तिरंगे झण्डे तथा बैनर लिए राष्ट्रगान गाते जा रहे देशभक्तों को गाँव के एक चौखटे में पुलिस ने रोक लिया। वह मैदान चारों ओर मकानों से घिरा था। वहाँ भागने की गुंजाइश नहीं थी। कोतवाल ने हुक्म पढ़कर सुनाया कि जुलूस वापिस लौट जाए। कोतवाल अहमद हुसैन ने अपने 24 सिपाहियों के साथ आन्दोलनकारियों को भाग जाने को कहा किन्तु कोई टस से मस नहीं हुआ। इसी बीच बाबू सिंह ने दरोगा को पटककर उसकी सर्विस रिवाल्वर छीनने की असफल कोशिश की। इस पर पुलिस और अधिक आक्रामक हो गई। इक्के–दुक्के सिपाहियों को छोड़कर शेष सब मुसलमान थे। पुलिस ने अंधाधुंध फायरिंग प्रारम्भ कर दी। घटना स्थल पर ग्यारह व्यक्ति शहीद हो गए तथा छब्बीस व्यक्ति घायल हुए। इसमें हरचन्दपुर के ठकुरी सिंह को छोड़कर शेष नौजवान थे। उनके नाम हैं – लल्लू सिंह (ग्राम बागी), कलिया पाल (ग्राम सिजरहा), जगन्नाथ यादव (उदनपुर), बिन्दा (जलेखा), दीनदयाल पाल (सिजहरा), बलवान सिंह (हरचन्दपुर), बाबूराम शिवहरे (हरचन्दपुर) तथा श्रीराम यादव (बड़ागाँव)।

साप्ताहिक
वीरेन्द्र
THE VIRENDRA WEEKLY, KUNCH U.P.

हरचन्दपुर बावनी में गोलीकाण्ड

१२ कांग्रेस वर्कर शहीद और ५० घायल हुये

निहत्थे जलूस को घेरकर पंजाबी मुस्लिम अधिकारियों ने गोलियों से भून डाला

अग्रवाल स्टोर्स में नया आयोजन

अगले ही दिन छब्बीस सितम्बर उन्नीस सौ सैंतालीस को जिले के प्रमुख कांग्रेसी नेता पं. चतुर्भुज शर्मा, पं. बालमुकुन्द शास्त्री, रामदयाल पांचाल, राधारमन, गयाप्रसाद गुप्त 'रसाल' आदि ने मौके पर जाकर जाँच की। घटना स्थल सुनसान था। 20–25 स्थानों पर खून पड़ा था। दीवालों तथा खिड़कियों पर गोलियों के छर्रे के निशान स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। लोगों ने खाना–पीना छोड़ दिया था। चूल्हे नहीं जले थे। चक्कियाँ नहीं चली थीं। इन नेताओं के समझाने पर गाँव वालों ने भोजन ग्रहण किया। अनेक लोग गाँव से पलायन कर गए। बेगार प्रथा तथा शहीद काण्ड की विस्तृत रिपोर्ट कोंच से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक *वीरेन्द्र* (सम्पादक–श्री गयाप्रसाद गुप्त 'रसाल') ने निर्भीकता से प्रकाशित की। (साप्ताहिक *वीरेन्द्र* का उक्त अंक, दिनांक–1 अक्तूबर, 1947–देखें इस आलेख के अंत में) उल्लेखनीय है कि उक्त जाँच दल को तेरह व्यक्तियों को मारे जाने तथा 50 के घायल होने की सूचना मिली थी, वही उल्लेख साप्ताहिक *वीरेन्द्र* ने किया। बाद में पुष्टि ग्यारह व्यक्तियों के मारे जाने तथा छब्बीस घायलों की हुई। दंगों के समाचार में ऐसी त्रुटि प्रायः हो जाती है। उक्त काण्ड की निष्पक्ष जाँच के लिए एक शिष्ट मण्डल पं. परमानन्द के नेतृत्व में केन्द्रीय गृहमंत्री सरदार बल्लभ भाई पटेल से मिला। हमीरपुर के कलेक्टर उमराव सिंह को पटेल साहब ने जाँच अधिकारी नियुक्त करके जाँच प्रारम्भ कर दी। दोनों ओर से खींचातानी पूर्ण आदेश तथा एक दूसरे के विरोधियों की गिरफ्तारियों का सिलसिला चलता रहा। अन्ततोगत्वा केन्द्र सरकार ने बावनी राज्य को विन्ध्य प्रदेश में सम्मिलित करने तथा प्रशासक नियुक्ति करने का आदेश दिया।

चौबीस अप्रैल उन्नीस सौ अड़तालीस को प्रातः 10 बजे विन्ध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री लालाराम बाजपेयी स्टाफ सहित कदौरा आए। नवाब साहब का चार्ज उनसे लेकर स्टेट का कार्यवाहक प्रशासक पं. विश्वनाथ व्यास को तथा उप–प्रशासक मुनअउरद्दीन को बनाया गया। नवाब साहब का प्रिवीवर्स 46,850/– देना तय हुआ। इसके पश्चात् तेरह जून उन्नीस सौ अड़तालीस को इंशाउलहक को बावनी स्टेट का प्रभारी नियुक्त किया गया। अन्त में छब्बीस जनवरी उन्नीस सौ पचास को इसे उत्तर प्रदेश में मिला दिया गया। इस प्रकार यह संघर्ष अपने आप में एक इतिहास बन गया। इस घटना क्रम पर डॉ. कर्ण सिंह 'कुमार' ने एक लघु–प्रबन्ध काव्य लिखा – *बावनी बलिदान* (सम्पादक – अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद')। अब इस रियासत के गाँव कालपी तहसील (जिला–जालौन) का हिस्सा है।

⌘

सांस्कृतिक कालपी

कालपी क्षेत्र का सांस्कृतिक परिदृश्य विविध–आयामी तथा आकर्षक है। इसमें बुन्देलखण्ड की पारम्परिक लोक संस्कृति से लेकर, लोक में व्याप्त लोकविधाओं (फाग साहित्य, लावनी साहित्य आदि) का सृजन तथा पोषण नामचीन साहित्यकारों ने इस रूप में किया कि वह लोकव्याप्ति के कारण 'लोक साहित्य' का अंग बन गया है। नाट्य–परम्परा, चित्रकला तथा शिल्प के क्षेत्र में भी कालपी का उल्लेखनीय योगदान है।

होली पर्व के बारे में जनश्रुति है कि यहीं यमुना की ऊँची कगार के एक टीले पर हिरण्यकशिपु ने अपनी बहन होलिका की गोद में प्रह्लाद को बिठाकर, मारने का प्रयास किया था, किन्तु होलिका जल गई तथा देवभक्त 'प्रह्लाद' जीवित बच निकला। तब से 'होलिका दहन' 'बुराइयों का नाश' होने का पर्व बन गया तथा सभी वर्गों में समरसता, प्रेम से रहने का संदेशवाहक भी। बाद में हिरण्यकशिपु ने उसे एक लौहखम्भ में बाँधकर मारने का प्रयास किया, किन्तु भगवान विष्णु ने नृसिंह रूप में प्रकट होकर, हिरण्यकशिपु का वध किया तथा प्रह्लाद की रक्षा की। उक्त 'नृसिंह टीला' आज भी कालपी में लोकश्रुतियों का आख्यान–स्थल बन गया है। होली खेलने के अनेक स्वरूपों में, ब्रज में 'लट्ठमार होली' की तर्ज पर, कालपी क्षेत्र के कुछ ग्रामों (यथा–कहटा, परासन) में 'डण्डामार होली (गुझिया की फाग)' खेली जाती है।

नाट्य परम्परा का कालपी से ऐतिहासिक सम्बन्ध है। इसकी चर्चा पूर्व में की जा चुकी है। *भवभूति* के संस्कृत नाटकों के मंचन *मेला* में होने से यह निष्कर्ष आसानी से निकाला जा सकता है कि आम जनता भी प्रबुद्ध थी। मुगलकाल में भी नाटक–परम्परा के संकेत कालपी में 'बीरबल का रंगमहल' में मिलते हैं। उनका स्थायी आवास फतेहपुर सीकरी में बन गया था किन्तु शिविर आवास कालपी में 'रंगमहल' था। इसके नाम से रंगकर्म का केन्द्र होने का आभास मिलता है। बुजुर्ग लोग बताते हैं कि उन दिनों यहाँ रामलीला तथा रासलीला के आयोजन भगवान के स्वरूपों की झाँकी की शैली में होते थे। बाबू मोतीचन्द्र वर्मा तथा चन्द्रभानु विद्यार्थी बताते थे कि रंगमहल का मुख्य द्वार हाथी दरवाजा कहलाता था। कभी लीलाओं के क्रम में हाथी पर सवार या रथ पर सवार पात्र वैसे ही स्थिति में प्रवेश करते थे। अंदर की

हवेली तथा बगीचों के जीवन्त दृश्य दिखाने की व्यवस्था थी। मंच खुले आँगन में विशाल चबूतरे पर बनता था। बाद में ये आयोजन बंद हो गए। इनका पुनरुज्जीवन लंका–मीनार के निर्माता लंकेश जी ने उसी परिसर में मुक्ताकाशी मंच पर रामलीला, कंस लीला तथा कृष्ण लीला का मंचन 'नाग पंचमी' अथवा अन्य पर्वों पर कराकर किया था। कालपी वर्तमान काल में आधुनिक नाट्य–शैली का भी केन्द्र है। इस परम्परा में चंद्र कुमार शुक्ल, रामबाबू शुक्ल, कृष्ण कुमार शुक्ल, मन्नीलाल बाजपेयी, रामशिरोमणि मैहर तथा राजेन्द्र पुरवार विशेष चर्चित रहे हैं। यहाँ नाट्य–मंचन के लिए आवश्यक सामग्री भी उपलब्ध हो जाती थी। डॉ. जयश्री पुरवार के अनुसार – "मंचीय साज–सज्जा की स्वस्थ परम्परा को अपने अन्तर में सँजोये इस नगर में लगभग 100 वर्ष पूर्व श्री मदार बख्श ने नाटकों के मंचन में जरूरत की सभी सामग्री को एक जगह उपलब्ध कराने की अभूतपूर्व व्यवस्था की थी। नाट्य सामग्री, पर्दे व दृश्यबन्धों को त्वरित उपलब्ध कराने वाले गंगा–जमुनी संस्कृति के प्रतीक मदार बख्श व धोखा पेंटर का मंचीय योगदान अप्रतिम था।'' नगरवासियों ने भी नाट्य परम्परा को बहुत जीवन्तता के साथ जिया था। चतुर राजनेता छिद्दी लाल वाजपेयी व विश्वनाथ बाथम द्वारा अभिनीत *शिवाजी नाटक* की यादें अभी भी शेष हैं। इस नाटक की रिहर्सल यमुना नदी में बड़े बजरे के ऊपर गैस लालटेन की रोशनी में की जाती थी। मोती चन्द्र वर्मा के निर्देशन में 'हिन्दी भवन' की लोकप्रिय प्रस्तुति *हमारा गाँव* ने 50 प्रस्तुतियाँ कर मंचीय इतिहास रचा था। अभिनय सम्राट मदन गोपाल तिवारी के निर्देशन में मंचित नाटक *नव प्रभात, आहुति, कोणार्क* ने प्रगतिशील चेतना की अलख जगा युवाओं में सोद्देश्य व सामूहिक जीवन जीने की ललक जगाई थी। रामप्रकाश त्रिपाठी द्वारा निर्देशित व कृष्ण कुमार द्विवेदी द्वारा अभिनीत *चन्द्रशेखर आजाद* ने शहीदों को अपनी तरह श्रद्धांजलि अर्पित की थी। रावगंज व बड़े बाजार की रामलीला ने जहाँ प्रतिवर्ष रामकथा की धारावाहिकता व सामाजिक प्रासंगिकता को अभिवृद्ध किया, वहीं रामजानकी मन्दिर के सामने होने वाली कंस लीला में और आधी रात के बाद होने वाली नगाड़ों और बाजों के साथ होने वाली नौटकी ने साहित्य, संगीत, नाट्य प्रेमियों और रसिक जनों को बहुत लुभाया था तथा नगर में नवरसों का परिपाक किया था। अब तो सुधी जनों के पास नाट्य परम्परा की रसगन्ध ही बाकी है।"

यहाँ लोकांचलों में जो लोकनाट्य पसंद किए जाते हैं उसमें नौटंकी, स्वांग, बाबा (जुगिया) तथा रावला विशेष उल्लेखनीय हैं। पड़ोसी नगर कानपुर की कई नौटंकी पार्टियाँ, विगत शताब्दी में प्रायः शादी–विवाहों में

बुलाई जाती थीं। लोग कहते थे – 'विवाह या बारात में जाने का मजा ही क्या, अगर 'किशना' या 'गुलाब–बाई' की नौटंकी न हो अथवा मम्मू खाँ मास्टर जैसे महिला पात्र की अदाएँ देखने को न मिलें। उनकी गाने की आवाज़ अभी तक लोगों के दिलो–दिमाग पर छायी है। बबीना, ऐर, गुढ़ा आदि ग्रामों की क्षेत्रीय नौटंकी पार्टियाँ भी प्रसिद्ध रही हैं जो स्थानीय शैली की बानगी थीं।

चित्रकला के क्षेत्र में बजरंग बिश्नोई का अच्छा योगदान है। उनकी एक पेंटिंग 'सृष्टि' नेशनल मॉडर्न आर्ट गैलरी (दिल्ली) में संरक्षित है। पिकासो जैसे विश्वविख्यात चित्रकारों की कला–शैलियों तथा रंग सृजन को उन्होंने कालपी में हाथ से बने कागज पर बनाकर अनेक आविष्कारक प्रयोग किए थे। इससे कलात्मक हस्तनिर्मित स्थानीय कागज देश–विदेश में लोकप्रिय हुआ। श्री बिश्नोई ने लगभग 3–4 दशक पूर्व मधुमक्खी के छत्ते (मधु निकालने के बाद) एकत्रित करके यू.पी. खादी बोर्ड लखनऊ के प्रबन्ध निदेशक के कक्ष की सीलिंग में सजाया था तथा हस्तनिर्मित कागज वाल–पेपर के रूप में दीवालों पर चिपकाया था। उन्हीं दिनों उन्होंने विभिन्न मनःस्थितियों के अनुरूप पत्र लिखने के लिए वैसे ही कागज (पतले बॉण्ड पेपर) मय लिफाफे का सैट 'स्पैक्ट्रम' नाम से, सात रंगों में बनाया। उसको विदेशों में काफी पसंद किया गया तथा लाखों रुपये के निर्यात आदेश मिले थे। इससे कालपी के हस्तनिर्मित कागज की साख बढ़ी थी।

कालपी की ही श्रीमती रीना अग्रवाल ने चित्रकला तथा शिल्प के क्षेत्र में कुछ नवीन प्रयोग किए हैं। वह हस्तनिर्मित कागज के अतिरिक्त भोजपत्र, स्वर्ण–पत्र तथा रजत–पत्र का उपयोग करके पेंटिंग तैयार करती हैं। साथ ही उन्हें मनकों अथवा कृत्रिम रत्नों से अलंकृत करके मूल्यवान पेंटिंग बनाती हैं। उनकी प्रसिद्धि के कारण उनकी पेंटिंग की प्रदर्शनियाँ जहाँगीर आर्ट गैलरी, वर्ल्ड ट्रेड सेंटर बम्बई, लक्ष्मी देवी ललित कला अकादमी कानपुर, पूना, कोलकाता, दिल्ली, बरेली आदि में भी लग चुकी हैं तथा अमरीका, जर्मनी आदि देशों से आर्डर प्राप्त होते रहते हैं। मौन–साधिका रीना जी प्रचार से दूर एकान्त कला–साधना में विश्वास करती हैं। चारकोल से हस्तनिर्मित कागज पर पेंटिंग बनाने में श्रीमती सुमन मैहर को सम्मानजनक स्थान प्राप्त है।

कभी कालपी में मल्लयुद्ध के डेढ़ दर्जन से अधिक अखाड़े एवं पहलवान प्रसिद्ध थे। वह देह–धर्म के पोषक तो थे ही, मार्शल आर्ट की भी

रचना–भूमि थे। अखाड़ों की परम्परा अब समाप्तप्राय है। न अखाड़े बचे हैं, न पहलवान बनाने वाले उस्ताद खलीफा। पहले अखाड़ों के संरक्षण में लल्लू लाल शुक्ला तथा शीतलाचरण शुक्ला जैसों की सरपरस्ती थी। महँगाई भी बाधक है कि पहलवान को जो खुराक चाहिए वह महँगी पड़ती है। अब सहिष्णुता की कमी भी होती जा रही है। कोई अपने से अधिक उठता या बढ़ता हुआ किसी को नहीं देखना चाहता है। फिर भी अखाड़े तो हैं ही, भले ही उपेक्षित हों। संदर्भ के लिए यह उल्लेख करना जरूरी है कि लगभग 5–6 दशक पहले तक नगर में निम्नांकित 15 अखाड़ों का बड़ा नाम था –

(1) बटाऊ लाल का अखाड़ा (2) गुम्बद का अखाड़ा (3) कालिया स्थान का अखाड़ा (4) तरे बगिया (बिहारी जी मन्दिर) का अखाड़ा (5) गूदड़ बरुआ का अखाड़ा (6) ढोंड़ेश्वर का अखाड़ा (7) करहियों का अखाड़ा (8) लाल मस्जिद (मुछा मुकेरी) का अखाड़ा (9) पचपिण्डा देवी का अखाड़ा (10) बड़ा अखाड़ा (11) आनन्दी माता का अखाड़ा (12) करबला का अखाड़ा (13) मारवाड़ी का अखाड़ा (14) मदरसा का अखाड़ा, और (15) दलालों (भूरी मस्जिद) का अखाड़ा।

इन अखाड़ों के दर्जनों पहलवान प्रान्त भर में तथा आसपास के प्रान्तों में प्रसिद्ध रहे हैं। कालपी के 'औघड़ पहलवान' इस बात के लिए आज भी याद किए जाते हैं कि एक पंजाबी पहलवान को उन्होंने हाथ मिलाते ही चित्त कर दिया था। नागपंचमी का दंगल इसका साक्षी रहा है। इन अखाड़ों में पटा–बनैती, चकरी, दीवारी, लेजम, दण्ड विद्या आदि–आदि अनेक लोककला विधाएं जीवन्त थीं। अब यह विधाएँ विलुप्ति की ओर हैं। इसमें केवल दीवारी (पाई–डण्डा) के कुछ कलाकार बचे हैं जो दीवारी के बाद ग्यारह दिन तक गोचारण नृत्य–मोनिया–चांचर आदि नामों से जीवित रखे हैं।

यह क्षेत्र बुन्देलखण्ड का प्रवेशद्वार है तथा कृषि–प्रधान क्षेत्र है। कृषि बीजों के परीक्षण की देशी तकनीक है, जो कजली (भुँजरिया) के नाम से जानी जाती है। इस अँचल में हर स्थान पर भुँजरियों के मेले भरते हैं। इस संदर्भ में यह चर्चा विशेष प्रासंगिक है कि 'चैत के महीने में रखा गया बीज आगामी क्वांर के महीने में बोया जाता था। गेहूँ, जौ, राई प्रमुख फसलें थीं। बीज संरक्षित करने की कोई रासायनिक प्रक्रिया नहीं थी। ऐसे में बीज खराब है या ठीक, यह कजली बो कर जाँचा जाता था। जौ, गेहूँ, राई, सरसों की कजली जितनी बढ़िया हरियाती थीं, बीज उतना ही उपयोगी होता था। बारिश में खेतों की ऊपरी उर्वरा मिट्टी बह जाती थी। कभी बालू–रेहू जैसी अनुर्वरा मिट्टी आ जाती

थी। ऐसे में बुन्देलों ने शोध करके यह निष्कर्ष निकाला कि मृदा परीक्षण किया जाए। इसके लिए हुआ यह कि खेतों से मिट्टी घरों में लाकर उसमें अन्न बोया जाने लगा। अगर अन्न व मिट्टी दोनों सही हैं तो वह उगकर लहलहाने लगती थी, जिन्हें कजली अथवा भुँजरिया कहते हैं।'

लोकगीत तथा उनके वर्गीकरण :

घर–घर में मांगलिक समारोह, पूजन विधान तथा संस्कार लोकगीतों के गायन के साथ सम्पन्न होते हैं। इनके प्रमुख वर्गीकरण निम्न प्रकार हैं – 1. संस्कार गीत, 2. बालक बालिकाओं के क्रीड़ात्मक उपासना गीत, अनुष्ठानिक पूजा गीत, 4. श्रृंगार गीत, 5. ऋतु गीत, 6. श्रम गीत, 7. जातीय गीत, 8. शौर्य/प्रशस्ति गीत (लोकगाथाएँ) तथा 9. स्फुट गीत। संस्कार गीतों में शिशु जन्म तथा विवाह गीतों की बहुलता है। संस्कार–गीतों के साथ संस्कारों के आचार–विधान भी उल्लेखनीय हैं।

संस्कार गीत :

यहाँ का लोकजीवन संस्कारित है। बुन्देलखण्ड का लोकांचल होने से वहीं की लोकसंस्कृति व्याप्त है। यहाँ वेदोक्त सोलह संस्कार होते हैं – (1) गर्भाधान संस्कार (2) पुंसवन संस्कार (3) सीमन्तोन्नयन (सीमन्त संस्कार) लोक शब्दावली में 'सादें' (4) जातकर्म संस्कार (शिशु जन्म) (5) नामकरण संस्कार (6) निष्क्रमण संस्कार (7) अन्नप्राशन संस्कार (8) चूड़ाकर्म संस्कार (मुण्डन) (9) वेदारंभ संस्कार (10) उपनयन संस्कार (11) कर्णवेधन संस्कार (12) समावर्तन संस्कार (13) विवाह संस्कार (14) वानप्रस्थ संस्कार (15) संन्यास संस्कार (16) अंत्येष्टि संस्कार। उक्त संस्कारों में प्रथम तीन जन्म–पूर्व के हैं। अतः इनके अन्तर्गत माता का संस्कार किया जाता है। शेष का जातक के जन्मोपरान्त, किया जाता है। किसी माता की कितनी भी संतानें हों, उसका संस्कार प्रथम संतान होने के पूर्व होता है। परवर्ती संतानों के होने पर माता के यह संस्कार नहीं कराए जाते हैं। इन सभी संस्कारों के अवसर पर अनेक प्रकार के लोकगीत गाए जाते हैं। यह गीत प्रायः महिलाएँ गाती हैं। अन्य लोकवाद्यों के साथ ढोलक का प्रयोग प्रचुरता के साथ होता है। विवाह के लोकगीत सज–धज करके गाती हैं। 'ढोलक' प्रायः हर घर में अथवा पड़ोस में पाई जाती है। प्रत्येक संस्कार का लोक में अपना आचार विधान तथा गीत हैं। कुछ संस्कार सभी वर्गों में होते हैं किन्तु अधिकांश वर्गों में जन्म–संस्कार तथा विवाह संस्कार ही प्रमुख हैं। कुछ संस्कार गीत अत्यंत भावपूर्ण, ज्ञानवर्द्धक तथा रोचक हैं।

गर्भाधान संस्कार (फूल चौक)

फूल चौक के अवसर पर "फूल चौक" गीत तथा सुहागरात में "सोनारा" गीत गाए जाते हैं। "फूल चौक" गीत इस प्रकार है –

दुलैया चौके आई
सोंने के दिया जगाऔ, दुलैया चौकें आई।
चंदन चौक पुराऔ, दुलैया चौकें आई।
बम्मन बुलाऔ पत्रा दिखाओ, गुन के गनित लगाऔ। दुलैया ....
सहदेई लखना लुखरिया ल्याऔ, देउरा गिन दिन वार बताऔ।
दुलैया ...
चंदा छोरौ सूरज छोरौ, शुक्कुरवार बचाऔ। दुलैया ....

जातकर्म (जन्म) संस्कार

नरा छीनने का गीत

कैसी मचल रई दाई, अवध में कैसी मचल रई दाई,
सुरंग चूनरी कौसिल्या लायें ठाड़ी, बई न लेबै दाई,
सोने को हार कैकई लायें ठाड़ी, कूलौ मरोर गई दाई,
सोनें की तिलरी सुमित्रा लायें दाड़ी,
मुखई न बौलै दाई,
मुतियन हार राजा लायें ठाड़े, नजर न फेरे दाई,
नरा तुमाऔ जबई हम छीनें, दरसन दें रघुराई

लड्डू का गीत

मेरी अम्मा ने पहुँचाये, मेरे मायके से आये
हो जू सोंठ गरी के लड्डुआ... हो जू....।

बधावे का गीत

भैया तो मुहरइया उतार, लैले चंगिलिया दुआरे में
खड़े मोरी पैया पिरानी, भैया हो मुहरइया उतार
गाँव फिरत मोरी पैयाँ पिरानी, भैया हो मुहरइया उतार

पालना गीत

लाल ललुआ पाजनें, मोरौ झम झम झूलैं,
झुलावै ललना की मइया, उनके सोने के गजरा हाथ। लाल..

झुलावै ललना की चाची, उनके सोने के ककना हाथ। लाल...
झुलावै ललना की बुआ उनके सोने की गुँजै हाथ। लाल..

निष्क्रमण संस्कार (सोर उठना/सूरज देखना)

कुआँपूजन गीत (जाते समय का गीत)

ऊपर बदर घहराये हो, नैंचे ग़ोरी पानी खों निकरी।
जाय जो कइयो उन राजा ससुर सों, अंगना में कुइया खुदाय।
बहू तुमाई पानी खों निकरी।

वेदारंभ संस्कार

कौशिल्या जू माई, कैकई जू माई,
पंडित जू नेग मांगे, वेद की पढ़ाई
राजा जू को घोड़ा मांगे, वेद की पढ़ाई।

उपनयन संस्कार (जनेऊ/बरूआ)

तीन तगा कौ डोरा री, दमरी कौ सूत ए भैया,
तीन तगा को जनवा री, कैसो मजबूत ए भैया,
पैले में विश्नू, दूजे में बिरमा, तीजे में शंकर अवदूत ए भैया,

कर्ण वेधन संस्कार (कंछेदना)

सौने के सिंहासन बैठे राजा आजुल नाती ने रार मचाई रे....
कै तौ आजुल मोरे कान छिदाऔ कै तो पढाऔ चटसार रे....
अपने नाती के कान छिदाहैं और पढाहैं चटसार रे

विवाह संस्कार

हिन्दुओं के सभी संस्कारों में यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथा सभी जातियों/धर्मो में उल्लासपूर्वक मनाया जाने वाला संस्कार है। विवाह से ही पति–पत्नी पवित्र बंधन में बँध कर सृष्टि का आधार बनते हैं, इसलिए इसे सबसे अधिक महत्त्व देते हैं। यह उल्लासमय पर्व कई चरणों में एक लम्बी अवधि में पूरा होता है। सगाई (फलदान) से लेकर लगुन, मटयानौ, बाबू मूँदवौ, हरदी, तेल चढ़ावौ, अरगौ मड़वा, चीकट, साजन, बन्ना गायन, चढ़ाव, भाँवर, कन्यादान, पाँव पखराई, धान बुआई, ज्योनार, कुँवर कलेवा, कंगन छोरवौ, गूँज छोरवौ, डलिया सजावौ, विदा, सगुन चिरैया आदि क्रमिक चरणों में पूरा होता है। चौरासी के ठाकुरों में 'थरा' की परम्परा विशेष महत्त्व रखती

है। इन सभी अवसरों के गीतों के कुछ अंश प्रस्तुत हैं –

लगुन का गीत

आज मोरे रामजू की लगुन चढ़त है
लगुन चढ़त है, रस बरसत है।
कानन में कुण्डल राम जू कौ सौहें
मुतियन माल गरे बिलसत है। आज मोरे...
केसर खौर राम जू कौ सोहै,
छब लखवे जनी मांस तरसत हैं
रामजू के दरस कौ जी ललचत है
आज मोरे राम जू की लगुन चढ़त है।

मटियानो/मायनों/देवतन कौं नौतें

सरग नसैनी पाट की, जा पै चढ़–न्यौते देंय
तुम मोरे नेवते गनेश जू तुम मोरे आइयो
तुम मोरे नेवते लाला हरदौल तुम मोरे आइयो,
तुम मोरे नेवते पवन सुत, तुम मोरे आइयो।

हरदी/तेल चढ़ाने का गीत

चढ़गऔ तेल फुलेल छुटक रई पांखुरिया,
कौना ने तेल चढ़ाव कौनी राये बाहुलियां,
ऐसी भाभी ने तेल चढ़ाऔ,
भैया जू की बाहुलिया। चढ़गऔ....
को ल्याऔ तेल फुलेल, को ल्याव पांखुरियाँ
तेलिन ल्याई तेल फुलेल, मलिनियां पांखुरियाँ

मड़वा

सुगर बड़ैया राजा बड़ैया राजा बुलवाऔ रे,
चारऊं कोनिन चार खंभ लगवाऔ रे
बीच में मड़वा गड़वाऔ रे
गैया कौ गोबर मंगाऔ, ढिंग दै आँगन लिपाऔ रे
मुँतियन चौक न पूजें मोरे बाबुल, चून कौ चौक पुराऔ रे,
चंदन पटली न पूजें मोरे बाबुल, छेउले की पटली मँगाऔ रे
कंचन कलश न पूजें मोरे बाबुल, माटी के कलस धराऔ रे

सोने के गनेश न पूजे मोरे बाबुल, गोबर गनेश धराऔ रे,
इमरत अरघ न पूजें मोरे बाबुल, जल कौ अरघ दिबाऔ रे।

चीकट

हरदौल चीकट लैकें आये कुंजावत के द्वारें
गाड़िन में भरकें सामान सौनों, चांदी कपड़ा दान
पौंचे दतिया के दरम्यान नगर भरे में हलचल मच गई,
ऐसे दतियावारे। हरदौल....

साजन (द्वारचार)

कोट नवै, परबत नवै, सिर नवये न आये
माथों आजुल जू को तब नवै, जब साजन घर आये

बन्नी

रूनक झुनक बेटी मंडल डोलें आजुल लये हैं उठाय,
कै मोरी बेटी तुम सांचे की ढारीं, कै गढे हैं चतुर सुनार
न आजुल मैं सांचे की ढारी, ना गढ़ी चतुर सुनार
माता की कुखियां जनम लये है, रूप दये करतार।

बन्ना–बन्नी

दूला छवि देखौ भगवान की, दुलहन बनी सिया जानकी।
जैसे दूला अवध बिहारी, वैसी दुलहिन जनक दुलारी,
हो रई तन मन सें बलिहारी, मनसा पूरन भई सबके अरमान की।
दुलहन बनी.....
राजा ठाड़े जनक के द्वार, संग में चारऊ राजकुमार।
दरसन कर रये सब नर–नार, माया लुट रई हीरन के खान की।
दुलहन बनी.....

चढ़ाव

सिया जू को चढ़त चढ़ाव, जनक दशरथ मोह रये
कानन के तरका, पेटी अजब बनी, बिंदिया रतन जड़ाव। सिया जू...
हाथन कौ कगना अजब बनौ, झुमका है रतन जड़ाव। सिया जू...
कम्मर की करधनी अजब बनी, गुलूबंद है रतन जड़ाव। सिया जू...
छाँगल बहुतइ अजब बनो, पौंची हैं रतन जड़ाव। सिया जू...

भाँवर

पैली भांवर के परतई भौजी मन मुसकाई
दूजी भांवर के परतई, माई मन सकुचाई
तीजी भांवर के परतई बिरन की आँखे भर आईं
चौथी भांवर के परतई, सखियन खुशी मनाई
छठई भांवर के परतई, मैना मन बिलखाई
सातई भांवर जब परी, बेटी भई पराई।

कन्यादान/पाँव पखराई

बिच गंगा बिच जमुना तीरथ बड़े हैं पिराग,
जहाँ बिच बैठे बाबुल मोरे, देत कुँआरन दान
कायकौं बाबुल गंगा कों जैहों कायकौं तीरथ पिराग
मड़वा नैचे बाबुल गंगा बहत है, उतई है तीरथ पिराग।

ज्योनारी गारी

गुडुर गुडुर साजन हुक्का पियें, रसवारी के भौंरा रे, रसवारी के....
हुक्का के ऊर चिलम धरें, चिलम के भीतर ककरा धरें, रसवारी के....
ककरा ऊपर धरी तमाखू, बाके ऊपर आगी धरें, रसवारी के....
बैठे फरस पै हुक्का पियें, सटर पटर बड़ी–बड़ी बाते करें, रसवारी के....
सजना ने लंबौ सरूंटा लौ, तिलगा उचट के ओली गिरौ, रसवारी के....
एक मुहर के उन्ना बरे, फरस पै उचकत साजन फिरे, रसवारी के....

कुँवर कलेवा

लाला करो कलेवा जल्दी, होरइ तुमें अबेर.....
तुमें जो कछू दै नई पाये, दैहें अगरी बेर....

कंगन

लाला हँसी खेल नईयां, कंकन को छोरबौ,
जो है नइयाँ धनुष कौ टोरबो, हँसी खेल नइयाँ...
कंकन की गाँठ लागी लाला मजबूत
तुम हौं दसरथ के सपूत, तुमरी देखें करतूत,
हंसी खेल नइयाँ....
जै है नइयाँ मारीच कौ मारबौ, हँसी खेल नइयाँ...

डलिया

सिया जू की डलिया, खूब सजाई
काहे की डलिया काहे की डलिया, कौंना ने मँगाई
हरे बांस की डलिया, मोरे बाबुल ने मँगाई। सिया जू...

विदा

जाऔ लली तुम फलियो फूलियो, सदा सुहागिन रइयो मोरी लाल,
एक बात हम तुमसे कहत हैं, चित दै सुनियो मोरी लाल,
सास ससुर की सेवा करियो, पति की पूजा करियो मोरी लाल
देवरानी जिठानी से हिलमिल रइयो, ननदी के ऐंगर रइयों मोरी लाल
पैदा करके वे जित्तौं लियावैं, उत्तेई में गुजर चलइयों मोरी लाल।

सगुन चिरैया
(बहू बेटा लेत के गीत)

बहू लिवाय घर आये
वे हैं भले जिनने कई राजा दसरथ, बहू लिवाय घर आये
कैसी भली जौ सगुन चिरैया
जे भले सगुन मनाये। बहू लिवाय घर आये
आगे हैं पिटारे, पाछें साजन जू की सवारी
पलकियाँ मचकत आये, कहरवा कूदत आये ...

सुहागरात के गीत (दादरे)

आया छैल छबिलिया, बची रइयों धनियाँ
जब जौ छैला घूँघट पट खोलें
तिरछी नजरिया करैं रइयो धनियाँ। आया छैल...

वानप्रस्थ संस्कार

राम राम खौं भज लै प्यारे, क्यों करते सैना कानी,
हम जानी कैं तुम जानी
बालापन हंस खेल गमाये, दूध पिये मुस्का जानी। हम जानी....
रामा आई जवानी लाल भई अँखियाँ,
अलियाँ, गलिन इठला जानी। हम जानी...
आये बुढ़ापे थकित भई देहिया,
लै लठिया पसता जानी। हम जानी....

संन्यास संस्कार

मन लागौ है राम फकीरी में
जो सुख है मोय राम भजन में, सो सुख नैंया अमीरी में
हाथ में सौंटा बगल में तूमा, चारउ धाम जँजीरी में, मन लागौ है....
लागी भली सबकौ सुन लीजे, चलिये चाल गरीबी में, मन लागौ है....

अंत्येष्टि संस्कार (टिप्पे)

चलन चलन सब कोऊ कहै, चलबौ हँसी न खेल
चलबौ सांचे, ओई कौ, जी कौं भैरों बुलावे टेर। चलन चलन ....

अन्य अवसरों के प्रमुख लोकगीत

बालक–बालिकाओं के क्रीड़ात्मक–उपासना गीत

बालक–बालिकाओं में प्रारम्भिक अवस्था में ही जीवन–यात्रा की दीर्घकालिक तैयारी, कला और संगीत के प्रति अभिरुचि सौन्दर्य बोध का विकास, संघर्ष के साथ भी मृदुल समरसता एवं समृद्धि का समन्वय तथा जीवन के अनेक भावी कार्यों को क्रीड़ात्मक ढंग से प्रशिक्षण की भावना से कुछ खेल बुन्देली लोक जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग बन गए हैं। इनमें अक्ती तथा सुआटा विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

अक्ती

अक्ती लड़कियों का विवाह सम्बन्धी प्रशिक्षण गीत है। इसके दो गीत बहुत प्रसिद्ध हैं।

अक्ती खेलने कैसे जाऊँरी वर तेरें मेले लिवउआ
मेले लिवउआ, मोरे मेले चलउआ
पैले लिबौआ मोरे नाऊ कक्का आये, नाऊ के संग नई जाऊँगी। वर तेरे...
दूजे लिबौआ मोरे ससुरा जू आये, ससुरा के संग नई जाऊँगी। वर तेरें..
तीजे लिबौआ मोरे जेठा जी आये, जेठा के संग नई जाऊँगी। वर तेरे..
चौथे लिबौआ मोरे देउरा जू आये, देउरा के संग नई जाऊँगी। वर तेरे..
पाँचये लिबौआ मोरे राजा जू आये, राजा संग डोली में जाऊँगी। वर तेरे.

सुआटा

सुआटा एक दीर्घकालिक क्रीड़ात्मक उपासना विधान है। यह भाद्रपद पूर्णिमा से आश्विन पूर्णिमा तक चलता है। मामुलिया, नौरता सुआटा, टेसू तथा झिंझिया के पाँच अंगों से समन्वित यह खेल बालकों में उनकी कल्पनाशीलता विकसित करने, प्रकृति के प्रति अनुराग उत्पन्न करने, सौन्दर्य बोध तथा कला प्रेम बढ़ाने का उपक्रम है। बेर की कटीली टहनी को भी नारी के रूप में सजाने का प्रयास–जापान के इकाबानों की शैली का है। इसमें काँटे, फल और फूल संघर्ष, सृजनात्मक उपलब्धि तथा अनुरागात्मकता का प्रतीक है। एक ओर, यह खेल किसी प्राचीन कथा पर आधारित है, जिसका पुष्ट ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता है। दूसरी ओर यह अंधविश्वासों में जकड़ी मान्यताओं की ओर संकेत करता है। यह बुंदेलखण्ड का विशिष्ट लोकोत्सव है। इसके साथ जुड़ी जनश्रुतिपरक कथा का यहाँ उल्लेख आवश्यक है। प्राचीन काल में सुआटा नामक विलासी दैत्य कुमारी कन्याओं को परेशान करता था। जब किशोरी बालिकाएँ सहेलियों के साथ वनगिरि को जाती थीं, वह दैत्य उन्हें परेशान करता, छेड़खानी करता था उसकी पूजा करने हेतु बाध्य करता था। बालिकाएँ चन्द्राबलि तथा सूरजबलि नामक धर्म–भाइयों से रक्षा की याचना करतीं तथा उनके संरक्षण में सुरक्षित घर पहुंचने की अनुमति लेकर वनों से चलती थीं। कन्याएँ माँ गौरी का पूजन करके उनसे भी दैत्यों की छेड़खानी से मुक्ति दिलाने हेतु प्रार्थना करती थीं। इसी बीच "टेसू" नामक वीर का उदय होता है। वह सुआटा की पुत्री "झिंझिया" (कहीं–कहीं इसे 'ढिरिया' भी कहते हैं) पर रीझ जाता है। वह सुआटा को परास्त करके झिंझिया के साथ ब्याह रचाता है। विवाह के पश्चात् सुआटा का अंग प्रत्यंग लूटा जाता है। हाथ–पैर तुड़वाकर फेंक दिए जाते हैं। उसके रत्नालंकृत आवरण तथा आभरण की प्रतीक कौड़ियाँ लूटकर लोग घर ले जाते हैं। विजय–पर्व पर अर्जित संपत्ति की प्रतीक यह कौड़ियाँ तिजोरी में रखना लोग शुभ मानते है। एक अन्य जनश्रुति के अनुसार टेसू नामक वीर, सुआटा दैत्य तथा उसकी पुत्री झिंझिया को सताता था। अन्त में समझौता हुआ और सुआटा को टेसू के साथ झिंझिया का विवाह करना पड़ा। अभी भी टेसू खेलने वाले लड़के चोरी छिपे सुआटा नामक राक्षस के हाथ पैर तथा नाक कान काट लेते हैं।

सुआटा का लोकगीत कथात्मक है। इसमें कुमारी बहिन का बालसुलभ हठ, माँ का वात्सल्यपूर्ण उत्तर, विवाहित बहिन की खोज तथा उसे लिवाने जाते समय परोपकार के अनेक कार्य करते जाने का रोमांचक वर्णन है। टेसू बालकों

का गीत है, शेष बालिकाओं के। इनमें वाद्यों का प्रयोग नहीं होता है।

टेसू

टेसू आये बानवीर, हाथ लिये सोने का तीर
एक तीर से मार दिया, राजा से व्यवहार किया
नौ मन पीसें, दस मन खाये, घर–घर टेसू माँगन जाय
पड़वा बोले, 'आंय आंय आंय।'

टेसू झिंझिया विवाह के गीत

हरी री चिरैया तोरे पियरे पियरे पंख
सो उड़–उड़ जाय बबूरा तोरी डार
काजर की कजरौटी, ल्याव, सेंदुर की सिदरौटी ल्याव,
आंचल फार उड़निया ल्याव बेलाभर तिल चांउरी ल्याव
ऊपर गुर की बटी धराव पाँच टका पानन के ल्याव
लोंग, सुपारी रुपया ल्याव आज विदा हो रई झिंझिया जू।

ऋतु–गीत
बरसाती रसिया

गाड़ीवारे मसक दै रे बैल, अबै पुरवाइया के बादर ऊनये।
कौन बदरिया ऊनई रसिया, कौन बरस गए मेघ। अबै.....
अग्गिम बदरिया ऊनई रसिया, पच्छिम बरस गए मेघ। अबै....
घुँगटा बदरिया ऊनई रसिया, गलुअन बरस गए मेघ। अबै....
गलुअन बदरिया ऊनई रसिया, छतियन बरस गए मेघ। अबै....
चोली बदरिया ऊनई रसिया, लहँगा बरस गए मेघ। अबै...

फागें (फागुन के गीत)

मौ पै रंगा न डारो सांवरिया
मैं तो ऊसई अतर में डूबी लला, मो पै रंगा....
केसर डार रस गंगा बनाई, हरे बांस पिचकारी लला
भर पिचकारी मोरी सम्मुख मारी,
भींज गई तन सारी लला। मौ पै रंगा....

दिवारी

धनुष चढ़ाये राम ने, सो प्यारे थकित भये सब भूप रे।
मगन भई श्री जानकी सो देख राम कौ रूप रे

आज दिवारी इते है, पैले पार है काल रे
बाजत आवै ढोल सो, नाचत आवैं ग्वाल रे।

शृंगार गीत

बुन्देलखण्ड के लोक साहित्य में शृंगार की समृद्ध परम्परा है। मनोभावों की सरस अभिव्यक्ति इन गीतों में हुई है। बुन्देली बालाएँ अपने प्रिय के साथ इतनी तन्मय हैं कि उन्हें 'भुनसारे चिरैयों' का बोलना भी प्रेम में व्यवधान लगता है।

दादरा

काय बोली रे काय बोली, भुन्सारें चिरैया काय बोली,
चिरैया काय बोली, रे बड़े तड़कें चिरैया काय बोली
ठंडौ रे पानी गरम कर लाई, सपरन न पाये पिया, फिर बोली, काय....
ताती जलेबी, दूदा के लड्डवा, जेउन न पाये पिया, फिर बोली, काय....
झनझन झाड़ी भरौ ठरोरे, पानी पियन न पाये पिया, फिर बोली, काय.....

प्रतीक्षा गीत

रसिया आये गरद उड़ी ग़ोरी
जब मोरे रसिया मैड़ै पै आये सूखी दूबा हरियानी ग़ोरी।
जब मोरे रसिया सूखा में आये रीते कुआँ भर आये ग़ोरी।
जब मोरे रसिया द्वारे पै आये मुतियन चौक पुराये ग़ोरी।
जब मोरे रसिया बखरी में आये, सोने कलश धराये ग़ोरी।

बेमेल विवाह गीत

छोटे बलम बड़ी नार ना
जर जैयौ हमारे जोबना।

गुदना की गारी

गोदना जनजातियों तथा लोकांचलों में महिला के शृंगार का महत्त्वपूर्ण साधन है। इसका आधुनिक रूप "टेटू सज्जा" के नाम से सामने आया है। पारम्परिक गोदना गुदवाने की प्रक्रिया अत्यन्त कष्टकारक थी। फिर भी नायिका वह चाहती हैं। वह कृष्ण भक्त है तो शरीर के विभिन्न अंगों पर कृष्ण के ही रूपों को अंकित करवाना चाहती है।

आरी ऐरी गोदें जा गुदनारी
भौंअन पै गिरधारी आरी ऐरी, माथे मुकुट मुरारी लिखियो

आरी ऐरी, गालन पै लालन छइयाँ
आरी ऐरी, जिभिया बीच दमोदर लिखियों, ओठन पै बनवारी

श्रमगीत

व्यक्ति चाहे हल चलायें, बुआई करें, फसल काटें, कोल्हू में तेल पेरें या चक्की पीसें–इन क्षणों में उसकी तन्मयता के लिए गीत सहायक होते हैं। स्वरलहरी में तन्मय होकर वह अपनी थकान भूल जाता है। इन्हीं व्यस्त क्षणों में खेती में कटाई या अन्य कृषि कार्य करते समय बिलवारी तथा दिनरी और महिलाओं द्वारा चक्की पीसते समय "जंतसार" के गीत लोकजीवन में रस बस गए हैं। इनकी अपनी धुनें हैं और अपनी संगीतात्मकता। नारी आभूषणों के बजने की ध्वनि स्वयं लोकवाद्यों का कार्य करती है। प्रस्तुत है एक श्रमगीत –

फसल कटाई का गीत

सूरज की मुरक गई कोर, राम के रथ बिलमाये काऊ जोगी ने
चलो हो, बेरा भई अब घर जावे की।
दिन डूबे कें धरा रई लंबी मांग
किसानों भैया, बेरा तौ भई है घर जावे की।
घालौ घालौ रे धरम के दो–दो हाथ। बेरा तौ.....
कठोइरा ने कसक न जानी मोरे जियरा की। बेरा तौ...

जातियों के गीत

विभिन्न जातियों, विशेष कर अति पिछड़ी जातियों में विभिन्न अवसरों पर गाए जाने वाले अपने लोक गीत तथा उनकी लोक धुनें हैं। उन्हें उनके जातिगत गीत या गारी के नाम से जानते हैं। यथा–ढिमरियाऊ गारी, कछियाऊ गारी धुवियाऊ गारी, गड़रियाऊ गारी, कहरवा (कहार–गीत) आदि। प्रस्तुत है ढिमरियाऊ–गीत –

पानूं कौ रूजगार ढिमर तोरो, पानी को रूजगार। पानू कौ.....
चार घिनौंची पानूं भरतई, आना मिलतई चार....
चार रोट को करत कलेऊ तनक चुआई दार...
ओई तला की मारें मछरियाँ ओई के खोदें मुरार...
पानूं भरबे आई छबीली, बीच में मिल गए यार....

शौर्य/प्रशस्ति गीत

समकालीन महापुरुषों ऐतिहासिक पात्रों अथवा आंचलिक ख्याति

के व्यक्तियों की प्रशंसा में अथवा उनके शौर्य को बखानते हुए अनेक गीत मिलते हैं। राछरे तथा पँवारे गीत शौर्यपरक होने पर रासो परम्परा में गिने जाते हैं। इनमें जो गीत कथात्मक होते है, वे तकनीकी दृष्टि से लोकगाथा की श्रेणी में गिने जाते हैं। आल्हा आदि शौर्य काव्य भी इसी परम्परा में हैं।

ykduR;

सार्वजनिक नृत्य

1. दिवारी : दीवाली के अवसर पर इसे प्रायः अहीर जाति के लोग करते हैं। लोक मान्यताओं के अनुसार यह गोवर्धन पर्वत उठाते समय ग्वालों द्वारा किया गया था। यह पूरे बुन्देलखण्ड में प्रमुखता के साथ होता है। नर्तक फूँदनादार बंडी तथा जांघिया (रंगबिरंगे) पहनते हैं। प्रमुख नर्तक मोर पंख के मूँठ हाथ में लिए होता है। शेष पीठ की ओर जांघिया में खौंसे रहते हैं, हाथ में डंडे लिए रहते हैं। कमर में घुंघरू बाँधे रहते हैं। इसकी टेर बड़ी आकर्षक होती है। इसके साथ गाए जाने वाले गीत दो पंक्तियों के होते हैं। प्रमुख वाद्य ढोलक तथा नगड़िया होते हैं। वाद्य, गीत गाए जाने के पश्चात् बजाए जाते हैं। इसके साथ गाए जाने वाला गीत निम्नवत् हैं –

सदा भवानी दाहिनीं, सन्मुख रहें गनेश
पाँच देव रच्छा करें ब्रह्मा विष्णु महेश, हो...
खेल लै लरका खेल लै, आज कौ खेलो कब पाय है।
तोरो कातिक भागो जाय रे.....
वृन्दावन बसवो तजौ, अरे होने लगी अनरीत
तनक दही के कारनें, फिर वैंया गहत अहीर, हो.....

2. सैरा नृत्य : यह सावन में खेला जाता है। नर्तक दोनों हाथों में छोटे–छोटे डंडे लेकर गोलाकार खड़े हो जाते हैं। गायन एक साथ होता है। तथा अपने दाँये–बाँये खड़े नर्तक के डंडों पर डंडा मारते हैं। सभी नर्तकों के डंडों की चोटें एक साथ स्वर देती हैं। नर्तक कभी झुकते, निहुरते और आड़े–तिरछे होते हैं। यह क्रम एक साथ चलता है। दण्ड–प्रहार से विशेष संगीत की सृष्टि होती है। प्रमुख गीत निम्न प्रकार है –

कजरा के काँटे लगै, बेंदी लगें सौत की कोर
यारों के नेहा लगें, मोय सालै आदी रात, हो.....
असड़ा तो लागै रे, असड़ा तौ लागे ओ, मोरे प्यारे, दूब गई हरयाय,
वीरन लिबौआ आये नईं, घर चुनरी धरी रंगाय, हो.....

3. झिझिया नृत्य : यह नृत्य क्वाँर माह की पूर्णिमा को टेसू झिझिया विवाह के अवसर पर कुँवारी बालिकाओं से लेकर वृद्ध महिलाओं तक सब के द्वारा किया जाता है। इसे 'झिंझिया नचावौं' कहते हैं।

केन्द्र में एक महिला झिझिया सिर पर रखकर नाचती है। शेष महिलाएँ वृत्ताकार खड़ी होकर तालियों की थाप देकर नाचती है। यह गुजरात के गरवा की तरह है। मुख्य नर्तकी कभी खड़े होकर कभी बैठ कर, कभी मुड़कर, कभी लहकी लेकर नाचती है किन्तु झिझिया का संतुलन बनाए रखती है। तालियों की थाप की तेजी के साथ नृत्य की गति तीव्रतर होती जाती है। इसमें झिझिया के गीत गाए जाते हैं।

हरी री चिरैया, तोरे पियरे रे पंख
सो उड़ उड़ जाय बबूरा तोरी डार।

4. मौनिया नृत्य : यह दिवारी नृत्य की तरह ही होता है। किन्तु इस नृत्य के समय नर्तक सिर्फ नृत्य करते हैं, गाते नहीं अपितु मौन रहते हैं, इससे "मौनिया नृत्य" कहते हैं। यह दीपावली से देवोत्थान एकादशी तक कई गाँवों की यात्रा करते–करते गाया जाता है। कृष्ण कथा से जुड़े होने के कारण इसे 'मोहनियाँ नृत्य' भी कहते हैं।

5. जवारे नृत्य : यह नवरात्रि में जवारे निकालते समय गाते हैं। जवारे के साथ पूजन का थाल रहता है। एक व्यक्ति "सांग" (लोहे की छड़) गाल में बिंधाकर चलता है तथा साथ में पुरुष और महिलाएँ नाचते–गाते चलते हैं। अचरी गाई जाती है।

तोरे दरस कों सब दल उमहें,
मठिया के खोलो किवार हो मांय।

6. कानड़ा (धुवियाई) : यह धोबी जाति का नृत्य है। इसमें मुख्य नर्तक केन्द्र में मथानी की तरह नाचता है। शेष सहयोगी वृत्ताकार कुड़ी (घेरे) की तरह खड़े हो जाते हैं। यह धोबी जाति में विवाह के समय गाया जाता है। नर्तक 'बागौ' पहनता है, सिर पर पाग बाँधता है। पैरों में घुँघरू बाँधता है। गीत में बिरहा गाया जाता है।

लकरी जर केवला भई, केवला जर भऔ राख,
मैं पापन ऐसी जरी, केवला भई न राख।
हमने कहा बिगारौ बालमा कौ।

7. रावला : यह नृत्य धोबी, काछी, चमार, मेहतर, बसोर, कोरी, गड़रिया आदि जातियों में किया जाता है। इसमें एक पुरुष स्त्री का वेष रखता है। दूसरा विदूषक का। प्रमुख वाद्य रमतूला, सारंगी, झींका है। इसमें रावला गीत गाए जाते हैं।

गुरू पइयाँ लागौ ज्ञान ला अम दइयों
ई धर भीतर नित अंदयारौ, ज्ञान को दियल जराय दइयौ।

8. ढिमरयाई : यह ढीमर जाति का अपना नृत्य है जो विवाह आदि अवसरों पर पुरुषों तथा महिलाओं द्वारा किया जाता है। प्रमुख वाद्य रमतूला, खंजरी, लोटा, सारंगी होते हैं। इसके गीतों में मुख्यतया कहरवा, सजनई तथा बिरहा गाते हैं।

पानूं कौ रूजगार ढिमर मोरौ पानूं को

ikfjokfjd ykduR;

1. चंगेल या कलश नृत्य : यह नृत्य शिशु जन्म के समय बुआ द्वारा लाए गए बधाए के साथ किया जाता है। चंगेल "पालना" को कहते हैं। कहीं पर बुआ चंगेल या कलश का टिपनिया सिर पर रखकर नाचती है, कहीं बुआ के बजाय नाइन नाचती है। वाद्य ढोलक प्रयुक्त होती है। इस अवसर पर सोहरे तथा बधाए गीत गाए जाते हैं।

2. 'लाकौरा' या 'रास–बँधावा' नृत्य : विवाह में भाँवर की रस्म पूरी होने के पश्चात् कन्यापक्ष की महिलाएँ जब डेरों पर जाती हैं तो वहाँ बहू का टीका पूजन वर पक्ष के रिश्तेदारों द्वारा किया जाता है। इसे "रास वधावा" कहते हैं। उस अवसर पर कन्या पक्ष की महिलाएँ विशेषकर बालिकाएँ यह नृत्य करती हैं। गीत बन्नी गाए जाते हैं। वाद्य मृदंग प्रयुक्त होता है। महिलाएँ पुरुषों पर गुलाल तथा रंग छिड़कती हैं। अब यह कुछ ग्रामों तक ही जीवित है। अब इसके स्थान पर हिजड़ा नृत्य प्रारम्भ हो गया है। वे डेरों पर बिना बुलाए अधिकारपूर्वक आ जाते हैं तथा नाच कर अपना नेग वर पक्ष से लेकर ही विदा लेते हैं।

3. बहू उतराई का नृत्य : यह नृत्य विवाहोपरान्त वर पक्ष के यहाँ वधू के आगमन पर बहू–बेटा लेते समय किया जाता है। बहू–बेटा के आगमन पर पहले उनकी आरती उतारते हैं। सास लक्ष्मी की प्रतीक बहू के पैर छूती है। इसे बुन्देलखण्ड में "नई बहू की पाँयलागन" कहते हैं। इसके पश्चात् उल्लास व्यक्त करने के लिए सास, देवरानी, जिठानी, बुआ आदि रिश्तेदार

बहू तथा बेटा को क्रमशः 'कइयाँ' लेकर नाचती है। वाद्य ढोलक प्रयुक्त होता है। 'सगुन चिरैया' गीत गाए जाते हैं।

ykd lxhr rFkk ykdok|

मानव मन की भावनाओं तथा मनः स्थितियों की ध्वनियों के साथ अनुभूतिपरक अभिव्यक्ति का नाम ही लोकसंगीत है। यह भाव संप्रेषण का एक सशक्त माध्यम है। यह वह भाषा है। जिसमें शब्द नहीं स्वर लय ही भावों को व्यक्त करते हैं। घर की महिलाएँ जब चक्की पीसती, आटा गूँथती या मट्ठा भांती हैं, तब उनके आभूषणों से निकलती ध्वनियाँ उनकी तन्मयता में वृद्धि कर देती हैं। उनके मुँह से निकले गीतों के बोल तथा आभूषणों से निकले स्वर मिलकर एक आनन्ददायी वातावरण का निर्माण करते हैं। रसधार प्रवाहित होने लगती है। यही रसधारा लोक संगीत का उत्स है। संगीत रत्नाकर के अनुसार गीत, वाद्य और नृत्य की त्रयी ही संगीत है।

गीत वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते

प्रमख लोक वाद्य निम्न प्रकार के होते हैं–

1. फूँकवाद्य : जिन वाद्यों से मुँह की हवा या फूँक से नाद उत्पन्न करते हैं, उन्हें फूँकवाद्य तथा शास्त्रीय भाषा में 'सुषिर वाद्य' कहते हैं। जैसे अलगोजा बाँसुरी, तुरही आदि।

2. खालवाद्य : जिन वाद्यों में किसी खोखले पात्र को खाल से मढ़कर, खाल पर थाप से नाद उत्पन्न करते हैं। उन्हें लोक भाषा में खालवाद्य तथा शास्त्रीय भाषा में 'अवनद्य वाद्य' कहते हैं जैसे ढोलक, नगड़िया आदि।

3. घन वाद्य : जिन वाद्यों में परस्पर आघात से स्वर के बजाय विशेष ध्वनि किटकिट धन धन टन टन करके होती है। उसे घन वाद्य कहते हैं। इन्हें आधे वाद्य में गिना जाता है। जैसे चटकोला आदि।

उक्त श्रेणियों के निम्न वाद्य विशेष प्रचलित हैं –

तुरही या रमतूला, बाँसुरी, नगड़िया, नगाड़ा, हुड़क, ढोलक, चंग, पखावज (मृदंग), खंजरी, झाँझ, मंजीरा, कसेरू, चटकोला

ykddFkk,¡

बुन्देलखण्ड के लोकजीवन में लोककथाओं का बाहुल्य है। इन्हें कथा, क़िस्सा, कहानियाँ (कानियाँ) आदि कहा जाता है। प्रमुख लोककथाओं के वर्गीकरण निम्न प्रकार हैं – (1) व्रत कथाएँ (2) उपदेशपरक कथाएँ (3)

मनोरंजक कथाएँ (4) रोमांच कथाएँ, और (5) शौर्य कथाएँ। घर के भीतर महिलाओं द्वारा रात में बच्चों को सोते समय कहानी सुनाने की परम्परा है तथा घर के बाहर चौपाल में अथवा जाड़ों में अलाव पर रोचक कथाएँ सुनाने की परम्परा अभी भी है। कुछ किस्सागो घटों तक लम्बी–लम्बी कहानियाँ सुनाते रहते हैं, कभी–कभी तो कहानी रात भर चलती रहती है। यह कहानियाँ शिक्षाप्रद तथा लोकमंगल की भावना से अनुप्राणित होती हैं।

चौपालों के सामने बने मैदान में शाम को गपशप होता है। जाड़ों में यही अलाव जलाकर उसके चारों ओर बैठकर गाँव का रोजनामचा बखाना जाता है। कुछ बूढ़े पुराने किस्से कहानियाँ सुनाते और लड़के हूँका भरते हैं। यहाँ के व्यक्ति कर्मशील हैं। अतः किस्से कहानियाँ रात्रि में ही सुनाते हैं ताकि दिन में कार्य–बाधा न हो। जब बालक दिन में किस्से कहानियाँ सुनाने का आग्रह करते हैं तो कहा जाता है कि दिन में किस्से सुनाने से सुनने वाले के मामा रास्ता भूल जाते हैं। बच्चों का आग्रह टालने का इससे अच्छा बहाना क्या हो सकता है ? शहरी 'कैम्प फायर' की तरह लोक जीवन में अलाव ज्ञानवर्द्धक मनोरंजन का महत्त्वपूर्ण साधन है।

लोककथाएँ गद्य में भी होती हैं तथा पद्य में भी। कुछ गद्य तथा पद्य मिश्रित भी। यह अत्यन्त ज्ञानवर्द्धक होती हैं तथा प्रायः गाँव की चौपाल में सुनाई जाती हैं। ऐसी ही मिश्रित शैली की ऐसे "कौवा की लोककथा" यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

ऐसे एक कौवा हतो, सो बो एक पेड़ पै पौंचों । हुना चिरइयन के चेनुआं धरे ते, सो वे जाकें चौंच मटकाउन लगौ। चिरइया जो देख रईती सो बोली, इते कायें खों आये। कौवा बोलौ, कै हम तमाए चेंनुआँ खावे आए हैं। चिरइया ने खूब सोच कैं बासे कई, जाओं पैलें कुआँ पै मौ धो आओ, तब खइयो। कौवा बोलौ जो कौन बड़ी बात है। वौ फिर उड़त उड़त एक कुआँ नौं पोंचौ और कुआँ से बोलौः

कुअल कुअल तुम कुअल जती। हम काग जती।
तुम देव पनुल्ला धुबै मुमुल्ला।
खायें चिरई के चेंनुआं। मटकावें नोंनी चोंच।

कुआँ बोलें, 'तुम कुमार कें सें एक घड़ा ले आओ और पानी खेंच ले जाओं। जौ सुनकें कौवा हतो सो कुमार के पोंचौं। बासें बोलौ–

कुमर, कुमर तुम कुमर जती, हम काग जती।

तुम देओ घड़ल्ला, खिंचै पनुल्ला, धुबै मुमुल्ला।
खायें चिरई के चेंनुआं, मटकावें नोंनी चोंच।।

कुमार बोलौ, "तुम जाके पैलें मांटी खोद लें आओं तौ हम बना दे हैं।" इतनी सुनाकै कौवा मांटी की खदान पै पौंचो और बोलौ–

मटुल–मटुल तुम मटुल जाती हम काग जाती।
तुम देऔ मटुल्ला बने घडुल्ला,
खिचैं पनुल्ला धुबै मुमुल्ला।
खायें चिरई के चेंनुआं, मटकावें नोंनी चोंच।

माटी बोली "तुम हिरना कौ सींग लै आओं, खोद लै जाओ।"

जौ सुन कैं कौवा उड़ौ और डांग में जाकै एक हिन्ना नों पोंचौ। हिन्ना से कन लगौ–

हिरन जती ओ हिरन जती हम काग जती।
तुम देऔ सिगुल्ला, खुदें मटुल्ला
बनें घडुल्ला, खिचें पनुल्ला, धुबै मुमुल्ला
खायें चिरई के चेंनुआं, मटकावें नोंनी चोंच।

हिन्ना बोलौ, "बा भइया कौआ, हम तो तैयार हैं। तुम ऐसौ करौ के पैले कुत्ता को लुवा लियाओ। वौ हम से लरहैं। बईं हमाऔ सींग टूट जै, सोई लैजैइयो।" जौ सुनतई बौ उड़ौ और उड़त–उड़त एक कुत्ता नौं पौचों और बासें बोलौ –

कुतुल–कुतुल तुम कुतुल जती, हम काग जती।
तुम लड़ौ हिन्न सें, खिंचे सिंगुल्ला
खुदै मटुल्ला, बनें घडुल्ला, खिचैं पनुल्ला, धुबै मुमुल्ला।
खायें चिरई के चेंनुआं। मटकावें नोंनी चोंच।

कुत्ता बोलौ, "जौ करौं, तुम भैंस को दूध लै आओं, हम पीकें मोटे हो जायें, तब लड़ सकैं।" सो जो सुनकै कौवा हतौ सो भेंस नों पोंचौ और बोलौ–

भिसुल–भिसुल तुम भिसुल जती, हम काग जती।
तुम देऔ दुदुल्ला, पिऐं कुतुल्ला, लड़े हिन्ने सें खिचों
सिंगुल्ला, खुदै मटुल्ला, बने घडुल्ला, खिंचे पनुल्ला,
खायें चिरई के चेनुआँ, मटकावें नोंनी चोंच।

भैंस बोली, "तुम जाकें पैलें चारौ लै आओं, सो हम खायें फिर चल हैं।" इत्ती सुनकैं कौवा उड़त–उड़त डाँग में पौंचौ और चारे सों बोलौ–

चरूल–चरूल तुम चरूल जती, हम काग जती।
तुम देओ चरूल्ला, खाये भिसुल्ला, देयें दुदुल्ला,
पियें घडुल्ला, खिचै पनुल्ला, धुवै मुमुल्ला,
खायें चिरई के चेंनुआं मटकावें नोंनी चोंच।

जौ सुनके चारौ बोलौ, "भइया पनमेसर ने हमें तौ बनाउई जाखों हैं। एन खुशी सें लै जाओं। अकेलै तुम एक हँसिया मसिया लै आओ। जा सै काट लें जाओ।" कौआ ने पूँछी भैया, "हँसिया कौन नो मिल जे हैं ?" चारौ बोलौ – "लुहार ददा नौं।" इतनों सुनकै कौआ हुन से चल दऔ और सोचत जावै, अब तौ बस चेंनुआ खावै खों मिल जै है। होत करत वौ एक गाँव में पौंच लुहार नों गऔ। बौ बा बेरा हंसियाँ पीट रओ तौ और उनें तपा रऔ तौ। कौवा बड़े राग से कन लगौ–

लुहुर–लुहुर तुम लुहुर जती, हम काग जती,
तुम देओ हंसुल्ला कटै चरूल्ला, खायें भिसुल्ला,
देंय दुदुल्ला, पियें कुतुल्ला, लड़ें हिन्न से,
खिचे सिंगुल्ला खुदै मटुल्ला, बनै घडुल्ला,
खिचैं पनुल्ला, धुबै मुमुल्ला, खायें चिरई के चेंनुआ,
मटकावे नोंनी चोंच।

लुहार जौ सुनके बोलौ, "हओ भइया लेओ जो है, कैसे ले जै है।" कौवा बोलौ, "हमाये गले पै धर दो।" हँसिया के धरतनई बाकौ गरो खस्सई कट गऔ और बा कौआ के दो टूका हो गए और वो कौवा हतो सो मर गऔ। चिरइया हती सो अपने चेंनुअन खों लैंके मजे में रन लगी। जो कोऊ काऊ की बुराई चाउत वाकौ बुरो होत है।

ykdkfä;k] c>kvy] egkoj

बुन्देलखण्ड निवासियों का वाग्चातुर्य यहाँ प्रचलित लोकोक्तियों, मुहावरों तथा बुझौअलों, (पहेलियों) में झलकता है। किसी भी सुन्दर–कथन के लिए सूक्ति या सुभाषित शब्द का प्रयोग मिलता है। जब यह सूक्ति या सुभाषित लोकव्याप्त होकर जन–जन में प्रचलित हो तो उसे 'लोकोक्ति' कहते हैं। इन लोकोक्तियों की सबसे बड़ी विशेषता संक्षिप्तता (बड़ी बात कम शब्दों में) में कहने का सामर्थ्य है। इनमें गागर में सागर भरा है।

ykdkfä;k ¼

लोकोक्तियाँ प्रायः नीतिपरक या उपदेशात्मक मिलती हैं। यह स्वास्थ्य संबंधी, नीति या, सामाजिक व्यवहार संबंधी, प्रकृति, कृषि कार्य संबंधी अथवा अन्य विषयों से संबंधित होती हैं।

स्वास्थ्य संबंधी लोकोक्तियाँ

(1)

चैते गुर, बैसाखै तेल, जेठे मउआ, असाढै बेर
साउन दूध भादौं दही, क्वार करेला, कातिक मही
अगहन जीरौ, पूसै धना, माघें मिसरी, फागुन चना
इतनी चीजें खैहो जभई, मरहौ नईं तौ पर हौ सही।

(2)

हर्र, बहेरौ आंवरौ, घी सक्कर सों खाय
हांती दाबै कांख में सात कोस लों जाय

(3)

निन्नें पानी जे पियें हर्र भूंज कें खाय
दूदन ब्यारू जे करें, तिन घर वैद न जाय

सामाजिक व्यवहार तथा नीति सम्बन्धी लोकोक्तियाँ

(1)

विप्र, वैद, नाऊ, नृपति, स्वान, सौत, मंजार ।
जहां जहां जे जुरत हैं, तहँ तँह करैं बिगार ।।

(2)

जाके जैसे बाप मताई, ,ताके तैसे लरका ।
जाके जैसे नदिया नारे, ताके तैसे भरका ।।

(3)

माता जनमें दो जने, कै दाता कै सूर
नाहीं तौ बाँझइ भली वृथा गँवायै नूर

कृषि या प्रकृति संबंधी लोकोक्तियाँ

(1)

जो कऊँ बरसै हाँती
गैऊँ लग है छाती

(2)

खेती आपन सेती
नई तो बंजर होती

स्थान या जाति सम्बन्धी लोकोक्तियाँ

(1)

नरवर चढ़ै न बेंड़नी एरच पकै न ईंट
गुदनौरा भोजन नहीं बूँदी छपै न छीट

(2)

झाँसी गरे की फाँसी, दतिया गरे कौ हार
नहीं ललितपुर छोड़ियों, जौ नों मिलै उधार

c>kvy

सांकेतिक ढंग से रहस्यात्मक बात कहना तथा दूसरे से पूछना और सही अर्थ जानना–यह बुन्देली में 'बुझौअल' कहलाता है। बुझौअल बूझनें (पूछना) से बना है। यह संस्कृति के प्रहेलिका शब्द का पर्यायवाची है। हिन्दी में इसे पहेली भी कहते हैं।

तनक सी मनक सी हरदी कैसी गांठ
चटाक चूमा लै गई तू हाय मोरे राम (ततइया)

egkojs

वाक्य को आकर्षक एवं चुस्त बनाने के लिए विलक्षण अर्थपरक वाक्यांश प्रयोग करते हैं, यह मुहावरे कहलाते हैं। मुहावरेदार भाषा का प्रयोग व्यक्ति की विद्वत्ता तथा वाक्चातुर्य का प्रतीक है। यह वाक्य का अंश होता है। अतः इसका स्वतंत्र प्रयोग नहीं किया जा सकता है। किन्तु किसी वाक्य में यथोचित स्थान पर रख देने से उसका अर्थ एवं महत्त्व बढ़ जाता है। बुन्देली लोकजीवन में मुहावरों का प्रयोग बहुतायत से होता है। देखिए कुछ

उदाहरण –

(1) छटाँक भर दूद, गाँव भर डंड पेलें
(2) जैसे सैयाँ घर रये तैसे रये विदेश
(3) चलनी में गैया दुहौ दोस कपारै देव
(4) नौनी के नौ मायके, जित भावै तित जाय
(5) मन मन भावै, मूँड़ हिलावै
(6) हाथ भर लिड़इया, नौ गज पूँछ
(7) जां बऊ कौ पीसनों उतई ससुर की खाट
(8) तुमाये जैसे तो हमाये अंटी में बँदे।
(9) पानी कौ डूबो, सूकौ नईं कड़त
(10) बड़ी पातर कौ बड़ौ बरा
(11) खायें खसम कौ, गांये यार कौ
(12) पीसवे कों सास, सकेलवें कों बऊ

ykd nork

बुन्देलखण्ड के प्रत्येक अँचल में लोक देवता तथा स्थान देवता की पूजा की जाती है। किसी भी व्यक्ति के शौर्य या चमत्कार से प्रभावित होने से उसे देवता का स्वरूप दिया जाता है। लोग लोक देवता, स्थान देवता या ग्राम्य देवता को एक ही श्रेणी में गिनते हैं। किन्तु इनमें भी एक पार्थक्य है। लोक देवता वह देवता हैं जिनकी पूजा पूरे बुंदेलखण्ड के लोकांचलों में होती है। हर गाँव में या शहर में उनके स्थान या चबूतरे हैं। जबकि ग्राम्य देवता या स्थान देवता ग्राम या स्थान विशेष पर होते हैं। यह आवश्यक नहीं कि एक स्थान या ग्राम के देवता अन्य ग्रामों में भी पूजित हों। मेरे विचार से इन देवताओं को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाना चाहिए–

1. लोक देवता – यथा लाला हरदौल, दूलादेव, मैकासुर, हीरामन देव, कारसदेव। इनमें लाला हरदौल सर्वाधिक मान्य हैं। प्रत्येक गाँव या नगर में उनके नाम पर चबूतरा होता है। उनकी कोई प्रतिमा नहीं होती है। इतनी व्यापकता के साथ सुदूर गाँव–गाँव तक पूज्य यह लोकदेवता हरदौल एक मनुष्य से उठकर लोक देवता कैसे बने ? यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रेरक और अनुकरणीय है। इनमें मैकासुर, हीरामन देव, कारसदेव पशु–रक्षक देवता के रूप में पूजे जाते हैं।

2. ग्राम्य देवता – यथा खैरमाता, ठाकुर बाबा, बेलदार बाबा, कोरी बाबा, मेहतरबाबा, खाती बाबा।

3. स्थान देवता – यथा घटोइया बाबा, मेड़िया बाबा आदि।

rht R;kgkj

भारत धर्म–प्राण देश है। देवी–देवताओं पर आधारित अनेक पर्व तीज त्योहार सभी जगह मनाए जाते हैं, किन्तु कुछ अँचल विशेष में मनाते हैं। इनके मनाने के स्वरूप तथा पूजा विधान में भी विभिन्नता होती है। जितने अधिक व्रत आदि मनाये जाते हैं, समाज उतना सुसंस्कृत माना जाता है।

प्रमुख तीज–त्योहार हिन्दू पंचांग के अनुसार निम्न प्रकार मनाए जाते हैं –

ज्वारे (बासंतिक नवरात्र, चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक), गनगौर (चैत्र शुक्ल तृतीया), शीतला आठें (चैत्र कृष्ण अष्टमी), जगन्नाथ जी की पूजा (चैत्र माह का अंतिम सोमवार), चैती पूनो (चैत्र शुक्ल पूर्णिमा), आसमाई (बैशाख कृष्ण द्वितीया), हरायतें लेना (कृषि पर्व–बैशाख कृष्ण अमावस्या), असाढ़ी देवता पूजन (आषाढ़ शुक्ल पक्ष में एकादशी तक किसी भी दिन), कुनघुसू पूनों, गुरु पूनों (आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा), हरजोती (श्रावण कृष्ण अमावस्या), साउनतीज (श्रावण शुक्ल तृतीया), नागपाँचें (श्रावण शुक्ल पंचमी), साउन सुदी नमें (श्रावण शुक्ल नवमी), साँउन (राखी–श्रावण शुक्ल पूर्णिमा), भुँजरियाँ (भाद्रपद कृष्ण प्रतिपदा), हरछठ (भाद्रपद कृष्ण षष्ठी), कन्हैया आठें (भाद्रपद कृष्ण अष्टमी), बाबू की दौज (भाद्रपद शुक्ल द्वितीया तथा माघ शुक्ल द्वितीया), तीजा (भाद्रपद शुक्ल तृतीया), गणेश चौथ (भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी), रिगपाँचें (भाद्रपद शुक्ल पंचमी), मौराई छठ (भाद्रपद शुक्ल षष्ठी), सन्ताउन सातें (भाद्रपद शुक्ल सप्तमी), गड़ा लैनी आठें (भाद्रपद शुक्ल अष्टमी), डोल ग्यास (भाद्रपद शुक्ल एकादशी), ओक दुआस (गैया पूजा, भाद्रपद शुक्ल द्वादशी), अनंत चौदस (भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी), बुढ़वा मंगल (भाद्रपद माह का अंतिम मंगलवार), सुआटा/नौरता/मामुलिया/झिंझिया (इसका विवरण पूर्व में दिया जा चुका है), कनागत (पितरपक्ष – भाद्रपद कृष्ण पूर्णिमा से आश्विन कृष्ण अमावस्या तक) महालक्ष्मी (हाँती पूजा (आश्विन कृष्ण अष्टमी), नौरता/ज्वारे (आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक – शारदीय नवरात्र), दुरगा आठें (आश्विन शुक्ल अष्टमी), दसैरा (आश्विन शुक्ैल दशमी), शरद पूनों (आश्विन शुक्ल पूर्णिमा), अघोई आठैं, बैमाता की पूजा (कार्तिक कृष्ण अष्टमी), धनतेरस (कार्तिक कृष्ण तेरस), नरक चौदस (कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी), दिवारी (कार्तिक कृष्ण अमावस्या), गोधन (कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा), भैया दौज (कार्तिक शुक्ल द्वितीया), करवा चौथ (कार्तिक कृष्ण

चतुर्थी), गोपाल अष्टमी (कार्तिक शुक्ल अष्टमी), इच्छानौमी (कार्तिक शुक्ल नवमी), देवठान (कार्तिक शुक्ल एकादशी), संकराँत (मकर संक्रान्ति के दिन, अंग्रेजी तिथि से 14–15 जनवरी), भँवरात (सकराँत के अगले दिन), बसंत पंचमी (माघ शुक्ल पंचमी), सूरज पूजा (माघ माह का अन्तिम रविवार), होरी (फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा)।

बुन्देलखण्ड के उक्त पर्व, उत्सव व्रत और पूजन यहाँ की संस्कृति विशेष रूप से निरूपित करते हैं। यहाँ 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' की भावना सर्वोपरि है – इसीलिए महिला–सम्मान में अनेक पर्व मनाते हैं 'कुनघुसूँ पूनों' में बहुओं की पूजा, हरी–जोत में बेटियों की पूजा, सुहागिनों के नाम पर सौभाग्यवती स्त्रियों को महावर तथा सुहाग चिह्नों से सजाकर उन्हें ससम्मान पूजा में शामिल करना, भोजन कराना, गौरा देवी, नवरात्रि आदि इसी का विधान है। कृषि कर्म के अनुरूप हरायतें, गाय–बछड़ों की पूजा, दसरइयाँ कुठला–पूजन आदि अनेक पूजन विधान है। करवा चौथ पर पति की कल्याण कामना का पर्व उल्लास से मनाया जाता है। कुल देवता की भी पूजा होती है।

अन्य पूजन/अनुष्ठान – महिलाएँ अपने परिवार की मंगल कामना तथा अनिष्ट निवारण के लिए अनेक प्रकार की सुहागलें करती हैं। इनमें केवल सौभाग्यवती स्त्रियाँ भाग लेती हैं। इनकी कोई तिथि निश्चित नहीं होती है। कुछ सुहागलें निम्न प्रकार हैं–

गौरइयाँ, हुररइयाँ, संकटा की सुहागलें, दशारानी की सुहागलें पुरखन (सौतन) की सुहागलें, बीजासेन की सुहागलें आदि।

सोमवार को पड़ने वाली अमावस्या (सोमवती अमाउस) का यहाँ विशेष महत्त्व है। पुरुष, महिलाएँ, आंचलिक तीर्थों, यमुना नदी या तालाबों पर जाकर स्नान पूजन करते हैं। महिलाएँ ऐसे पीपल की जिसके नीचे शंकर जी की मूर्ति/शिवलिंग हो 108 परिक्रमाएँ किसी वस्तु का दान करके करती हैं।

जिस वर्ष में अधिमास पड़ता है उसे मलमास के रूप में मनाते/पूजते हैं। मास पर्यन्त कच्ची काली मिट्टी के शंकर जी बनाकर नित्य उनकी पूजा की जाती है। किसी मनौती के लिए सत्यनारायण कथा बँचवाने या *रामचरितमानस* का अखण्ड पाठ करवाने का या कन्या जिमाने का संकल्प लिया जाता है।

उक्त अधिकांश पर्वों/त्यौहारों पर महिलाएँ व्रत रखतीं तथा कहानियाँ

कहती हैं। कुछ पूजाएँ कुँवारी लड़कियों को देखने का निषेध है। अनेक परिवारों में प्रत्येक मंगलवार को हनुमान जी के मन्दिरों में जाकर चोला चढ़ाने का आचार विधान है। चोला में घृत–मिश्रित सिन्दूर का लेपन हनुमान जी की प्रतिमा पर किया जाता है तथा नैवेद्य अर्पित करके आरती उतारी जाती है।

प्रथम बार गाय ब्याने अथवा तुलसी के पौधे में प्रथम बार पत्ती आने पर दशारानी के गड़ा लेने का विधान है। इसमें गड़ा लेने के पश्चात् दस दिन नियमित पूजन तथा व्रत रखा जाता है। दस दिनों तक प्रतिदिन एक नई कहानी सुनाते हैं। इस प्रकार दस कहानियाँ सुनाई जाती हैं। दसवें दिन दशारानी की सुहागलें की जाती हैं।

efLye R;kgkj

यह त्योहार चन्द्रदर्शन के आधार पर मनाए जाते हैं। अतः इनकी तिथियाँ नियत नहीं हैं। पुनश्च, इन्हें हिजरी सन् के हिसाब से मनाते हैं, जो ग्यारह माह के अंतराल पर पड़ते हैं। अतः इन उत्सवों का वर्णन पृथक् से दिया जा रहा है।

बारावफात या मिलाद–उल–नबी : यह मुस्लिमों के पैगम्बर हजरत मुहम्मद साहब के जन्मदिन पर मनाया जाता है। इसे अत्यन्त उत्साह के साथ मनाते हैं तथा रात्रि में मस्जिदों/मदरसों, घरों पर प्रकाशोत्सव के रूप में मनाते हैं।

ईद (ईद–उल–फित्र) : यह त्योहार पवित्र रमजान माह के रोज़े समाप्त होने पर मिलान और उल्लास पर्व के रूप में शब्बल माह के प्रथम दिन मनाया जाता है। इस दिन लोग एक दूसरे को बधाइयाँ देते हैं तथा व्यंजन/समारोहिक भोजन विशेष कर मीठी सिंवई खाते/खिलाते हैं। इस दिन नए वस्त्र एवं जूते पहनने की परम्परा है। ईद की नमाज़ अत्यन्त उत्साहपूर्वक पढ़कर लोग हर्ष से एक–दूसरे के गले मिलते हैं।

बकरीद (ईद–उल–जुहा) : यह त्योहार धर्मगुरु इब्राहीम द्वारा स्वप्न में खुदा के कहने पर पुत्र की बलि देने के प्रयास में बकरे की गर्दन कट जाने के उपलक्ष्य में मनाया जाता है। इस दिन उपवास रखा जाता है तथा बकरे की बलि दी जाती है। इसीलिए इसे 'बकरीद' के रूप में जाना जाता है।

मुहर्रम : यह मुस्लिम समुदाय के लिए शोक का पर्व है। हजरत मुहम्मद साहब के पौत्र इमाम हुसैन की कर्बला में शहादत की याद में उन्हें सम्मान देने के लिए मनाते हैं। इस दिन ताजिए निकाले जाते हैं। अनेक स्थानों पर इसे दस दिन तक मनाते हैं, लेकिन चार दिन विशेष महत्त्वपूर्ण हैं – मेहँदी (5वें दिन),

अलम (7वें दिन), कत्ल की रात (9वें दिन), ताजिया विसर्जन (10वें दिन), शिया हज़रात इसे पूरे माह मनाते हैं। वह ताजिए इमाम हुसैन तथा हसन की मजार की अनुकृतियाँ होती हैं। ताजियों के साथ 'बर्राक' भी बनाई जाती है।

tSu R;kgkj

इनका मुख्य पर्व पर्यूषण है जिसमें दस दिनों तक निरन्तर दस लक्षण धर्म का आत्मचिंतन करते हैं। यह पर्व श्वेताम्बर तथा दिगम्बर में श्रावण से भाद्रपद तक विभिन्न तिथियों में एक साथ मनाते हैं। उल्लासपूर्वक प्रवचन आदि भी होते हैं।

esyk

लोक जीवन में मेले लोकरंजन का विशिष्ट साधन हैं। यहाँ अनेक पर्वों पर संबंधित देवस्थानों में मेले लगते हैं। यह मेले मुख्य रूप से नवरात्र, दशहरा, दीवाली संक्रान्ति (बुड़की), कार्तिक पूर्णिमा, अक्ती, भुजरियाँ, नागपंचमी आदि पर लगते हैं। इन मेलों में इस लोकांचल के लोक जीवन की बहुरंगी छटा एक साथ देखी जा सकती हैं। पारम्परिक वेषभूषा में सजे–धजे बाल–वृद्ध, युवतियाँ नर–नारी हंसते–गाते, ठिठोली करते तथा उल्लास बिखेरते दिखाई देते हैं। दैनिक जीवन की हारी थकी कशमकश से हटकर, इन मेलों में नयी ऊर्जा और ताजगी मिलती है। नये–नये व्यंजन, नये खेल खिलौने तथा हस्तशिल्प के अद्‌भुत नमूने इनमें देखने को मिलते हैं।

मेले के दिन जिस नदी सरोवर या देवस्थान को जाना हो, उससे संबंधित लोक गीत या भजन गाते नर–नारी सजी–धजी बैलगाड़ियों, ट्रैक्टरों, साइकिलों पर अथवा कतारबद्ध पैदल चलते दिखाई देते हैं। एक रात्रि पूर्व ही मेले में भोजन करने की तैयारी, सामग्री पोटलियों में बाँधकर रख ली जाती है। बड़े भोर ही घर से एक अजीब ललक लेकर वे निकल पड़ते हैं। वर्ष भर की घरेलू खरीददारी भी इन मेलों में की जाती हैं। इन मेलों में महिलाएँ कहीं गुदनारी की दुकान पर गोदना गुदवाते दिखेंगी तो कहीं मेहँदी, महावर, टिकुली, परिधानों आभूषणों से घर–गृहस्थी के बर्तनों की खरीददारी में व्यस्त होंगी। छोटे बच्चे फिरकनी गुब्बारे खरीदते तथा बुढ़िया के बाल खाते दिखेंगे। रेवड़ी, इलायचीदाने, बताशे, शक्कर के घुल्ले, ढुरकीला (मोटे सेव), लइया खील तथा चाट खाये बिना इन मेलों से लौटना अधूरा सा लगता है। सभी रेंचकुओं या हिंडोलों पर झूलने में हर्ष का अनुभव करते हैं। पैरिस्कोप में नौ मन की नंगी धोबिन देखने के लिए बच्चों में होड़ लगी रहती है। सरकस, जादू शीशाघर, नौटंकी, दिल–दिल–घोड़ी,, मदारी (बन्दर, भालू या

रीछ के साथ) इन मेलों में मनोरंजन का प्रमुख आकर्षण होते हैं। कहीं–कहीं रंग–बिरंगे घुटनों में घुँघरू बाँधे युवक पारम्परिक लोक–नृत्य करते दिखेंगे तो कहीं लाठी और तलवार भाँजकर शौर्य प्रदर्शन करते युवक मेले को पारम्परिकता से जोड़े रहते हैं। प्रमुख मेले निम्न प्रकार हैं –

(1) नवरात्र/जवारा मेला – विभिन्न ग्रामों में दुर्गा माता तथा देवियों के मन्दिरों पर बासंतिक तथा शारदीय नवरात्रि में जवारों के मेले लगते हैं। लोग अपनी मनौती के अनुसार जवारे बोकर उन्हें, नाचते–गाते, माँ को चढ़ाने के लिए इन मन्दिरों में लाते हैं। इसमें कुछ लोग पेंड़ें, भरकर (साष्टांग दंडवत् की मुद्रा में) यात्रा पथ पूरा करते हैं। अपने गाँव से 20–20 किलोमीटर दूर तक पैदल चलकर जवारे सिर पर रखकर लाना तपस्या का ही संक्षिप्त विधान है। जवारे के प्रसिद्ध मेलों में 'पचपिंडा देवी मेला' तथा 'वनखण्डी देवी मेला' प्रसिद्ध है। इन दोनों की चर्चा धार्मिक स्थलों के अध्याय में भी है।

(2) पितृ–मेला (परासन) – यह मेला पितृपक्ष भर चलता है। दूर–दराज से लोग यहाँ बेतवा नदी में मछलियों को आटा चुगाने आते हैं। मान्यता है कि जो व्यक्ति दाना चुगाने आए उसके पितर मत्स्य रूप में उसके सामने आते हैं। कुछ लोग मछलियों को नथ आदि पहना देते हैं। जनश्रुति है कि वही मछली अगले वर्ष उसी नथ के साथ चुगाने वाले के समक्ष पितृ रूप में उपस्थित होती है। यह विशेष बात है कि यहाँ मछलियाँ केवल पितृपक्ष में ही आती हैं। साढ़े ग्यारह महीने मछलियाँ यहाँ दिखती ही नहीं हैं।

(3) सूर्ययात्रा मेला (मदरा लालपुर) – कालपी तहसील में गुलौली ग्राम के निकट मदरालालपुर नामक स्थान पर कालप्रियनाथ के भग्न सूर्य मन्दिर के टीले पर यह मेला अगहन माह के अंतिम रविवार को लगता है।

(4) राम जन्मोत्सव शोभायात्रा – चैत्र शुक्ल नवमी को 'रामादल' की ओर से राम–जन्म उत्सव की शोभा यात्रा जुलूस के रूप में नगर के प्रमुख मार्गों से निकाली जाती है। स्थान–स्थान पर स्वागत होता है। यह यात्रा सचल मेला का स्वरूप ग्रहण कर लेता है।

(5) गुरु पूर्णिमा मेला – आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा को व्यास टीला स्थित मन्दिरों पर तथा 'गुरु का इटौरा' में यह मेला भरता है।

(6) नागपंचमी मेला – यह मेला श्रावण शुक्ल पंचमी को लंका मीनार के

मैदान में होता है। इस मेला में दंगल की भी परम्परा है। कुछ दशक पूर्व तक इसमें देश के बड़े–बड़े पहलवान भी आते थे। जिले के अधिकांश नामी–गिरामी पहलवान तो आते ही थे। रात्रि में कंस लीला का आयोजन भी होता है।

(7) दशहरा मेला – यह मेला एम.एस.वी. इण्टर कालेज के प्रांगण में रामलीला समिति के सहयोग से 'रावण वध' के रूप में होता है। मेला से लौटकर नर–नारी परस्पर मित्रों–रिश्तेदारों के घर मिलने जाते हैं।

(8) मकर संक्रान्ति बुड़की मेला – यह मेला हिन्दू पंचांग के अनुसार सूर्य के मकर राशि आने पर मकर संक्रांति के दिन मनाया जाता है। इसे स्थानीय बोली में बुड़की का मेला भी कहते हैं। यमुना के प्रमुख घाटों पर हजारों नर–नारी स्नान करते हैं। व्यास क्षेत्र में दिन भर मेला लगा रहता है।

(9) बसंत पंचमी मेला – यह मेला मदार साहब की मजार पर मदारपुर मुहल्ले में, व्यास क्षेत्र के निकट, होता है। नर–नारी व बालक बड़े उत्साह से बसंती रंग के कपड़े पहनकर हाथों में गेहूँ की बाल एक दूसरे को भेंट करते हैं। मजार के गुम्बद पर कौड़ी मारने की परम्परा है। मान्यता है कि मजार पर नौ बार सही चोट लग जावे तो मुराद पूरी होती है। ग्रामीण मेले का समग्र परिवेश दिखाई देता है। रेंचकुआ, झूला, बाइसकोप (नौमन की नंगी धोबिन), जादूघर आदि के मनोरंजक स्टाल होते हैं। ग्रामीण व्यंजनों में लड्डुओं (मूँग तथा तिल के), रेवड़ी तथा चाट के स्टालों पर बच्चों, महिलाओं की भारी भीड़ होती है।

(10) शिवरात्रि मेला – फागुन कृष्ण चतुर्दशी के दिन सभी शिव मन्दिरों पर शिवपूजन के लिए नर–नारियों की भीड़ एकत्रित होती है। नगर में शिव–बारात निकाली जाती है, जिसमें अधिकांश समाजसेवी संगठन भाग लेते हैं। वनखण्डी मन्दिर पर 'मृत्युंजय शिव मन्दिर' पर विशेष मेला भरता है।

(11) खानकाह शरीफ का उर्स – यह उर्स मुहम्मदिया कमेटी की घोषणा पर मनाया जाता है जो मेला का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। दूरदराज से अकीदतमन्द आकर चादर, फातिहा चढ़ाते तथा नमाज अदा करते हैं। इसमें हिन्दू तथा मुस्लिम अत्यन्त श्रद्धापूर्वक भाग लेते हैं। लगभग एक फर्लांग परिसर में बिजली की सजावट होती है।

(12) ताजिया मेला – यह मेला हजरत मुहम्मद साहब के पौत्र इमाम हुसैन की शहादत की याद में उन्हें सम्मान देने के लिए शोक पर्व के रूप में मनाते हैं। मुहर्रम के अवसर पर ताजिया तथा सवारी निकालने की परम्परा है, बुर्राक भी निकाली जाती है। सैकड़ों ताजियों का जुलूस अलग–अलग स्थानों से निकलने से सम्पूर्ण नगर में जुलूस का वातावरण बन जाता है। रेवड़ी तथा गजक के ठेलों पर खूब खरीदारी होती है। कुछ ताजिये हिन्दुओं द्वारा भी उठाए जाते हैं। इसमें उनका श्रद्धाभाव देखने योग्य होता है। इस मेले को चार चरणों में मनाते हैं – मेहँदी (पाँचवें दिन), अलम (सातवें दिन), कतल की रात (नवें दिन) तथा ताजिया विसर्जन (दसवें दिन)। इसमें अन्तिम चरण में ही मुख्य मेला जुड़ता है।

ykddyk fp=

विभिन्न अवसरों पर महिलाओं द्वारा लोक से जुड़े कलात्मक चित्र बनाए जाते हैं। इन्हें भूमि–भित्ति अलंकरण भी कहते हैं। कलापक्ष की दृष्टि से बुंदेली लोक जीवन समृद्ध हैं। यहाँ शिल्पियों तथा लोक कला अंकित करने वाले अनपढ़ नागरिकों ने न तो कला विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण की और न कला की बारीकियाँ निरूपित करने वाले 'विष्णु धर्मोत्तर पुराण' का अध्ययन किया तथापि उनके आलेखन कलात्मक दृष्टि से बेजोड़ होते हैं। इस लोकांचल में कुँआरी कन्याओं द्वारा सुआटा/नौरता खेल के अंतर्गत बनाये गए भित्ति आलेखन चबूतरों पर बनाये गए चौक, करवाचौथ, हरछठ, सुरौती, देवठान, नागपंचमी, तथा मांय के पट, विवाहों के अवसरों पर द्वार पर बनाए गए अनेक मांगलिक चिह्नों यथा गणेश जी, घटधारिणी महिलाओं, अश्व, गज, हिरण, सूर्य, चन्द्र, स्वस्तिक, कमल और शंख की संरचनाएं लोक कला की दृष्टि से दर्शनीय है। करवा चौथ में सीढ़ी चकई, चकवा, सूर्य, चन्द्र, सुरौती में दीपक तथा देवठान में चौक के साथ पदचिह्न अंकित होते है। इन चिह्नों को 'कला के प्रतीक' कहते हैं।

बुन्देली चित्रों की 'चितेडरी शैली' – बुन्देलखण्ड में एक विशिष्ट चित्र शैली है 'चितेडरी शैली'। इस शैली में मोटी रेखाओं तथा चटख रंगों का प्रयोग होता है, जिससे चित्र विशेष आकर्षक बन जाता है। कई इन चित्रों को बनाने वालों को 'चितेडरी' कहते है। अनेक नगरों में 'चितेडरों की पक्तियाँ हैं' जो कभी राज्याश्रय में विकसित की गई होंगी। झांसी नगर में बड़ा बाजार के निकट चितेडरा मुहल्ला है, जहाँ कभी सैकड़ों चितेडरे परिवार थे। यह लोग गाँव नगर में होने वाले किसी मांगलिक उत्सव, त्यौहार आदि पर –सज्जा

के अनेक चित्र उक्त शैली में स्वेच्छा से बना आते थे। गृहस्वामी उन्हें 'नकद' अथवा कुछ उपहार देकर सम्मानित कर देता था। अभी भी ग्राम्य–याचकों द्वारा निर्मित विशेषकर विवाह पर्व की इस शैली के चित्रांकन मिल जाते हैं।

लोक कला के प्रतीक – इन कलाकृतियों में अंकित प्रतीक भारतीय संस्कृति, प्रतीकशास्त्र तथा चित्रकला के अनुपम उदाहरण हैं। इन्हें बनाने वाले स्वयं नहीं जानते कि इन प्रतीकों के अर्थ क्या हैं ? किन्तु काल के प्रवाह में परम्परा से बनाये जा रहे चित्रों को इन कलाकारों ने अपने वरिष्ठजनों से सीखा है। इनके चित्रांकन इसी पारम्परिकता की विरासत हैं। इनमें अधिकांश आलेखन महिलाओं द्वारा बनाए जाते हैं। शिशु जन्मोपलक्ष्य पर सांतिया गोबर से बनाते हैं तथा उस पर जौ के दाने चिपकाते हैं। करवा चौथ तथा देवठान के आलेखन चावल के घोल तथा गेरू से बनाते हैं।

आइए, इन लोक आलेखनों में चित्रित आकृतियों के प्रतीकार्थ पर विचार करें–

1) गणेश जी – यह विघ्ननाशक तथा पूज्य देवता हैं। इनका चित्रांकन संबंधित आयोजन या पूजा–अवधि में विघ्नों के निवारण के लिए तथा क्षेमपूर्वक आयोजन करने के लिए किया जाता है।

2) स्वस्तिक – स्वस्तिक गणेश जी का लिपीय स्वरूप है। यह गतिशीलता का भी प्रतीक माना गया है। अनेक स्थानों पर स्वस्तिक बनाकर ही गणेश पूजन करते हैं। स्वस्तिक अनेक धर्मों में आस्था का प्रतीक है। इसे अनेक धर्मावलम्बी प्रकारातंर से बनाते हैं। ईसाई धर्म का क्रास भी इसी क्रम में माना जाता है।

3) चक्राकार सांतिया – शिशु जन्म पर चक्राकार सांतिया या स्वस्तिक गोबर से बनाया जाता है। इस पर जौ के दाने चिपकाते हैं। गोबर देशज और पवित्रता तथा जौ धन–धान्य का प्रतीक है। घर में जनन–अशौच, से जो अपावनता आदि की वृद्धि होती है, गोबर उसका निदान है। सांतिया गणेश जी का, जो विघ्न विनाशक भी है, लिपीय स्वरूप है। चक्राकार आलेखन गतिशीलता तथा प्रगति का प्रतीक है। जौ के नुकीले किनारे सांसारिक बाधाओं की चेतावनी है। इस प्रकार शिशु जन्म पर बने यह आलेखन विघ्न–विनाशकता, परिवार की प्रगति, गतिशीलता, साहसिकता, धनधान्य तथा समृद्धि का संदेश वाहक है।

4) कलश – सर्वोच्च सम्मान, समृद्धि, भरेपूरेपन तथा सम्पन्नता का प्रतीक है। कला के क्षेत्र में यह चित्रांकन प्रायः विवाह के अवसर पर दरवाजे के दोनों ओर समृद्धि के रूप में किया जाता है।

5) गज तथा अश्वारोही – गज तथा अश्व भी समृद्धि, ऐश्वर्य एवं शक्ति के प्रतीक हैं। श्री–सूक्त में इनकी गणना श्री के अन्तर्गत की गई है। गजारोही या अश्वारोही व्यक्ति का चित्रांकन शक्ति एवं सामर्थ्यवान पुरुषों के प्रतीक रूप में किया जाता है।

6) कमल और शंख – अत्यन्त अर्थपूर्ण प्रतीक के रूप में चित्रित किए जाते हैं। शंख पवित्रता और ज्ञान का प्रतीक है। कमल सिन्धुज होने के कारण लक्ष्मी का अनुज है। जहाँ वह रहेगा, लक्ष्मी का आगमन होगा, ऐसी मान्यता है। कमल उत्पादक शक्ति, शुचिता, अलिप्तता और शाश्वत शोभा का प्रतीक है।

7) घटधारिणी महिलाएँ – इनका चित्रांकन कला के क्षेत्र में समृद्धिवाहक देवी के रूप में किया जाता है।

8) दीपक – दीप ज्योति शुभ्र–जीवन परहितकारी–भावना, सात्विकता एवं ज्योति–लक्ष्मी का प्रतीक है। मिट्टी का दीपक पावनता, सहजता तथा सामान्यता का बोधक है।

9) सूर्य और चन्द्र – सूर्य और चंद्र का अंकन अनेक लोक आलेखनों में तथा सती स्तम्भों पर किया जाता है। यह दोनों शाश्वतता, चिरंतनता तथा पवित्रता के प्रतीक हैं। सूर्य तेजस्विता, गतिशीलता, जीवंतता, तथा जल का दाता होने के कारण जगपालक तथा आरोग्य का प्रतीक माना जाता है। चंद्रमा शीतलता और अमृत का प्रतीक है।

'अक्ती' के अवसर पर बालकों द्वारा पुतरा पुतरियाँ खेलने की परम्परा है। उसके लिए महिलाएँ कपड़ें की मूर्तियाँ, पुरुषों तथा महिलाओं की बनाती हैं। आज की अधुनातन डॉल की अपेक्षा यह पुतरा पुतरियाँ मौलिक तथा अधिक कलात्मक होते हैं।

मिट्टी शिल्प – कालपी में मिट्टी–शिल्प भी चर्चित रहा है। यहाँ टैराकोटा के खिलौने, साँउनी की रंग–बिरंगी मटकियाँ, बालकों के बचत की गुल्लक, दीवाली पर गणेश–लक्ष्मी की प्रतिमाएँ, दीपक दिबुलियाँ, दीपदान, दीवारी–जोत लिए महिलाओं की कलाकृतियाँ हाथी, घोड़े, गड़िया आदि अति सुन्दर बनती हैं। पुरानी परम्परा के कुम्हार कम ही बचे हैं। जब कुल्हड़, सकोरा की बिक्री ही नगण्य रह गई है तो भला वे कलात्मक वस्तुएँ क्यों बनाएँ? उन्हें कौन खरीदता है ? कितने पारखी हैं ? बची–खुची विनाश की तलवार प्लास्टिक के डिस्पोजेल आइटम्स ने चला दी। कुम्हार चाक पर काम करने से कतरा रहे हैं। इस पर स्थानीय कवि मु. जावेद कुदारी की मार्मिक कविता "कुम्हार का चाक" अत्यन्त प्रासंगिक है। लोक परम्परा में प्रयुक्त सामान अपने किसानों को बेचते नहीं थे, उन्हें त्योहारों पर पकवान के रूप में 'पावन' मिलता था। अब वह परम्परा समाप्त होकर व्यापार बन गया है।

काष्ठ शिल्प – काष्ठ शिल्प में घरों में नक्काशीदार दरवाजे, चौखटें, कृषि उपकरण, बैलगाड़ियाँ, मूसल, मण्डप, पूजा की चौकी, दीपदान, भगवान का सिंहासन, इत्र तथा जेवर रखने की पेटियां, कलमदान उल्लेखनीय हैं। इनका निर्माण प्रायः बढ़ईगीरी करने वाले शिल्पी करते है। कुछ वस्तुओं को अत्यन्त कलात्मकता के साथ बनाया जाता है। लाख के चपेटा, खिलौने तथा चूड़ियाँ

भी कलात्मक बनाई जाती है।

वस्त्र शिल्प (वेशभूषा) – बुन्देली वेशभूषा में महिलाओं में बाँड़ पहनने का प्रचलन रहा है। यह विशेष प्रकार का घाघरा होता है। समृद्ध परिवारों में इस पर चाँदी या सोने की जरी की कढ़ाई मिलती है। कुर्मी बाहुल्य क्षेत्रों में अभी भी बॉड़ चोली, चुनरियाँ, लम्बी, आस्तीन बाले ब्लाउज पहनने की परम्परा है। यह नक्काशीदार भी होते हैं। श्रमिक महिलाएँ दो कांछ वाली धोती पहनती हैं। अधिकांश परिवारों में घर में, रँगरेज से रँगवाई गई धोती पहनने का रिवाज है। यह प्रायः गाढ़े रंग में रंगी जाती है। पुरुष साफा, पगड़ी अंगोछा, बंडी, मिर्जई, फतुई, कमीज, कुर्ता, धोती आदि पहनते हैं। जाड़ों में टोपा लगाने की परम्परा है। महिलाओं के लोक परिधान प्रायः इस ढंग से पहने जाते हैं कि उनके अधिकांश आभूषण दिखाई देते रहें। कुँवारी लड़कियाँ कंदेला डालती हैं। विवाहिताएँ आँचर डालती हैं। यह सभी वेशभूषा स्थानीय दर्जी बनाते हैं। रँगरेज रँगाई करते हैं।

आभूषण – इस अँचल में आभूषण प्रेम महिलाओं में अधिक है। वजनी आभूषण पहनने का रिवाज है। पैरों में पैजना दो तीन किलो वजन तक के होते हैं। गले की सुतिया डेढ़ दो किलो तक वजन की होती थी। तब महिलाएँ शुद्ध दूध घी खाती थी। उनके शरीर बलिष्ठ तथा पुष्ट थे। आजकल की महिलाएँ कम से कम वजन की चूड़ियाँ अथवा आभूषण पहनना चाहती हैं। यहाँ चाँदी से अपेक्षाकृत सस्ती धातु रूपा के बने आभूषण बहुतायत में मिलते हैं। समृद्ध परिवारों को छोड़कर जिनमें स्वर्णाभूषणों का प्रचलन है, चाँदी (विशेषकर रूपा अथवा गिलट) के आभूषण अभी भी प्रचलित हैं। इन आभूषणों की संख्या सैकड़ों में है। प्रचलन कुछ कम होता जा रहा हैं।

स्थानीय लोकशिल्प – इस क्षेत्र में स्थानीय उपलब्ध कच्चे माल डाब, मूँज, बाँस, खजूर तथा सरकंडा से गृहोपयोगी वस्तुएँ बनाने की परम्परा है। अनेक वस्तुएं उच्च कलात्मक कोटि की होती हैं। 'भादो' माह में मौराई छठ के लिए कन्या पक्ष की ओर से वर पक्ष को जो उपहार भेजे जाते है उनमें बिजना, बटुआ तथा कुड़री भेजने की परम्परा है। इनका निर्माण तथा कलात्मक अलंकरण परिवार की महिलाओं अथवा बालिकाओं द्वारा किया जाता है। खजूर के फलकों से बनाई गई सिकौली, रद्दी कागज (लुगदी) काली मिट्टी और कर्स के मिश्रण से बनाई गई डिकोली, पुराने कपड़ों की बनी रंग–बिरंगी कथरियाँ घर–घर में बनती हैं। कागज तथा कपड़ों की लुगदी से हाथ कागज तथा उसकी अन्य कलात्मक वस्तुएँ बनाते हैं। कागज उत्पादों का निर्यात भी होता है।

अन्य कलात्मक वस्तुएँ – स्थानीय डाब, मूँज, सन।

xksnuk

अनेक आदिवासी तथा ग्रामीण अँचलों की भाँति उत्तर प्रदेशीय बुन्देलखण्ड के कुछ क्षेत्रों, विशेषकर मध्य प्रदेश की सीमा से सटे भाग में अथवा हमीरपुर के निकट गुदना गुदवाने की परम्परा है। इन क्षेत्रों की महिलाएँ अपने सौन्दर्य की वृद्धि के लिए गुदना गुदवाती हैं। यद्यपि गुदना गुदवाना एक कष्टसाध्य उपक्रम है तथापि निम्न कारणों से महिलाएँ गुदने गुदवाती हैं –

1. शारीरिक सौन्दर्य वृद्धि तथा प्रिय को रिझाने के लिए
2. जादू टोने से सुरक्षा
3. प्रजनन शक्ति बढ़ाने के लिए (कुछ जातियों में यह लोकविश्वास है कि गुदना गुदवाने से प्रजनन शक्ति जाग्रत होती है)
4. यह लोक विश्वास है कि मृत्यु के बाद गोदना आभूषण ही शरीर के साथ जाएगा।

गोदना प्रायः विवाह के पूर्व गुदवाए जाते हैं। पुरुष शौकिया कोई चिह्न अंकित करा देते हैं किन्तु महिला में धार्मिक प्रतीक चिह्न (निम्न प्रकार के) गोदना में मिलते हैं –

(अ) प्राकृतिक प्रतीक चिह्न/पशु, पक्षी, फूल आदि

(ब) नाम–स्वयं या प्रिय का नाम, इष्टदेव का नाम

(स) अन्य गुदने धनुष, तीर या अन्य शस्त्रास्त्र

गोदना हाथ से भी गोदे जाते हैं और मशीन (बिजली की कलम) से भी गोदे जाते हैं, किन्तु हाथ से गोदना गुदवाना अधिक कष्टकारक है। ओझा जाति की महिलाएँ, जिन्हें 'गुदनारी' कहते हैं, द्वारा प्रायः गोदना लोकांचल के मेलों में गोदे जाते हैं। इसके लिए तोणिये के पत्ते पर रस या अकौवा का दूध कजली में मिलाकर गोदना लेप बनाते हैं। इस लेप में सुई डुबाकर निरन्तर टोंचने से पक्के रंग की आकृति बनती है तथा वांछित आकृति बना दी जाती है। लगभग 50–60 वर्ष पूर्व तक हर 10–20 गाँव के बीच एक गुदनारी रहा करती थी।

Hkkstu vkj 0;atu

बुन्देलखण्ड का ग्राम्य क्षेत्र अविकसित होने के कारण निर्धन रहा है। महुवा तथा बेर यहाँ की गरीब बहुसंख्यक जनता का प्रिय भोजन है। अवर्षण में भी यह मिल जाते हैं।

महुवा भलौ राम कौ प्यारौ
गैहूँ पिसी दगा सब दै गए
महुँअन देस समारौ।

यहाँ भोले ग्रामीण "सत्तू" प्रेम से खाते हैं। उसमें महँगे मसाले वांछित नहीं होते हैं। नमक या गुड़ डाला और मजा आ गया। वजीर नामक लोककवि ने लिखा है –

सतुआ लगै लुचई सों प्यारों
कलाकंद कौ सारौ।

जो कच्चा भोजन यहाँ विवाहों में परोसा जाता है अथवा प्रमुख त्यौहारों पर भी बनता है उसे "समूंदी" कहते हैं। इसमें दाल (चना की), कढ़ी, भात, बरी, बरा, मगौरा, पापर, कचरिया, गोरस, फुलका (कहीं–कहीं पर माड़े) भी चलते हैं। बूरा शक्कर तथा प्रचुर मात्रा में घी परोसा जाता है। यदि इसके साथ लुचई (पूड़ी) भी परोस दी जावे तो इस भोजन को "मिरजापुरी" कहते हैं।

सम्पन्न घरों में बासी "लुचई" तथा अमियाँ कौ अथानौ (पूड़ी, आम का अचार) प्रिय नाश्ता है। प्रियजनों तथा मेहमानों के लिए 'ताती जलेबी' 'लडुवा' उत्कृष्ट नाश्ता माना जाता है।

त्यौहारों पर अरहर दाल बनाने का निषेध है, उसे हेय दृष्टि से देखा जाता है। पूनो अमावस धुली दालें तथा सिंवई बनाने की परम्परा है। अन्य बुन्देली व्यंजनों में माड़े, फरा, लप्सी, थोपा, पछयावर, 'आँवरिया', हिंगोरा, तेलू, मुसेला, गकरियाँ और भाजी का भुर्रा ऐसे नाम हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। प्रमुख क्षेत्रीय व्यंजनों के नाम निम्न प्रकार हैं –

समूंदी, कालौनी, माड़े, बरा, पछयावर, फुलका, खींचला, मठा की भरवाँ मिर्च, चावल की बड़ी, फरा, लप्सी, थोपा, हिंगोरा, आँवरिया, गकरियाँ, सतुआ, मुंसेला, गदा, सुकपुरी, गुलगुला, महेरी, तेलू, भाजी, भुर्रा

ykdkpkj

किसी भी समाज की आचारिक पृष्ठभूमि तथा उनकी दैनिक गतिविधियों को बारीकी से देखकर तथा समझकर ही उनके लोकजीवन का सही अध्ययन किया जा सकता है। तभी हम देश के अन्य भागों की तुलना में यहाँ के आचार–वैशिष्ट्य को समझ सकेंगे। यहाँ के लोक आचार की पृष्ठभूमि में लोकविचार है जो परम्पराओं से शास्त्रों, पुराणों तथा धर्मग्रन्थों को पढ़कर तथा सुनकर जनमानस द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से निर्मित हुआ है। इस लोक विचार का यही दार्शनिक आधार है।

लोकाचार में लोक विश्वासों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। लोकमानस में परम्परा से पोषित यह लोकविश्वास शकुन, अपशकुन, टोटका–टोना, अथवा मनौतियों के रूप में कदम–कदम पर मिलते हैं। इनका दार्शनिक या वैज्ञानिक पक्ष जानने की जिज्ञासा बिना उन्हें मानना पारम्परिक अनिवार्यता बन गया है। इन्हें पढ़े–लिखे लोग ढकोसला कहते हैं। जबकि आज आवश्यकता है कि इन लोक–विश्वासों का वैज्ञानिक अनुशीलन किया जाए तथा उन्हें शिक्षित जनों में प्रसारित किया जावे। सगुन, असगुन, टोटका तथा अन्य लोकविश्वास सैकड़ों की संख्या में है। प्रमुख लोक विश्वास निम्नवत हैं :–

1) सगुन – निम्न घटनाएँ दिखना सगुन कहलाती हैं।

1. रास्ते में मुर्दा मिलना, 2. पानी का भरा घड़ा मिलना, 3. बछड़े को दूध पिलाती गाय मिलना, 4. वेश्या का प्रभात में दर्शन करना।

2) असगुन – निम्न घटनाएँ दिखना असगुन कहलाती हैं।

1. किसी कार्य के लिए जाते समय छींक होना, 2. रीते (खाली) घड़े मिलना, 3. हिरनी द्वारा रास्ता काटना, 4. बिल्ली द्वारा रास्ता काटना, 5. सर्प द्वारा फुसकार मारना।

ykd jatu

दैनिक जीवन की आपाधापी से थकित तन–मन को चुस्त बनाए रखने के लिए लोकजीवन में लोकरंजन के जो उपक्रम किए जाते हैं, उन्हें तीन कोटियों में रखा जा सकता हैं – (1) लोक मंच (2) लोक क्रीड़ाएँ, तथा (3) लोकबाजियाँ।

लोकमंच के अंतर्गत लोकमंच पर लोककलाकारों द्वारा प्रस्तुत 'लोक नाट्य' तथा 'फड़' आते हैं। इसमें ख्याल लावनी तथा फागों के फड़ों, नौटंकी तथा लोकनाट्यों की चर्चा की जा चुकी है। फड़ों की चर्चा पूर्व में की जा चुकी है।

खेल भावना विकसित करने, खेलों के माध्यम से शारीरिक पुष्ट करने तथा समझदारी बढ़ाने के लिए जो क्रीड़ाएँ यहाँ प्रचलित हैं उन्हें निम्नांकित भागों में विभाजित किया जा सकता है – 1. बालक बालिकाओं के उपासनात्मक खेल, 2. महिलाओं के खेल, 3. बिसात पर खेले जाने वाले नर/नारियों के खेल, 4. मैदानी खेल।

मैदानी खेल – स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है। इस दृष्टि से बुन्देलखण्ड के लोक जीवन में खेलों का विशेष महत्त्व है। मैदानी खेलों में निम्नलिखित खेल उल्लेखनीय हैं – (1) कबड्डी (2) कुश्ती (3) खो–खो (4) गुल्लीडंडा (5) डंडामार सलोर (6) मगरताल (7) छुवा छुवौअल (8) हूल गदा–गद (9) ओद–बोद (10) अत्ती–पत्ती (11) कंचा

लोकबाजियाँ – स्वयं खेलने के बजाय सामने हो रहे खेल को देखकर आनंदित होना यह भी मनोरंजन का साधन है। जिस वस्तु के खेल को देखकर व्यक्ति आनंदित होता उसे उसकी बाजी का नाम दिया जाता है, जैसे तीतर के खेल के लिए तीतरबाजी, बटेर के खेल के लिए बटेरबाजी, पतंग के लिए पतंगबाजी, अग्नि खिलौनों के लिए आतिशबाजी। इन सबमें बुन्देलखण्ड में सर्वाधिक प्रचलित तीतरबाजी है।

आतिशबाजी – यहाँ के लोक जीवन में आतिशबाजी का भी काफी प्रचलन है। इसे लोक शब्दावली में बारूद कहते हैं। उल्लास पर्वों विशेषकर–शिशु जन्म, विवाह के अवसर पर, दशहरा, दीपावली या देवठान पर हर्षाभिव्यक्ति के लिए इसका आनन्द लेते हैं। आतिश का शब्दार्थ है अग्निबाण या अग्नि खिलौने। आतिशबाजी का अर्थ हुआ अग्नि खिलौने से खेलना। यहाँ आतिशबाजी बनाने का पारंपरिक शिल्प अभी जीवित है। (लोकसंस्कृति के विस्तृत अध्ययन हेतु पढ़ें – 'बुन्देलखण्ड का लोकजीवन')

⌘

साहित्यिक कालपी

कालपी मनीषियों की भूमि है। यहाँ जन्मे अथवा यहाँ बाहर से आकर रहे अथवा यहाँ के मनीषियों के चिन्तन से प्रभावित होकर आते–जाते रहे – इन सभी प्रकार के चिंतकों, विचारकों तथा कृतिकारों ने कालपी की भूमि को साहित्य, संस्कृति, धर्म और आध्यात्मिक चिन्तन का केन्द्र बना दिया। इनमें अनेक ऐसे व्यक्ति हुए जिन्होंने अपनी मनीषा से चिन्तन की वह उच्च धारा प्रवाहित की जिसमें मनुष्य जाति ने जग–तारने का मार्ग पाया। वैतरणी पार करने के सूत्र रचकर उन्होंने ज्ञान की परम्परा को नए आयाम दिए, लोगों ने उन्हें गुरू अथवा प्रेरक मानकर अपने जीवन की धन्यता अनुभव की तथा धर्म और संस्कृति के प्रसार के योगदान से मानवता का मार्ग बताया। वह हिन्दू थे या मुसलमान, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता है। उनका धर्म मानवतावादी था – इंसानियत के सिद्धान्तों पर साधारण मनुष्य को भी सच्चा इंसान बनाने का था। उनके विचार संस्कृत, उर्दू, फारसी, हिन्दी आदि भाषाओं के साहित्य की अनमोल निधि है।

गजेटियरकार ने जनपद की साहित्यिक–सांस्कृतिक परम्परा को समझने की कोशिश ही नहीं की। यह भी सम्भव है कि पुराने गजेटियर बनाने की नीति में स्थानीय कला, साहित्य–संस्कृति तथा लोक–संस्कृति को महत्त्व देना या सम्मिलित न करना बेहतर समझा गया हो। जिला गजेटियर (1921) में लिखा है कि जिले का अपना कोई साहित्य नहीं रहा, केवल दो कवि हुए। प्रथम वंशगोपाल बंदीजन तथा दूसरे, महेशदास दुबे जो बीरबल नाम से प्रसिद्ध हुए तथा अकबर के दरबार में रहते थे। जबकि जिले अथवा कालपी में संस्कृत–साहित्य, उर्दू साहित्य तथा हिन्दी साहित्य की सशक्त परम्परा रही है। इस क्षेत्र ने कई ऐसे कवि दिए जो राष्ट्रीय महत्त्व के हैं। कदौरा उर्दू साहित्य तथा मुशायरों का बड़ा केन्द्र रहा है। कालपी भी 'रसिकेन्द्र' जी के कारण उनके कालखण्ड में वीर काव्य–रस में राष्ट्रीय कवि सम्मेलनों के मंचों पर विख्यात रहता था।

संस्कृत साहित्य की परम्परा

यहाँ जन्मे कृष्ण द्वैपायन व्यास ने वेद, पुराण, उपनिषद आदि अनेक ग्रन्थ लिखे। इतने ग्रन्थों का प्रणयन कि शायद कुछ ही लोग उनका पारायण

अपने छोटे से जीवन काल में कर सकें किन्तु उनका विचार–सूत्र दो पंक्तियों में ही 'गागर में सागर' भरने की सूक्ति चरितार्थ करता है –

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय, पापय परपीड़नम्।।

कालपी क्षेत्र की इस पवित्र भूमि पर अनेक ऋषियों के आश्रम थे। इनकी चर्चा अन्यत्र की जा चुकी है। उनके द्वारा रचित ग्रंथ संस्कृत साहित्य की अनमोल धरोहर हैं। इन्होंने वैदिक साहित्य के कल्प–सूत्रों की व्याख्याएँ कीं, भारतीय जीवनशैली की मार्गदर्शक संहिताएँ लिखीं। इनमें अग्रगण्य नाम 'कल्प' नामक ऋषि का आता है जिन्हें स्थानीय जन 'कालप देव' या 'कालप बाबा' के नाम से जानते हैं।

पौराणिक कोश के अनुसार 'कल्प' काल का एक विभाग है जिसे ब्रह्मा का एक दिन कहते हैं। एक कल्प में 14 मन्वंतर होते हैं। वेदों की प्रत्येक शाखा वेदांगों के लिए अलग–अलग ऋषियों के नाम बताए गए हैं।' कल्प ऋषि इन्हीं में एक रहे होंगे। उन्होंने श्रौत–सूत्र, धर्म–सूत्र और गृह्य–सूत्र – इन तीनों को मिलाकर 'कल्प सूत्र' बनाया। इन सूत्रों की पूर्ण व्याख्या लोकहर्षण ऋषि ने की। कुछ कल्पसूत्रों की व्याख्या ऋषि पाराशर जी ने भी की। 'पराशर–कल्प' उनकी चर्चित कृति है। पराशर जी ने कृषि व्यवस्था पर भी गम्भीर चिन्तन किया है। इस दृष्टि से उनका ग्रंथ *कृषि पाराशर* उल्लेखनीय है। उन्होंने जीवन–शैली की भारतीय पद्धति निरूपण के लिए *पराशर संहिता* का भी प्रणयन किया था। अन्य ग्रन्थ भी रहे होंगे।

भारतीय ऋषियों की इस आर्ष–चिन्तन की परम्परा का सन्देश पूरे संसार में प्रसारित हुआ। देश–विदेश के अनेक विचारक और यात्री विभिन्न कालखण्डों में आते रहे हैं।

उर्दू साहित्य की परम्परा

सैयद मुहम्मद :

खानकाह शरीफ के संस्थापक सैयद मुहम्मद साहब का सूफी धर्म में इतना प्रकाण्ड–ज्ञान था कि उन्होंने उसकी सभी शाखाओं का ज्ञान प्राप्त करके 'कुतुब–आलम' (जगद्गुरु) की उपाधि प्राप्त की थी। उनका आश्रम यहाँ खानकाह शरीफ के नाम से प्रसिद्ध है, जिसे अनेक शायर तथा श्रद्धालु 'मक्का' के समतुल्य मानते थे। आध्यात्मिक चिंतकों तथा अनेक बड़े सूफी कवियों का, जिन्होंने हिन्दी साहित्य में स्थान बनाया, गुरुद्वारा (गुरु स्थान)

यहाँ रहा है। इनमें मलिक मुहम्मद जायसी तथा 'कुतुबन' ने कालपी को स्वयं अपना गुरु स्थान (गुरु–थानू) लिखा। *अखरावट* में जायसी ने कालपी के शेख बुरहान को अपना गुरु बताया है –

पा पायऊँ गुरु मोहदी दीठा, मिला पंथ सो दरसन दीठा।
नाँव पियार सेख–बुरहानू, नगर कालपी हुत गुरु थानू।
औ तिन्ह दरस गोसाईं पावा, अलह दाद गुरु पंथ लखावा।
अलहदाद गुरु सिद्ध नवेला, सैयद मुहम्मद के वै चेला।

इससे प्रमाणित है कि जायसी का प्रेरणास्रोत कालपी था। उन्होंने यहीं आध्यात्मिक अभ्यास से सीखा होगा तथा यहीं पर प्राप्त ज्ञान–राशि से भक्तिकाल की प्रेम काव्य परम्परा में महत्त्वपूर्ण ग्रंथ *पद्मावत* की रचना की होगी। यह भी सम्भव है कि इस आध्यात्मिक चिंतन को आत्मसात् करके उन्होंने *पद्मावत* के कुछ अंश कालपी में लिखे हों, अपने गुरु को सुनाए हों तथा उनका अनुमोदन प्राप्त किया हो। सुप्रसिद्ध शायर अफजल इलाहाबादी भी कालपी को 'मक्का' और सैयद मुहम्मद को 'पैगम्बर' मानते थे। उनके ही शब्दों में –

कालपी मक्का तू फरजन्द रसूल कुशी
मन गुलामे, जे गुलामान विलाल हब्शी
लुत्फर जान मन खस्ता जरूरत तुरा
जियाँ कि मन जर्रा व बे शुभा तू खुर्शीद वशी।

सैयद अहमद

यह सैयद मुहम्मद के शिष्य तथा उत्तराधिकारी सैयद अहमद भी एक थे। उनका काव्य सूफी परम्परा के सिद्धान्तों का दर्शन–प्रधान काव्य है। सैय्यद अहमद ने कई किताबें लिखी हैं, जिनमें *शराए कायद नक्शी* तथा *गुणयदातुल सूफिया* बड़े उच्च कोटि के ग्रन्थ हैं। वह एक अच्छे कवि थे और उन्होंने हिन्दी, फारसी दोनों में रचना की है। उदाहरण के लिए उनके हिन्दी में दोहे देखिए –

काह करू बैकुण्ठ लै कल्प वृक्ष की छाँह,
अहमद ढाक सुहावनी जो प्रीतम लगे बाँह।
जो बिछड़ूँ तो सर्वसुख मिलितो मंगल काज,
अहमद मुदा प्रेम का सदा नवेला राज।
अहमद गठरी धूल की रही पवन ते फूल,
गाँठ जगत की खुल गई अन्त धूल की धूल।

अहमद जा जग पनघट आए लाख करोड़,
कोई पीते कोई भर चलै, कोई चलै गगरिया फोड़।

x x x

अज हर तरफ बगोश मन आयेद हमी निदा,
बअल्लाह हरन्चि मी नगरी नेस्त जुज खुदा।
दरे तुस्त हर चिमतलबी बफाँ गलत मकुन,
बशनाश खेश रा कि तू शाही नगदा।।

(मेरे कानों में हर तरफ से यह आवाज आ रही है जो कुछ तू देखता है, ईश्वर है, ईश्वर के अतिरिक्त कोई अन्य नहीं। तेरे दरवाजे जो कोई भी जिस उद्देश्य से आए, तू भूल मत कर। तू अपने को पहिचान कि न फकीर है न बादशाह।)

सैयद सुल्तान अहमद

सत्तावनी क्रान्ति के समय इस खानकाह शरीफ के गद्दीधर सैयद सुल्तान अहमद भी अच्छे कवि थे। इनको 'छोटे साहब' कहा करते थे। यह फारसी के अच्छे कवि थे। इनकी कविता में वेदान्त की धारा व्यक्त होती है। उदाहरणार्थ –

तुरा गर निसबते अज आलम बाला शवद पैदा,
मजाके कतरा अज मीनाये मा औला शबद पैदा।
चु एक सायत बवागे रहमते हक सैर फरमाई,
नसीमे खुश शमीम अज जन्नतुलमावा शबद पैदा।
बअहेल ईं जहां बे नुमा जमाले युसुफी "सुल्तान"
कि अज जिना बशर आवाज माहजा शबद पैदा।

(यदि ऊपर के सार से तेरा सम्बन्ध हो जाए तो समझेगा कि तेरा सम्बन्ध कतरे और सुराही के सम्बन्ध से भी अधिक घनिष्ठ है। यदि एक क्षण भगवान की कृपा पात्र हो जाए तो स्वर्ग से भी अधिक सुगन्धित वायु प्राप्त हो।)

अन्य शायर

उर्दू–फारसी के कवियों की यह परम्परा प्राचीन काल से अब तक निर्बाध रूप में चल रही है। नातिया मुशायरों की परम्परा कालपी तथा निकटवर्ती कदौरा रियासत में उत्कर्ष पर रही है। इससे नात–गो शायरों की भी प्रचुरता रही। उर्दू शायरी की अनेक विधाओं गज़ल, शेर, रुबाइयाँ, नज़्म,

कत्आ़त आदि सभी के आला दर्जा शायर हुए। पारसी थियेटर के नाटकों, जिसमें काव्यात्मक संवाद शेरो–शायरी के रूप में होते थे, का भी दौर यहाँ रहा। इसका प्रभाव इस रूप में हुआ कि कालपी ही नहीं जिला जालौन में हिन्दी में भी अनेक अच्छे गज़लकार हुए।

कालपी के उर्दू शायरों में फजल साहब, हाजी शहादत खाँ, मु. शफी जलाली 'मुराद' तथा मुंशी खैरात अली 'बेताब काल्पवी' मशहूर हुए। 'बेताब' का एक गज़ल संग्रह 'दिले बेताव' प्रकाशित तथा चर्चित हुआ। इनमें अलौकिक प्रेम की अच्छी अभिव्यक्ति है। अन्य शायरों में सना, हाजी अब्दुल बासित, मुहम्मद साबिर 'साबिर', अमीर खाँ 'मीर', मुनीर, काल्पवी, कश्फी, कैफी, इशरत, अनवारी, मु. शरीफ 'शरीफ, शमशीर नजर अहमद 'नज़ीर', काजिम हुसैन, सागर अंजुम, डॉ. अब्दुल बहाव 'रहबर' तथा मैनपुरी से आकर यहाँ बस गए रहमान रब्बानी, 'मैनपुरवी' प्रसिद्ध हुए। रहमान साहब की छह पुस्तकें प्रकाशित हैं – काविश, आईना, मनाए यकी, मनाए फिक्र तथा नक्शे हयात। यानी कालपी के शायरों में सबसे अधिक प्रकाशित साहित्य रब्बानी साहब का है।

इस आलेख में स्थानाभाव के कारण, उपर्युक्त शायरों का विस्तृत परिचय तथा उनकी साहित्यिक विशेषताओं का समीक्षात्मक अनुशीलन सम्भव नहीं है। किन्तु यहाँ उनकी शायरी तथा कलामों का रंग–बिरंगा गुलदस्ता प्रस्तुत कर रहे हैं। पाठक स्वयं, अपने–अपने ढंग से उनका आनन्द ले सकते हैं।

गुलदस्ता

आध्यात्मिक/अलौकिक प्रेम

मु. शफी जलाली 'मुराद' :

अदम अदम न रहा फिर वजूद क्या मानी,
पयामे मौत है नींद आई जाती है।

सनाः

ये गुत्थी इश्क़ की है जितनी सुलझाओ सुलझती है,
किसी से जिन्दगी भर में ये सुलझाई नहीं जाती।

हाफिज अब्दुल बासितः

जब वो करता है हर इक आन करम की बारिश,
क्या जरूरी है कि हो उसका करम रात गए।

मुहम्मद साबिरः

साबिर गुरजे करते हैं वह हमसे आजकल,
हम जिनके गम–गुसार रहे हमनशीं रहे।

ग़ज़लकार पुरानी परम्परा

काबिल कदौरवीः

तुमको गम भी दिया नहीं जाता,
यह करम भी किया नहीं जाता।
ए वो गम ही सही खुशी न सही
वे सहारे जिया नहीं जाता।

अमीर खाँ 'मीर':

अपने वजूद से ही मुझे साबिका पड़ा,
गुजरा हूँ जिस तरफ़ मैं तुझे ढूँढ़ता हुआ।

कैफीः

है इतना याद कि देखा है आपको पैहम,
पे हमने आपको देखा कहाँ ख्याल नहीं।
नूर ही नूर नजर आया जमाने भर में,
रुख से हटते ही तेरी जुल्फ के खम रात गए।

इशरतः

इशरत अपना तखल्लुस गज़ल ग़ैर की,
कितनी आसान है शायरी आजकल।
जब मुझसे तेरह पर न गज़ल हो सकी इशरत
कुछ शेर उड़ा लाया मैं दीवाने जिगर से।

रहमान मैनपुरवी (सम्पादक–निगहबान, साप्ताहिक):

आया खिजाँ के बाद बहारों का सिलसिला,
टूटा कभी न वक्त के धारों का सिलसिला।
तेरी नजर में कुव्वते नज्जारा भी तो हो,
नादां कहाँ नहीं है नजारों का सिलसिला।

नजीर अहमद 'नजीर':

दीदा–ए–मुश्ताक की अल्लाह रे महरूमियाँ,
उठ गए घूँघट तो पर्दे पड़ गए तन्वीर के।

काजिम हुसैनः

ये मिल रही है अपने किए की सजा मुझे,
शर्मिन्दा कर रही मेरी हर खता मुझे।

डॉ. नादांः

हर हिज्र के सदमे को यों जब्त किया जाये,
जो आँख में आ जाये आँसू वो पिया जाये।
हो पैकरे हस्ती पर सिक्का तेरी अजमत का,
जीना है तो ए नादां इस तरह जिया जाये।

नातगो–शायर

आज़िज़

भँवर में मेरा सफ़ीना था या शहे बतहा,
करम किया जो किनारे पे लाके छोड़ दिया।

रूमानी

सागर साहब

मैंने जब पूछा कि गम राहत फज़ा कोई नहीं,
इक तिरे गम के सिवा सबने कहा कोई नहीं।

अंजुम

अज खुद तो कुछ नहीं है इसे भी एहतियाज,
अंजुम की रोशनी है किसी माहताब से।
उसकी किस्मत का चमकता ही रहेगा अंजुम,
जो तेरे जिक्र, तेरी याद में जीता होगा।

गिरिजा शंकर शर्मा

तुम्हें देखने को तरसती हैं आँखें,
सरे–तूर जाने को जी चाहता है।
सुना जब से मैंने बहुत दूर हो तुम,
बहुत दूर जाने को जी चाहता है।

त्रिभुवननाथ परवाज

चुभते हैं यहाँ फूल कई–खार से पहले,
दुश्मन नहीं है कोई यहाँ यार से पहले।
चलते रहो 'परवाज' तुम यूं ही रवां–दवां
मंजिल नहीं है काई यहाँ दार से पहले।

अनवारी

उनके रुख से पर्दा उठ जाये तो फिर मालूम हो,
देखें कितने होश में रहते हैं जिन्दाने बहार।

शमशीर

अपने ही जौके नजर ने बख्शी है दिलेरी मुझको,
वर्ना क्या है जिसे कहते हैं गुलिस्ताने बहार।

डॉ. अग्गन साहब (कदौरवी)

ये दीवारों में रौजन हैं कि आँखें,
जिधर जाता हूँ कोई देखता है।

अब्दुल बहाव 'रहवर'

राह तारीक है फिर भी मुझको,
हम सफ़र की जरूरत नहीं है।
हम सफ़र है जो पुख्ता इरादे,
राहबर की जरूरत नहीं है।

शारदा बेलवी

दुनियाँ भर की रामायण से लाभ ही क्या ?
ऐसा पन्ना खोल कि सब कुछ कह जाये।
कुछ लोगों को छोड़ दे कन्धा देने को,
इतना सच ना बोल कि तन्हा रह जाये।

बेलवी साहब ने 'शर्त' तथा 'धड़ल्लेदार' में अपने शायराना अन्दाज़ में बतौर सम्पादक व्यंग्य शैली में अच्छे समाचार तथा फीचर्स लिखे।

हिन्दी साहित्य की परम्परा

हिन्दी साहित्य की परम्परा के अनुशीलन के क्रम में सर्वप्रथम भाषा की चर्चा कर लेना प्रासंगिक है। भाषाई दृष्टि से यह क्षेत्र मध्यदेशीय बोलियों का है, जिसमें 'बुन्देली' लोकभाषा की प्रधानता है। जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने भारतीय भाषा सर्वेक्षण में यहाँ की बुन्देली को निकटवर्ती कनउजी क्षेत्र के कारण कनउजी प्रभावित, लोधी बहुल क्षेत्र के कारण 'लोधियान्ती' माना है। इसकी व्याकरणिक व्याख्या, अनेक भाषाविदों ने की है। इसमें डॉ. कृष्ण लाल हंस (बुन्देली और उसके क्षेत्रीय रूप) तथा डॉ. रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल (बुन्देली का भाषा शास्त्रीय अध्ययन) प्रमुख हैं। स्फुट लेखों में 'कालपी की भाषा' पर डॉ. विशम्भर सहाय द्विवेदी का लेख (कालपी कीर्ति अंक) उल्लेखनीय है।

लोकभाषा–साहित्य की दृष्टि से इस अँचल में अनेक बुन्देली कवि हुए हैं, किन्तु कालपी में कोई ऐसा रससिद्ध बुन्देली कवि प्रकाश में नहीं आया। इसके बजाय लोक साहित्य में यहाँ का 'फाग साहित्य' तथा लावनी साहित्य उल्लेखनीय है जो फड़–साहित्य की विधा के अंतर्गत आता है। इसकी संक्षिप्त चर्चा यहाँ प्रासंगिक है।

कालपी क्षेत्र का फाग साहित्य बुन्देली फाग साहित्य का ही अंग है, इसके अनाम साहित्यकार ही सामने आये हैं, जिन्होंने फागुन माह में 'फाग' के अवसर के अनुरूप काव्य लिखा। इसमें राम–सीता, राधा–कृष्ण की होली

प्रसिद्ध है। 'अवध में होरी खेले रें रघुवीरा' अथवा 'आज बिरज में होरी रे रसिया' की टेर सुनाई देती है। संपूर्ण साहित्य उसी रंग से रसप्लावित है।

'लावनी साहित्य' की दृष्टि से कालपी एक सशक्त केन्द्र रहा है। ख्याल–लावनी के फड़, कुछ दशक पूर्व तक जमते रहे हैं। इसे 'ख्यालबाजी' के नाम से जनता जानती, सुनती तथा सराहती थी। इसके अंतर्गत ख्याल, लावनी, सैरा, सैरे, फाग लेदें, मंजें, झोलना तथा तड़ाका आदि का संगीतबद्ध गायन होता था। प्रमुख वाद्य ढपली होता था। तड़ाका में नक्कारे का भी प्रयोग यदा–कदा होता था। 'ख्याल लावनी' में दो प्रतिद्वंद्वी फड़ आमने–सामने बैठते थे। एक को 'तुर्रा' तथा दूसरे को 'कलगी' कहते थे। कलगी सम्प्रदाय शक्ति का उपासक होता है, तुर्रा 'शिव' का। इसका प्रचार–प्रसार लगभग दो सौ वर्ष पूर्व से पाँच–छह दशक पूर्व तक रहा है। ख्याल का गायन भी लेखन की भाँति शास्त्रीय स्तर का होता है। एक पक्ष जिस ढंग से ख्याल प्रस्तुत करता है, उसी ढंग से जवाब दूसरे पक्ष को देना होता है, अन्यथा वह दल परास्त हो जाता है। श्रोता इतने समझदार होते थे कि उसकी बारीकी समझते थे, वे पराजित दल की ढपली छीनकर भगा देते थे। (विशेष अध्ययन के लिए देखें – 'फड़बाजी तथा ख्यालबाजी' आलेख–पुस्तक 'सांस्कृतिक बुन्देलखण्ड' अथवा 'बुन्देलखण्डी फड़ साहित्य')

कालपी में 'कलगी' अखाड़े की स्थापना का श्रेय गुरु पुत्ती मिश्रा व खलीफा 'आसी' को है। इस परम्परा में लल्लूलाल धवन तथा बाँकेलाल धवन के नाम चर्चित रहे। तुर्रा अखाड़े की स्थापना का श्रेय कागजीपुरा निवासी पं. बालकृष्ण तथा उनके अनुज पं. लालमन जी को है। कालपी नगर में झाँसी रोड के पूर्व की ओर अधिकांश जनता तुर्रा समर्थक थी तथा इस मेन रोड के पश्चिम की ओर कलगी समर्थकों का बाहुल्य था। लगभग 6–7 दशक पूर्व तक 'ख्याल के दंगल' होते रहे हैं। तुर्रा अखाड़े के उस्ताद पं. कन्हैया लाल बाजपेयी तथा खलीफा पं. रामसेवक तिवारी रहे। शिष्यों में सर्व श्री पं. मन्नीलाल बाजपेयी, कृपाशंकर बाजपेयी, मोतीलाल (रामगंज), रघुवर दयाल गोयल, विनोद कुमार मेहरोत्रा, गजाधर प्रसाद टेलर दीक्षा प्राप्त शिष्य थे। 'कलगी' की ओर से जगदीश प्रसाद पोरवाल, राममोहन धवन, लखनऊ निवासी श्री कैलाश नाथ कपूर के शिष्य बने। 'तुर्रा' के ख्याल लेखकों में रामसेवक तिवारी 'सेवक' पुत्ती मिश्रा, आसी जी ही प्रमुख थे। गायकी में अनेक शागिर्द सामने आए। यहाँ के 'तुर्रा' व 'कलगी' दोनों सम्प्रदायों के ख्याल लेखक व गायकों ने उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश में अनेक स्थानों पर जाकर ख्यालबाजी का नाम रोशन किया। यहाँ के ख्याल दंगलों में लखनऊ,

फिरोजाबाद, इटावा, एटा, अलीगढ़, गुरसरायं, जालौन के ख्याल गायक आते रहे। फड़ रात–रात भर जमते थे, जनता के लोकरंजन का वह अच्छा माध्यम थे। अब न ख्याल लेखक–वादक रहे न उसके समझने वाले। उनके छंदों के नाम तक अब लोग नहीं जानते हैं।

लावनी ख्याल की विधा की विलुप्ति के पश्चात् इस अँचल में कवि सम्मेलनों तथा मुशायरों ने साहित्यिक अभिरुचि को जीवित बनाए रखा। शिष्ट साहित्य की दृष्टि में यहाँ प्रारम्भिक कवि ब्रजभाषा में कविता करते थे, बाद में युग–परिवर्तन के साथ, राष्ट्रीय आन्दोलन काल में खड़ी बोली का दौर प्रारम्भ हो गया।

यहाँ के कुछ प्रमुख कवियों का विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है –

बीरबल 'ब्रह्म'

हिन्दी साहित्य की परम्परा यहाँ मध्ययुग से ही मिलती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में बीरबल 'ब्रह्म' की चर्चा की है। वह अकबर के नवरत्नों में थे, हिन्दी की सहभाषा ब्रजभाषा के सिद्ध कवि थे। इनकी पाण्डुलिपियाँ भरतपुर अनूप ग्रंथालय बीकानेर तथा काँकनेर के पुस्तकालयों में संरक्षित हैं। इनके लगभग दो सौ स्फुट छन्द मिलते हैं, जिनमें नीति तथा राधाकृष्ण विषयक छन्दों का प्राधान्य है। देखें दो छन्द –

पूत कपूत, कुलच्छनि नार, लराक परासि, लजायन सारौ।
बंधु कुबुद्धि, पुरोहित लंपट, चाकर चोर, अतीथि धुतारौ।
साहब सम, अड़ाक तुरंग, किसान कठोर, दिवान नकारौ।
ब्रह्म भनै, सुन साह अकब्बर, बारहों बांध समुद्र में डारौ।

राधाकृष्ण विषयक एक छंद देखें –

प्रात उठी बिन कंचुक भामिनी, कान्हा सों कर केलि घनी।
कवि 'ब्रह्म' भनैं जिन देखत ही, छवि जो कुछ जाय न सखि बरनी।
कुच आन नखक्षत श्याम दयौ, मुख नाइ निहार लियौ सजनी।
मानहुँ ससि सेखर के सिर तें, निहरे ससि लेन कला अपनी।

रतिभान

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी में संगृहीत प्राचीन पाण्डुलिपियों में हिन्दी साहित्य के इतिहास की विपुल सम्पदा सुरक्षित है। इनमें खोज रिपोर्ट 1929–31 के क्रमांक 295 (ए) तथा (बी) पृष्ठ 552–554 (संस्करण 2011) पर

इटौरा के रतिभान कृत 'जेमिनी पुराण का हिन्दी काव्यानुवाद' का उल्लेख है। इटौरा की इस पाण्डुलिपि के अन्वेषक ने अपनी त्रुटिपूर्ण टिप्पणी में इटौरा (मध्य प्रदेश) लिख दिया। मेरा अनुमान है कि अन्वेषक ने पाण्डुलिपि के परिचयात्मक काव्यांश में 'मध्य सुदेश इटौरा गाँउ' में मध्य–सुदेश को मध्य–प्रदेश लिख दिया, जबकि कवि का तात्पर्य मध्य–देश यानी 'सेन्ट्रल इंडिया' से था। रतिभान कृत 'जेमिनीपुराण पद्यानुवाद' की पाण्डुलिपि का संदर्भित काव्यांश निम्नप्रकार है। इससे प्रमाणित है कि रतिभान, कालपी (उ.प्र.) के ही निवासी थे –

कालप क्षेत्र कालपी वासा, सिद्धिसाध पंडित सुखवासा,
कलिगंगा बेतवा उत बहै, न्हाये जहाँ, पाप नहिं रहे।
मध्य सुदेश इटौरा गाँउ, जहँ सतगुरु रोपन तिहि नाँउ।
प्रगट प्रनाम पंथ है जाकौ, निर्गुण मंत्र जपै जग जाकौ।
परशुराम गुरु पिता हमार, तिनके पुत्र भये पुनि चार।
अपनी बात कहौं परवान, सब कोउ कहै नाँउ रतिभान।

आचार्य श्रीपति

हिन्दी साहित्य के सर्वांग निरूपक आचार्यों में से एक आचार्य श्रीपति कालपी के ही निवासी थे। उनके अंतःसाक्ष्य में मिलता है –

सुकवि कालपी नगर को, द्विजमनि शीपति राइ।
जस सम स्वादजहान कौं, बरनत सुख समुदाइ।

किन्तु उसी कालखण्ड में श्रीपति नाम के कई कवि हुए। उनमें एक कर्णप्रयाग के थे तथा एक अन्य प्रयागपुर (बहराइच) के थे। एक अन्य नाम *काशी के श्रीपति* का मिलता है। उनकी एक पुस्तक *श्रीपति के कवित्त* है। इसमें भक्ति और शृंगार के 60 कवित्त हैं। उक्त हस्तलेख के अनुसार 'श्रीपति सुजान काशी नगर निवासी हैं' के आधार पर उन्हें अन्वेषक ने 'काशी निवासी' होना लिखा है। वस्तुतः यह काशी–निवासी श्रीपति कालपी वाले श्रीपति ही हैं। यही कालपीवासी श्रीपति कालांतर में काशी चले गए थे, जहाँ जाकर वह साहित्य–संसार में जाने गए। श्रीपति की यह स्वीकारोक्ति उनकी ही कृति *काव्य सुधाकर* (संगृहीत–हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, याज्ञिक संग्रह में) में मिलती है –

सुकवि कालपी नगर कौ, श्रीपति सुमति अगार।
अब काशी वासी भयौ, जानत सब संसार।

यह गौड़वंशीय मिश्र थे। इनका जन्म लगभग 1680 ई. (संवत् 1837 वि.) आता है तथा रचनाकाल का उत्कर्ष सन् 1720 (संवत् 1777 वि.) मिलता है, जो कि इनकी प्रौढ़तम कृति *काव्य सरोज* में मिलता है। अभिलेखागार में इस लेखक की कई पाण्डुलिपियों की प्रतिलिपियाँ थीं। इनमें *श्रीपति के कवित्त* की संसार में दुर्लभ प्रति थी। यह काशी नागरी प्रचारिणी सभा से सन् 1970 ई. के आसपास प्रतिलिपि कराई गई थी, जो अब वहाँ भी उपलब्ध नही है। जापान में बैठकर, संसार भर में श्रीपति की पाण्डुलिपियाँ खँगालने के बाद अध्येता डॉ. लक्ष्मीधर मालवीय (ओसाका, जापान) ने श्रीपति – 'ग्रंथावली' का संपादन किया तथा मेरे संग्रह की प्रति की सराहना की। सम्पूर्ण परीक्षण के बाद डॉ. मालवीय जी ने श्रीपति के लिखे दस ग्रन्थ माने हैं – (1) *काव्य सरोज* (2) *काव्य सुधाकर* (3) *अनुप्रास* (4) *संग्रहमाला* (5) *संग्रह कवित्त* (6) *श्रीपति के कवित्त* (7) *पावस कवित्त रत्नाकर* (8) *विद्वन्मोद तरंगिणी* (9) *भानु*, तथा (10) *अन्य*। इनमें *काव्य सरोज* श्रीपति का सर्वाधिक प्रौढ़ ग्रन्थ है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनके बारे में लिखा है कि – *काव्य सरोज* बहुत ही प्रसिद्ध ग्रन्थ है। काव्यांगों का निरूपण जिस स्पष्टता के साथ इन्होंने किया है, इससे उनकी स्वच्छ बुद्धि का परिचय मिलता है। यदि गद्य में व्याख्या की परिपाटी चल गई होती तो वे आचार्यत्व और अधिक पूर्णता के साथ प्रदर्शित कर सकते। दास जी (आचार्य भिखारी दास) तो इनके बहुत ऋणी हैं। उन्होंने इनकी बहुत सी बातें, ज्यों की त्यों, अपने 'काव्य निर्णय' में चुपचाप रख ली हैं। आचार्य श्रीपति का कवित्व समझने के लिए निम्नांकित एक छन्द ही पर्याप्त है। इसमें उन्होंने नारी के नेत्रों की तुलना चौदह रत्नों से की है –

सौतन कों विष[1] से, पयूष[2] से सजीवन कौं,
रसिकन को रंभा[3] औं, रमा[4] से रंकजन हैं।
मोहन को मदन[5] से मतंग[6] से गरुरन को।
चंचल तुरंग[7] (तुरी) से, मान हरवे को मतन[8] हैं।
कामिनि को कामधेनु[9] कल्पलता[10] दीनन को
'श्रीपति' को शंष[11], अरि हू को सरासन[12] हैं।
ससि[13] से सरोजन को, रोगनि को धनन्तर[14] से,
प्यारी तेरे चष हैं कि चौदहों रतन हैं।

उनके साहित्य का सम्यक् अनुशीलन सामयिक आवश्यकता है। वह सचमुच कालपी के कीर्ति–कलश हैं।

मथुरा प्रसाद निगम 'लंकेश'

मिश्र बन्धु विनोद एवं *बुन्देल वैभव* के अनुसार इनका जन्मकाल सं. 1899 तथा रचनाकाल सं. 1925 है। वे अपने को रावण का अवतार कहते थे। उनकी निम्न कृतियाँ मिलती हैं – *रावण दिग्विजय, रावण वृन्दावन यात्रा, रावण शिवस्वरोदय* तथा *दोहावली*। इनमें रावण के शौर्य और विजय अभियानों की चर्चा है।

रामरत्न शर्मा 'रत्नेश'

रामरत्न शर्मा 'रत्नेश' कालपी निवासी पं. गिरधारी लाल गुबरेले के पुत्र थे। जन्म तिथि मार्ग शीर्ष शुक्ल 8 सं. 1918। वह रसिक समाज तथा कवि मण्डल कानपुर के अध्यक्ष रहे। कृतियाँ हैं – *रत्नेश शतक, राधा सुधानिधि का भाष्य, लक्षण–व्यंजना, सनाढौय–वंशावली दिनचर्या, कर्मपद्धति* तथा *नायिका भेद*। इसमें *रत्नेश शतक* प्रौढ़तम कृति है। इसमें भक्ति और श्रृंगार विषयक 101 छंद हैं।

पं. शिवचरन लाल 'सारस्वत'

आर्य–समाज के प्रान्त स्तरीय कार्यकर्ता 'आर्य पुरोहित' के सम्मान से सम्मानित–समाज सुधारक पं. शिवचरन लाल सारस्वत (1867–1936 ई.) की कविताओं में समाज सुधारक दृष्टि है। *सामयिक–गीतावली* तथा *प्रेम प्रभाव* दो पद्यात्मक कृतियाँ हैं। *स्त्री शिक्षा के उपाय, गौ महत्त्व, वैश्य–प्रति, यज्ञोपवीतादर्श* तथा *सुबोध–कोपन्यास* गद्य में है।

द्वारिका प्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र'

द्वारिका प्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र' कालपी (1889–1943 ई.) जनपद के उन कवियों में है, जिन्होंने स्वतंत्रता के आन्दोलन काल में देश के कवि सम्मेलनों में मंचों से जन–जागरण किया था। हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला, गुजराती, उर्दू तथा संस्कृत भाषाओं के ज्ञाता थे। 'साहित्यालंकार' 'राजकवि' और 'कवीन्द्र' की उपाधियों के अतिरिक्त उन्हें भी 'राष्ट्रीय गीत पुरस्कार' का सम्मान मिला। वे काली कवि के शिष्य और राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के बहनोई थे। इनके यहाँ साहित्यिक गोष्ठियाँ आए दिन होती रहती थीं। उनकी तीस पुस्तकों में से 18 प्रकाशित तथा 12 अप्रकाशित हैं। उनकी प्रमुख रचनाएं हैं – *आत्मार्पण हरिजन्म कथा, कीर्ति कुसुम, नारी गौरव गान, सती सांरध्रा अज्ञातवास, न्यूनायिका भेद, पारिजात विजय, बाल विभूति, सतीत्व*

रक्षा, रसिकेन्द्र रंजन, ललित लहरी, महिमामयी और *अवगुंठन*। स्फुट कविताओं में मीरा और शकुन्तला काफी चर्चित रहीं। इनमें *बाल विभूति* हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षा के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित रही।

वे सन् 1938 से 1943 तक कालपी बैंच के आनरेरी मजिस्ट्रेट रहे तथा अखिल भारतीय गहोई वैश्य महासभा के 19वें अध्यक्ष (ग्वालियर अधिवेशन में) चुने गए थे। वह अपने समय के मंच के ओजस्वी राष्ट्रीय कवियों में लोकप्रिय थे।

रसिकेन्द्र जी मुख्यतः संस्कृति के गायक और राष्ट्रीयता के प्रचारक थे। उनके काव्य में राष्ट्रीयता कूट–कूट कर भरी है। बुन्देली–शौर्य उनकी रचनाओं में प्रायः मिलता है –

जलती त्रिलोचन की लोचन की ज्वाल सी या
शत्रु–मद–मोचन बुन्देल–करबाल है।

x x x

वंश छत्रसाल के बहादुर बुन्देल वीरो,
छापक्षिति में है छपी आपकी दुनाली की।

x x x

खिल खिल कर चढ़ जाते बलि बेदी पर
वीर–वंश–वल्लरी के पावन प्रसून हैं।

उनके काव्य में सात्विक वीरवाद की प्रतिष्ठा है, जहाँ 'वासना' भी उपासना बन जाती है। देखें –

भक्ति कर्मयोगी में है, अनुरक्ति मुक्ति में है,
शक्ति की उपासना ही, वासना है वीर की।

x x x

आँख खुल जाती तीसरी सी दृष्टि शंकर की,
दृष्टि में खलों की चकाचौंध लग जाती है।
'रसिकेन्द्र' शक्ति महाशक्ति की समाती आके,
आत्मबल विजय की तोप दग जाती है।
रीति होती जीत प्रीति–नीति पग जाती है।
भीरुता विभावरी का विभव नाश होता,
जब जगती में, वीर–ज्योति जग जाती है।

रसिकेन्द्र जी को आज की फैशनपरस्त आधुनिकाओं से सख्त चिढ़ थी। उन पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने 'न्यू नायिका–भेद' लिखा है। आज की

नारियों की स्वछन्दता पर क्या करारा व्यंग्य है –

नाथ पर नाथ सौ, सनाथ किए प्रान नाथ,
देवर को दे वर उमंग उर दरसी।
लोचन लड़ाई से लड़ाई जात लाड़ली है,
घूँघट की ओट होती नजर नजर सी।।
सास पर शासन, ननद अनुशासन में,
नित्य ही ससुर जी की करती हैं बरसी।
धीरता है हारी, बलिहारी गई वीरता,
बीसवीं सदी की वीर नारी है बबर सी।।

पं. बेनीमाधव तिवारी (आटा)

पं. बेनीमाधव तिवारी (आटा) जिले में स्वतन्त्रता पूर्व कांग्रेस के आधार स्तम्भ थे। इससे उनकी राष्ट्रीय जन जागरण अछूतोद्वार विषयक और अन्य सामयिक रचनायें चर्चित रहीं। उनकी कविताओं में व्यंग्य का अच्छा पुट है। उन्होंने साप्ताहिक 'देहाती' तथा 'हलचल' का सम्पादन भी किया। वह विनोदप्रिय व्यक्तित्व थे।

भगवानदास भट्ट 'भृत्य'

इनका जन्म सं. 1953 वि. में ग्राम–गुरु का इटौरा (कालपी) में हुआ था। वह धार्मिक प्रकृति के विचारक तथा कवि थे। ब्रजभाषा में काव्य रचना करते थे। कृष्ण काव्य परम्परा के कवि थे। उनकी दो प्रकाशित पुस्तकें *कीर्तन लहरी* तथा *श्याम सौन्दर्य* के अतिरिक्त कुछ स्फुट छंद मिलते हैं।

मोहन लाल शाण्डिल्य 'मोहन'

शाण्डिल्य जी का जन्म स्थान कोटरा (उरई के निकट) जन्म वर्ष विक्रमी 1960 है। किन्तु वह संस्कृत शिक्षण के लिए इटौरा (संस्कृत पाठशाला) तथा कालपी (एम.एस.वी. इण्टर कॉलेज) रहे। यहीं जीवन के 41 वर्ष शिक्षा–दान तथा कवि सम्मेलनों के आयोजनों में समर्पित किए। इसलिए उनकी चर्चा कालपी के साहित्यकारों में करना प्रासंगिक है। उन्हें यह श्रेय प्राप्त है कि *दैनिक विश्वमित्र* तथा *दैनिक जागरण* के संचालकगणों ने उनके सान्निध्य में शिक्षा प्राप्त की। उनका निधन 1984 ई. में हुआ।

उनके दो कविता संग्रह *पारिजात* तथा *दिव्यालोक* प्रकाशित हैं जिनमें उनके देश प्रेम, राष्ट्रीय स्वाभिमान, गांधीवादी, विचार–प्रभाव, राष्ट्रभाषा

का प्रेम परिलक्षित होता है। उनकी काव्य–सिद्धि के क्रम में यह बात अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास को बाँह की पीड़ा से मुक्ति 'बजरंग–बाण' के लेखन तथा हनुमान जी की कृपा से मिली थी, उसी प्रकार जीवन के अंतिम चरण में मोहन जी की नेत्र ज्योति चली गई थी किन्तु हनुमान जी की प्रार्थना में उन्होंने चालीस छंद रचकर समर्पित किए तथा नेत्र ज्योति वापिस आ गई थी। यह उनकी काव्य रचना का प्रभाव था अथवा आत्मविश्वास अथवा प्रभु का अनुग्रह, वही जानें।

नए कवियों को तलाशना, तराशना, उनकी कविता में सुधार करना, गोष्ठियों तथा अ.भा. सम्मेलनों में उन्हें अवसर दिलाने में उन्हें आत्म–संतोष मिलता था। उनके पिता पाण्डित्य कर्म करते थे तथा बाबा तुर्रा लावनी के उस्ताद कवि थे। वह भी नए कवियों को बढ़ाते थे, वही संस्कार इन्हें विरासत में मिले थे। वह स्वयं ओजपूर्ण ढंग से काव्य पाठ करते थे। उनकी एक आशावादी ओजपूर्ण कविता अभी भी लोगों के मनोमस्तिष्क में छाई हुई है:'

अत्याचारों के विरोध में, जिसने अपना शस्त्र उठाया,
एक बार ही नहीं यहाँ, इक्कीस बार रण में जय पाया।
परशुराम वह नहीं, परशु में फिर भी बाकी धार।

रामेश्वर दयाल द्विवेदी 'श्रीवर'

इनका जन्म कालपी के निकट चुर्खी ग्राम में सं. 1961 वि. में हुआ था। वह शाण्डिल्य जी के साथी, शिक्षक तथा आचार्य कोटि के साहित्यकार थे। उनकी काव्य रचनाएँ प्रौढ़ तथा गरिमा मण्डित होती थीं। उन्होंने संस्कृत महाकवि कालिदास कृत *रघुवंश, कुन्दमाला नाटक* तथा वेद की ऋचाओं का हिन्दी काव्यानुवाद किया था। वह खड़ी बोली, ब्रजभाषा में काव्य रचना करते थे। उनके गीत अत्यंत लोकप्रिय हुए। उनकी रचनायें उस कालखण्ड में स्तरीय पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थीं।

भगीरथ सिंह 'तकदीर'

इनका जन्म कालपी तहसील के नूरपुर ग्राम में हुआ था। इन्होंने ब्रज, बुन्देली तथा खड़ी बोली तीनों भाषाओं में काव्य रचना की है। उन्होंने कुछ ग्रन्थों में पौराणिक आख्यानों को काव्य विषय बनाया, यथा – *पुरु, दुर्योधन* और *रति–संयोग*। अन्तिम कृति कामदेव की पत्नी रति पर केन्द्रित दोहा छंद में ब्रजभाषा की कृति है। *युगावर्त* में देशभक्त शहीदों को काव्य का विषय बनाया गया है। 'मिलिबो न भूलियो' ब्रजभाषा का सरस काव्य है।

'अंगलक्षण प्रबोधनी' सामुद्रिक शास्त्र पर आधारित कृति है। दुर्योधन (काव्य) हिन्दी साहित्य सम्मेलन परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में सम्मिलित रहा तथा सम्मेलन से पुरस्कृत कृति है। वह *देवापगा* नामक लघु पत्रिका भी प्रकाशित करते थे। अंतिम दिनों में अपने पुत्र श्री अभिषेक सिंह सेंगर एडवोकेट के साथ उरई निवासी हो गए थे। उनके *रति संयोग* काव्य में रति के वियोग के कुछ दोहे अत्यन्त मार्मिक बन गए:

कहाँ जाऊँ, खोजों कहाँ, कित भेजूँ सन्देश
बिना अंग के हा दई, पिया कौन से देश ?
घन घुमड़े, हुमड़ी विपति, रति असुँवन की कीच।
अँधियारी, कारी व्यथा दई अषाढ़ उलीच।

सच्चिदानन्द मिश्र 'कुसुमाकर'

ग्राम दहगुवाँ (जालौन) में 1924 ई. में जन्मे श्री कुसुमाकर जी की कर्मभूमि कालपी रही। वे एम.एस.वी. इण्टर कॉलेज में हिन्दी के प्रवक्ता रहे तथा शाण्डिल्य जी के सान्निध्य से कवि सम्मेलनों के संयोजन में भी सक्रिय रहे। उन्होंने रीतिकालीन परम्परा और आधुनिक काव्य दोनों ही परम्पराओं में ब्रजभाषा तथा बुन्देली के सवैया, कवित्त आदि छंदों में रचनाएँ की तो गीतिशैली को भी अपनाया। उनके पिता श्री कमलानंद 'कंज' अच्छे कवि थे। चाचा दशाराम मिश्र 'कक्का' तथा बन्धुगण ब्रह्मानन्द मिश्र 'मीत', शिवानन्द मिश्र 'बुन्देला' जी भी कवि थे। इससे साहित्यिक पृष्ठभूमि विरासत में मिली थी। इनकी कोई प्रकाशित पुस्तक देखने को नहीं मिली। यत्र–तत्र स्फुट कविताएँ मिलती हैं। इनकी एक कविता का कुछ अंश:

क्या वीर–भोगिनी वसुधा पर, अब नहीं परशुधर रहा शेष ?
इक्कीस बार पृथ्वी लेकर, रखा था जिसने वीर वेष,
क्या नहीं कपिल का सांख्य योग, क्या दुर्वासा का रुद्र रूप
क्या अर्जुन का गाण्डीव नहीं, क्या नहीं कर्ण का व्रत अनूप।

बजरंग बिश्नोई

बजरंग बिश्नोई (1944) अच्छे कवि हैं। इनके तीन कविता संग्रह प्रकाशित हैं – *विस्थितियाँ, अपने खिलाफ, हरारत में तीसरी नदी*। उनकी एक कविता ज्ञानोदय के श्रेष्ठ संचयन अंक (1969) में छपी थी, वे उस अंक में प्रकाशित कवियों में सबसे युवा कवि थे। इनकी 'कालप्रिया' कविता का एक अंश उल्लेखनीय है –

सारी चीजें सारी बातें जहाँ की तहाँ रहती हैं
आकाश अपनी जगह धरती अपनी जगह
श्यामला यमुना बिना ठिठके बहती ही रहती है
एक सौम्य चुम्बन रचता है
क्षितिजाभास काल और काल प्रिया का
बिना किसी को कोई चोट पहुँचाए कालप्रिया है
यों ही हजारों वर्षों से
यहाँ सपने नहीं उगते, यहाँ आकांक्षाएँ नहीं जन्मती,
भूख को हराकर कालप्रिया उपवासी
पर पुराण कहते हैं उसे उपकाशी

कालपी के अन्य कवियों में श्री श्रीकृष्ण सिन्हा (जन्म 1929 ई.) उनकी पुत्री श्रीमती वन्दना श्रीवास्तव (जन्म 1959 ई.) की फुटकर कविताएँ ही देखने को मिली हैं। उदाहरणार्थ श्री कृष्ण सिन्हा जी की एक कविता 'कालपी' का एक अंश प्रस्तुत है –

महर्षि व्यास की जन्मभूमि, अभिनन्दन तेरा बार –बार।
लक्ष्मीबाई की युद्धभूमि, कालपी तुझे है नमस्कार।।

इसके कण–कण में लिखी हुई है, वीरों की साहसिक कथायें
हर कगार घाटी की माटी में, अंकित गौरव गाथायें

स्वतन्त्रता के लिए जिन्होंने त्याग दिए सब सुख–शृंगार
उन्हीं शहीदों की पावन रज, शीश चढ़ाते हम साभार।

पीला 'बाई घाट' मध्य जो पीली मिट्टी की माटी है
यही कालपी में झाँसी की रानी की हल्दी घाटी है।

वन्दना सिन्हा जी के प्रायः शृंगार गीत ही देखने को मिले हैं। पहले वह 'संयोग' लिखती थीं किन्तु बाद में उनकी धारा बदल गई। एक गीत का अंश प्रस्तुत है–

बेसुध–सी सुबह मधुर मादक ये शाम।
जिन्दगी उन रेशमी नज़रों के नाम।।
सर्द मौसम में किरन आदित्य की
कुछ वही स्मित तुम्हारे अधर की
मन–मगन पर सघन–घन थे साँवले

इन्द्रधनुषी रश्मि तेरी नजर की
नेह की फुहारों में भींग गई शाम।

श्याम सुन्दर 'कोमल' (जन्म 1967) यहाँ के प्रवासी कवि थे। वह बाल–साहित्य के संभावना–सक्षम हस्ताक्षर हैं। उनकी पुस्तक *हम भारत की शान बनेंगे* चर्चित है।

कालपी के गद्यकार

कालपी के गद्यकारों में पाहूलाल खत्री के प्रतिष्ठित परिवार के ही दो साहित्यकारों बाबू कृष्ण बलदेव वर्मा तथा ब्रजमोहन वर्मा के नाम सामने आते हैं। उनका विवरण निम्न प्रकार है –

बाबू कृष्ण बलदेव वर्मा (1871–1931 ई.) : कालपी के खत्री परिवार में पैदा हुए तथा वहाँ पालिका के गैर सरकारी अध्यक्ष रहे। हिन्दी की स्तरीय पत्रिकाओं *नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सरस्वती, सुधा, मर्यादा, हिन्दुस्तानी* आदि में आपके शोधपूर्ण ऐतिहासिक एवं पुरातत्वीय महत्त्व के लेख प्रकाशित होते थे। वे बुन्देलखण्ड के इतिहास और पुरातत्व के अधिकारी विद्वान थे। राष्ट्रीय स्तर के पुरातत्वीय सम्मेलनों में बुन्देलखण्ड से सम्बन्धित शोधपत्र प्रस्तुत कर अंतर्राष्ट्रीय विद्वानों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करने में उनका बड़ा योगदान रहा। लखनऊ से *विद्या विनोद समाचार* नामक हिन्दी पत्र निकाला तथा दो वर्ष तक उसका सम्पादन किया। हिन्दुस्तानी ऐकेडमी की पत्रिका *हिन्दुस्तानी* के सम्पादक मण्डल में रहे। ना.प्र. सभा द्वारा प्रकाशित लालकवि के *छत्र प्रकाश* का सम्पादन किया तथा सभा द्वारा प्रकाशित महाकवि *चंदबरदाई के पृथ्वीराज रासो* के सम्पादन में पाण्ड्या जी को उल्लेखनीय सहयोग किया। वे केशव साहित्य के अधिकारी विद्वान थे तथा हिन्दुस्तानी एकेडमी ने सम्पूर्ण केशव साहित्य के सम्पादन का भार उन पर सौंपा था। पर वे इसी बीच काल कवलित हो गए। मिश्र बन्धु के अनुसार उन्होंने फाह्यान–भाषा, ह्वेनसांग भाषा तथा भर्तृहरि नाटक नामक पुस्तकें लिखीं। उनके लेखों में गद्य का प्रौढ़ व परिष्कृत स्वरूप देखने को मिलता है।

ब्रजमोहन वर्मा (1900–1935 ई.) : श्री ब्रजमोहन वर्मा इस जनपद के श्रेष्ठतम गद्यकार कहे जा सकते हैं। वे अच्छे कवि भी थे। कालपी के खत्री परिवार में जन्मे तथा बाबू कृष्ण बलदेव वर्मा के भतीजे श्री ब्रजमोहन वर्मा तत्कालीन चर्चित हिन्दी पत्रिका *विशाल भारत* के सह सम्पादक थे। पत्रिका का 75 प्रतिशत कार्य वही देखते थे। उनका ज्ञानसागर विशाल था। बोन टी.

वी. से ग्रस्त होने के बाद उन्होंने कलकत्ते के कई पुस्तकालयों के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का पारायण रोग शैया पर ही कर डाला था। उनके निबन्धों का संग्रह साहित्य–सौरभ का सम्पादन पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने करके उसे ज्ञानमण्डल से प्रकाशित कराया। डॉ. चतुष्पाद के नाम से उन्होंने अनेक पत्रिकाओं में व्यंग्य कवितायें भी लिखीं। वैशाखी को ही अर्द्धांगिनी मानने वाले वर्मा जी आजीवन क्वाँरे रहे।

कलकत्ता से प्रकाशित होने वाला *विशाल भारत* (मासिक) बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हिन्दी का प्रमुख राष्ट्रीय पत्र रहा है। पं. बनारसीदास जी चतुर्वेदी जैसा यशस्वी सम्पादक मिलना उसकी ख्याति का रहस्य था किन्तु श्री चतुर्वेदी जी उस पत्र के उन्नयन का मुख्य श्रेय पत्रिका के सहकारी सम्पादक बाबू ब्रजमोहन वर्मा को देते हैं। वे लिखते हैं – 'वर्मा जी ही *विशाल भारत* की आत्मा और प्राण हैं। इसकी सफलता का पचहत्तर प्रतिशत श्रेय उन्हीं को है। विशाल परिवार की सास मैं हूँ – वर्मा जी बहू।' – अर्थ स्पष्ट था कि बहू को सारा श्रम करना पड़ता है, परिवार का सारा बोझ और कार्य वही सँभालती हैं। यही स्थिति वर्मा जी की थी।

अपनी विकृत काया देखकर वे प्रायः कहा करते थे –

एक वे हैं जिन्हें तस्वीर बना आती है।
एक हम हैं कि लिया है अपनी ही सूरत को बिगाड़।

वर्मा जी बड़े हास्यप्रेमी थे। हँसना हँसाना उनकी प्रकृति थी। *विशाल भारत* में आने के पूर्व वे डॉ. चतुष्पाद के छद्मनाम से कविताएँ लिखा करते थे। उनकी इस प्रवृत्ति की प्रेरक थीं यह पंक्तियाँ –

हँस रहे हो तो तुम्हारा साथ देखकर जग हँसेगा।
रो रहे हो तो अकेले बैठकर रोना पड़ेगा।

मस्त मतवाला नामक पत्रिका में 'शायरी मैन्युफैक्चरिंग कं. अनलिमिटेड' नामक स्थायी स्तम्भ के मैनेजिंग डायरेक्टर वर्मा जी ही थे। *विशाल भारत* के 'चाय–चक्रम' नामक व्यंग्य स्तम्भ में भी खरी आलोचना करने का ठेका वर्मा जी ने ही लिया था। हास्य और व्यंग्य पर उनका अधिकार था।

वर्मा जी भाषा के धनी थे। उनका एक–एक शब्द टकसाली था। वे लिखते हैं तो लगता है जैसे शब्द खनखनाकर उसके अपने सही अर्थ को ध्वनित कर रहा है। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी लिखते हैं – वर्मा जी बड़ी जोरदार भाषा लिखते थे। उनका शब्द भण्डार विस्तृत था। इसका एक

कारण यह भी था कि वे उर्दू की गतिविधि से खूब परिचित थे एक बार मैंने कहीं लिखा था – 'वृक्ष की पत्तियों के ऊपर का हिस्सा' – वर्मा ने उसे तुरंत काटकर 'फुनगी' लिख दिया। वर्मा जी ए.जी. गार्डनर शैली के निबन्धकार थे। जिस विषय पर पर भी लिखा, खूब अध्ययन करके ठोस और वजनदार लिखा। उनकी शैली में चित्रात्मकता है। वर्मा जी के व्यक्तित्व तथा उनके लेखों का सम्पादन बनारसीदास चतुर्वेदी जी ने *साहित्य सौरव* पुस्तक में करके उनका साहित्यिक श्राद्ध किया है।

कालपी की पत्रकारिता

हिन्दी भाषी क्षेत्र होने से, यहाँ के पत्रकारों ने हिन्दी में ही लिखा तथा हिन्दी में ही पत्र निकाले। बाहर से प्रकाशित होने वाले जो पत्र–पत्रिकाएँ यहाँ आते हैं तथा पढ़े जाते हैं, उनमें भी बहुलांश हिन्दी के ही हैं। कुछ अंग्रेजी पत्रों के संवाददाता हैं, वह भी अंशकालिक होते हैं, इससे कामचलाऊ सरल अंग्रेजी में समाचार लिखकर कार्य चला लेते हैं। एक तथ्य यह भी उल्लेखनीय है कि कालपी का जिला मुख्यालय उरई में स्थित होने से अधिकांश पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन उरई से होता है।

कालपी से कुछ पत्रों के प्रकाशन अवश्य हुए। स्वतंत्रता की घोषणा के साथ ही कालपी से मन्नीलाल अग्रवाल द्वारा *साप्ताहिक जयहिन्द* (1947) का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इसके सम्पादक मण्डल में बनवारी लाल श्रीवास्तव तथा डॉ. आनन्द थे। यह पत्र समाजवादी विचार के साथ आगे बढ़ा। कालान्तर में यहाँ से साप्ताहिकों में *लोकसेवा* (1953, सम्पादक–चन्द्रभानु विद्यार्थी), *संगठन* (1956, सं. श्री प्रकाश जैतली), *व्यासभूमि कालपी* (1960, सं. ब्रजेन्द्र निगम) प्रकाशित हुए। चुटीली, धारदार तथा लयात्मक व्यंग्य शैली में उरई से प्रकाशित दो साप्ताहिकों *शर्त* तथा *धड़ल्लेदार* के सम्पादक ज्ञानचंद्र शर्मा 'बेलवी' कालपी के निकट उदनपुर में रहकर वहीं इसका संपादन करते थे तथा प्रकाशन के दिन उरई पहुँचते थे। आटा के स्व. मुटल्लम गुरु भी सक्रिय श्रमजीवी पत्रकार रहे हैं।

कालपी से 1964 में चिन्तन प्रधान साहित्यिक पत्रिका 'साधना' (सम्पादक–चंद्रकुमार शुक्ला) का एक प्रकाशन अच्छी शुरुआत थी, किन्तु कुछ अंकों के प्रकाशन के बाद बंद करना पड़ा। कालपी के एम.एस.वी. इण्टर कॉलेज के 'कालपी कीर्ति अंक' नाम से दो अच्छे अंक विद्यालय–पत्रिका के रूप में प्रधानाचार्य चंद्रकुमार शुक्ल के निदेशन में प्रकाशित हुए, वे संग्रहणीय हैं। उनकी प्रतियाँ सप्रे संग्रहालय भोपाल में सुरक्षित हैं। *व्यास भूमि* भी अब

रेंग कर चल पा रहा है। कालपी से प्रकाशित उक्त समाचार पत्रों में निर्भीक, निष्पक्ष तथा रचनात्मक पत्रकारिता की दृष्टि से उल्लेखनीय है। इनमें सामाजिक सरोकारों से जुड़ाव स्पष्ट दिखाई देता है।

कालपी निवासी जिन सज्जनों ने बाहर जाकर हिन्दी पत्रकारिता को समृद्ध किया उनमें *जागरण* संस्थापक जयचंद्र गुप्त, पूर्णचंद्र गुप्त, गुरुदेव गुप्त, जगदीश नारायण रूसिया तथा कर्मयुग उरई संस्थापक रमेश चन्द्र गुप्त आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

कालपी में कवि सम्मेलनों की परम्परा यहाँ साहित्य प्रेमी, सुरुचि संपन्न गल्ला व्यापारी लाल रामस्वरूप ने प्रोत्साहित की। वह अपने वातानुकूलित आवास तथा उसकी सुन्दर वाटिका में प्रतिवर्ष अ.भा. कवि सम्मेलन आयोजन करते थे। कवियों का सत्कार बारात की तरह होता था। आयोजन दो दिनों तक चलता था। रात्रि में कवि सम्मेलन तथा प्रातःकालीन जलपान के बाद कवि–गोष्ठी (स्थानीय कवियों सहित)। फिर शानदार मध्याह्न भोज के बाद भारी लिफाफों के साथ विदाई। यह परम्परा उनके जीवनपर्यन्त लगभग चार दशक चली। उस समय का देश का शायद ही कोई बड़ा मंचीय कवि हो, जिसे यहाँ आने तथा कविता सुनाने का सुअवसर न मिला हो। पूरा कवि सम्मेलन टेप रिकार्ड किया जाता था, वह अभी भी उनके पुत्र श्री दिव्य स्वरूप के संरक्षण में है। वह हिन्दी कवि सम्मेलनों की परम्परा का जीवन्त दस्तावेज है। उस कवि सम्मेलन में देवराज दिनेश, वंशीधर पण्डा, वीरेन्द्र मिश्र, रामावतार त्यागी, गोपाल दास नीरज, मंजुल मयंक, सोम ठाकुर, रमानाथ अवस्थी, काका हाथरसी, निर्भय हाथरसी, श्रीमती माया गोविन्द, स्नेहलता स्नेह, ज्ञानवती सक्सेना सुमित्रा कुमारी सिनहा, मुकुट बिहारी सरोज जैसे स्वनामधन्य कवि–कवयत्रियों की सहभागिता रही थी।

बाद में कालपी में शरद पूर्णिमा की चाँदनी रात में यमुना नदी में नाव पर बैठकर कवि सम्मेलन करने की परम्परा पड़ी। हण्डा तथा गैस लालटैन की रोशनी में नाव पर कवि सम्मेलन होते थे। मध्यरात्रि में किलाघाट से बने विश्राम गृह के बरामदे तथा खुली पीठिका पर खीर–पान करने के बाद दूसरा दौर चलता। इसमें जनपद के कवि ही प्रमुख रूप से आते थे। कुछेक बाहर से भी। जनपद के वरिष्ठ कवि डॉ. रामस्वरूप खरे ने इस पर रोचक काव्यात्मक संस्मरण लिखा था।

यह चिन्ता और चिन्तन का विषय है कि साहित्यिक दृष्टि से जागरूक तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में 'जागरण' जैसे पत्रों के संस्थापकों के

नगर में अब न तो साहित्यिक चेतना है, न कोई समाचार पत्र, न अच्छे कवि और न साहित्यिक आयोजनों की परम्परा शेष बची है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से धरती बंजर हो रही है, लाभकारी व्यापारिक दृष्टि विकसित हो जाने से नई पीढ़ी में इस संस्कृति पोषक क्षेत्र में कार्य करने की इच्छा ही जाग्रत नहीं हो रही है।

⌘

पारम्परिक बैलगाड़ी

दर्शनीय कालपी

कालपी तथा उसके आसपास जालौन जनपद के पंचनदा तक का लगभग सौ किलोमीटर का क्षेत्र दर्शनीय स्थलों से भरा पड़ा है। इसमें दर्शकों के लिए विभिन्न रुचियों के स्थान उपलब्ध हैं। अब 'पर्यटन' शब्द बहुआयामी हो गया है। पर्यटक अपनी विशेष रुचि के अनुरूप स्थल पर जाकर ही कुछ समय सुकून के साथ बिताना चाहता है। लार्ड कॉलरिज की निम्नांकित पंक्तियाँ उसे घूमने–फिरने तथा विश्राम के लिए प्रेरित करती है–

What is this life, if full of care
We have no time to stay and stare

चिन्ताओं से भरा हुआ जीवन भी क्या है ?
रुकने और विचरने का भी समय नहीं है।

पर्यटन के जो विभिन्न आयाम अब सामने आ रहे हैं। उनमें कुछ प्रमुख निम्न प्रकार हैं –

1. ऐतिहासिक, पुरातात्विक एवं सांस्कृतिक स्थलों का पर्यटन
2. धार्मिक तथा आध्यात्मिक स्थलों का पर्यटन
3. प्राकृतिक स्थलों का पर्यटन
4. स्वतन्त्रता से जुड़े स्थलों का पर्यटन
5. अभयारण्य तथा वन विहार
6. नौकायन अथवा जलीय मार्ग पर्यटन
7. संग्रहालय
8. बीहड़ी पर्यटन

एक नई अवधारणा 'ग्रामीण पर्यटन' की सामने आई है। संयुक्त राष्ट्र संघ के यू.एन.डी.पी. (UNDP) के अन्तर्गत ग्रामीण पर्यटन को प्रोत्साहित किया जा रहा है। यानी एक ऐसे स्वाभाविक परिसर का विकास जहाँ शहरों तथा विदेशों के लोग तनाव से मुक्ति तथा गाँव की शान्ति पा सकें। गाँव जैसे झोपड़ीनुमा मकान, गौशालाएँ, बैलगाड़ी में सैर, कुएँ पर पनघट तथा रेहट से बहता पानी उसमें स्नान, देशी व्यंजनों का भोजन। इन सब पर आधारित योजनाएँ बन सकती हैं।

ग्रामीण पर्यटन के विकास से स्थानीय नागरिकों के रोजगार सृजन के नए अवसर मिलेंगे। स्थानीय कला–संस्कृति का विकास होगा। पारम्परिक उत्सवों तथा मेलों का नया स्वरूप सामने आएगा। इससे आर्थिक समृद्धि का द्वार खुलेगा। क्षेत्र में आधारभूत संरचना तथा आवागमन–परिवहन के साधन बढ़ने से सम्पूर्ण क्षेत्र लाभान्वित होगा। कालपी तथा उसके आस–पास का क्षेत्र उक्त सभी प्रकार के पर्यटन स्थलों से समृद्ध हैं, फिर उसमें प्राचीन कनार (पंचनदा क्षेत्र) तथा पंचनदा से इटावा (लायन सफारी) तक मार्ग जोड़ दें तो दिल्ली से आगरा होकर कानपुर–वाराणसी राजमार्ग के पर्यटक भी जुड़ ही जावेंगे। जालौन जनपद के अनेक किले यथा (रामपुरा का किला) (हेरिटेज होटल), गढ़ियाँ, पाताल तोड़ कुएँ जैसे दुर्लभ दृश्य पर्यटकों को देखने को मिल सकेंगे। अब समय की माँग है कि शहरों में बगीचे विकसित करने के दृष्टिकोण से, उससे आगे बढ़कर, 'प्रकृति की गोद में शहर' वाला दृष्टिकोण अपनाया जाए।

कालपी क्षेत्र में परासन नामक एक स्थान है, जो वेदव्यास जी के पिता ऋषि परासर जी का स्थान है कहाँ उनका मन्दिर है तथा पंचमुखी अत्यन्त प्राचीन है। परासन भी एक विशेषता यह है कि यहाँ पितृ पक्ष में मछलियों पितर रूप में प्रकट होती हैं। वह आपसे लिपट जाती हैं।

मान्यता है कि यदि आप किसी मछली को नथ पहना दें तो अगली बार वही नथ पहिने मछली आपके पास आती है। मछलियाँ यहाँ वर्ष में साढ़े ग्यारह माह नहीं देखी जाती हैं, वे पितृपक्ष में ही प्रकट होती हैं। दूर–दराज के लोग यहाँ पितर–श्राद्ध के लिए पितृ पक्ष में आते हैं। इसलिए इसे 'छोटा–गया' की

परासन में महर्षि पराशर जी की प्रतिमा

परासन में स्थित पंचमुखी शिवलिंग

संज्ञा दी जाती है। रामपुर के निकट एक टीले पर भैरव मन्दिर है, इस ऊँचे टीले से चार नदियों के संगम स्थान देखे जा सकते हैं, जो चलकर पंचनदा का निर्माण करते हैं उक्त प्राचीन भैरव मन्दिर पर भी अनेक भग्नमूर्तियों के अवशेष अपने उद्धार की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

भैरव मन्दिर में प्राप्त पुरावशेष भग्न मूर्तियाँ

ऐतिहासिक, पुरातात्विक एवं सांस्कृतिक स्थल

किला (चन्देल दुर्ग के अवशेष) : कालपी के किले की चर्चा पूर्व अध्यायों में की जा चुकी है। दसवीं शताब्दी में चन्देलों द्वारा बनवाए गए इस दुर्ग का स्थापत्य महत्त्वपूर्ण है। यह यमुना के ठीक 120 फुट ऊँची कगार पर स्थित है, जहाँ से यमुना नदी तथा आसपास का विहंगम दृश्य दिखाई पड़ता है। अब इस पर वन विभाग का विश्रामगृह बना है, वह भी जर्जर स्थिति के कारण पर्यटकों के ठहरने के लिए अनुमन्य नहीं है। यह प्रदेश के चुनिन्दा सुरम्य सरकारी विश्रामगृहों में गिना जाता है। इस दुर्ग का कुछ प्राचीर तथा केन्द्रीय कक्ष ही शेष बचा है। यहाँ एक शिलालेख भी लगा है। इस शिलालेख के अनुसार – यह 35 फीट ऊँचा सुन्दर आयताकार भवन जिसके ऊपर विशाल गुम्बद है, चन्देलों के दुर्ग का भग्नावशेष है। यह भवन यमुना के किनारे 120 फीट ऊँची सीधी कगार पर स्थित है। इसकी दीवारें 9 फीट मोटी हैं। मरहठों

के शासनकाल में यह राज्यपाल का कोषागार था। सन् 1857 ईसवी में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के समय इस भवन में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, बक्सर के राजा कुँवर सिंह, बिठूर के नाना साहब और ताँत्या टोपे आदि ने मंत्रणा की और रानी लक्ष्मीबाई की अध्यक्षता में अंग्रेजों की सेनाओं का वीरतापूर्वक सामना किया। इसी कारण इस भवन को सभी भारतीय श्रद्धा व सम्मान की दृष्टि से देखते हैं।

चौरासी गुम्बद : राष्ट्रीय राजमार्ग 25 पर उरई के मध्य कालपी से दो किलोमीटर पूर्व, दक्षिण–पश्चिम में एक विशाल किन्तु भग्न गुम्बद युक्त भवन दिखाई देता है। इसे 'चौरासी गुम्बद' कहते हैं।

चौरासी गुम्बद

इसकी पीठिका में पूर्वी तथा पश्चिमी भुजाओं की पीठिका में नीचे जो पत्थर लगे हैं, उत्कर्णित तथा किसी मन्दिर के अंश प्रतीत होते हैं। दक्षिण दिशा में परकोटे के मध्य गुम्बद का द्वार पत्थर का बना है, जो हिन्दू मन्दिरों की स्थापत्य शैली से मिलता–जुलता है। आधारपीठिका के अलंकृत पत्थरों तथा इस द्वार से यह संकेत मिलता है कि मूल संरचना पत्थर के भवन की थी, बाद में यहाँ चूना कंकड़ से भवन बना, जिसमें कुछ पत्थर पूर्व निर्मित भवन के लगाए गए हैं। केन्द्रीय कक्ष के चारों ओर बरामदानुमा रास्ता मन्दिर के परिक्रमा पथ तथा केन्द्रीय कक्ष किसी शिवालय के गर्भगृह जैसा लगता है।

वरिष्ठ साहित्यकार गोविन्द मिश्र के अनुसार 'जब महमूद लोदी साहब (कालपी का सूबेदार या जागीरदार कुछ ऐसा ही था, लेकिन उसका क्या आज भी दो पैसे के अधिकारियों का ठस्सा देख लीजिए) के मकबरे–चौरासी गुम्बद पहुँचे तो मुझे सुकून हुआ–काल आखिर सबको धर दबोचता है। वह कहीं अपने अंगरक्षक भिश्ती के साथ मारा गया और यहाँ उसी भिश्ती की कब्र की बगल में पड़ा है। इमारत की खासियत यह है कि इस पर छत नहीं

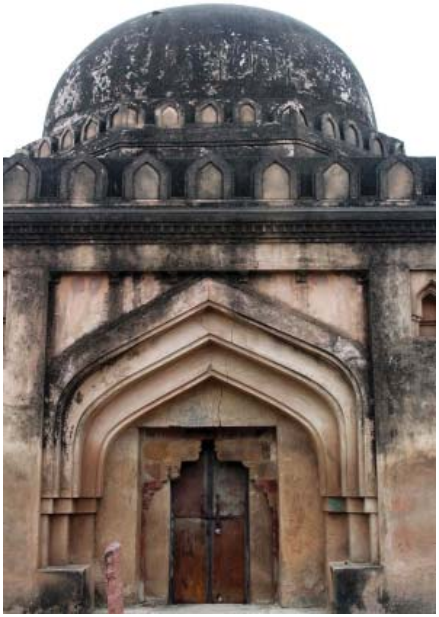

pkjklh xqEcn esa çLrj ls fufeZr }kj
çLrj&LrEHk@ifêdk,¡

↓

चौरासी गुम्बद कालपी की आधार पीठिका में हिंदू स्थापत्य के पत्थर

है। कभी यहाँ चौरासी गुम्बद और दरवाजे थे। यहाँ के कुछ पत्थर बौद्धकालीन शिल्प की छाप लिए हुए हैं, उसके आधार पर कुछ इतिहासकारों का मत है कि कौशाम्बी और जैजाक–भुमुक्ति नामक बौद्ध राज्यों के बीच स्थित कालपी कभी बौद्ध प्रभाव में था। ह्वेनसांग के अनुसार, उस समय यहाँ एक बौद्धमठ था।

हो सकता है यह मकबरा उसी के ऊपर बनाया गया हो। राहुल सांकृत्यायन का भी यही अनुमान था कि उत्तरापथ तथा दक्षिणापथ नामक प्राचीन राजमार्गों के कटिबंध पर स्थित होने के कारण कालपी की स्थिति बौद्ध बिहार के लिए चुने गए स्थानों से मिलती–जुलती है।

पुरातत्व विभाग तथा जिला गजेटियर के अनुसार यह लोदी शाह बादशाह की कब्र है किन्तु किसी अभिलेख में लोदी बादशाह का नामोल्लेख नहीं है। कुछ लोग इसे सिकंदर लोदी की कब्र कहते हैं किन्तु उसकी मृत्यु आगरा के निकट हुई तथा उसका शव दिल्ली ले जाकर दफनाया गया। अतः यह कब्र उसकी होना इतिहास–सम्मत नहीं है। उ.प्र. राज्य के पूर्व पुरातत्व अधिकारी स्व. प्रो. कृष्ण दत्त वाजपेयी इस भवन का उल्लेख करते समय कुछ भिन्न संकेत करते हैं। उनके अनुसार, 'इस इमारत को देखने से मालूम होता है कि इसका निर्माण पहले किसी अन्य प्रयोजन के लिए हुआ था।'

चौरासी गुम्बद का परिचयात्मक लेख

सत–मठिया : यह स्थान कालपी से पूर्व की ओर मदारालालपुर तथा गुलौली ग्राम के बीच है, जहाँ सात मठियाँ बनी हैं। पटरानी लोधा के नाम पर यहाँ लोधाकुण्ड है। यह स्थान पुराणकालीन सूर्य मन्दिर 'कालप्रियनाथ' के ही निकट था। उक्त कुण्ड भी मूलतः सूर्यकुण्ड था, जो अब लोधकुण्ड के नाम से जाना जाता है। यमुना के थपेड़ों से टकराकर कुण्ड की दीवारें बह गई हैं तथा यहाँ 'ह्रद' बन गया है, इसे 'पाताली' बताया जाता है। यहाँ से निकलने वाली नौकाएँ आदि भी इस कुण्ड क्षेत्र को बचाकर निकलती हैं। अब मठियों की संख्या छह रह गई है।

सूर्यमन्दिर टीले पर बनी सतमठियाँ, कालपी

बीरबल का रंगमहल : बादशाह अकबर के मंत्री तथा उनके नवरत्नों में से एक 'बीरबल' कालपी के निवासी थे। बुद्धि चातुर्य तथा हजिरजवाबी में वे देश में प्रसिद्ध रहे। यहाँ उनका सात चौक का महल मिर्जामण्डी मुहल्ले में है। इसका प्रवेशद्वार 'हाथी दरवाजा' कहलाता था। इसके अंदर हाथीखाना तथा अश्वशाला एवं राग–रंग के लिए 'रंग–महल' भी था। इसलिए इस इमारत को 'बीरबल का रंग–महल' के नाम से जाना जाता है। यह पुरातत्व द्वारा संरक्षित स्मारक है। उनका जन्म स्थान तिकवांकुर तत्कालीन कालपी सरकार का एक गाँव था। बाद में अकबर ने उनका एक निवास फतेहपुर सीकरी में जोधाबाई महल के निकट भी बनवाया था। वे 'दीने–इलाही' धर्म के मुख्य विचारक थे।

बीरबल का रंग महल

मुगलकालीन टकसाल : अकबर के शासनकाल में यहाँ सदर बाजार मुहल्ले में एक टकसाल स्थापित की गई थी, जिसमें ताँबे के सिक्के (दाम) ढाले जाते थे। यह भवन अभी भी सुरक्षित हालत में है, जो मुस्लिम शिल्प का

मुगल टकसाल

प्रतिनिधित्व करता है। इस पर उर्दू भाषा में दो गोलों के अंदर कुछ अंकित है। एक पड़ोसी पत्रकार ने बताया कि इस टकसाल भवन की एक विशेषता यह है कि कितना भी पानी बरसात में भर जाए, वह तुरंत कहीं निकल जाता है। उसके निकास–मार्ग का किसी को पता नहीं लग पाया।

टोडरमल की कचैरी : अकबर के नवरत्नों में से एक अन्य राजा टोडरमल खत्री थे, जो उनके राजस्व मंत्री थे। वह शेरशाह के समय से ही इस पद पर चले आ रहे थे। कालपी में उनकी ससुराल एक खत्री परिवार में थी, जहाँ वह घर जमाई बनकर रहे। वह मिर्जामण्डी में जिस भवन में रहते तथा दरबार (जनसम्पर्क–बैठकें) करते थे, उस भवन को 'टोडरमल की कचहरी' कहते हैं। अब इसका काफी भाग टूट गया है। वर्तमान में इस भवन में रामआदर्श खत्री तथा रामऋषि खत्री का आवास है। उनकी बहन श्रीमती सुनीता खत्री वर्तमान में *अक्षरा* (भोपाल) की सम्पादक हैं।

लंका मीनार : भगवान राम के देश भारत में भी उनके घोर शत्रु रावण का स्मारक है – 'लंका मीनार'। यह धार्मिक तथा सामाजिक सहिष्णुता का प्रतीक है। देश की ऊँची मीनारों में से एक लंका मीनार उत्तर प्रदेश राज्य के जालौन जिले के अंतर्गत कालपी नगर में वहाँ के प्रसिद्ध वकील बाबू मथुरा प्रसाद निगम 'लंकेश' ने बीस वर्ष की अवधि (1875–1895) में एक सदी पूर्व कारीगर रहीम बख्श के निर्देशन में बनवाई थी। इसकी ऊँचाई 225 फीट है जबकि कुतुब मीनार दिल्ली की 238 फीट तथा विजय स्तम्भ चित्तौड़गढ़ की ऊँचाई 122 फीट है (देखें – हैण्डबुक ऑफ इण्डिया, प्रकाशन विभाग भारत सरकार पृष्ठ 64 तथा 49)। जिला गजेटियर 1921 के अनुसार यहाँ से 48 मील दूर स्थित कानपुर शहर, खुले मौसम में इस मीनार के ऊपरी भाग से दूरबीन से

साफ दिखाई देता था। इसके निकट इसके निर्माता ने चित्रगुप्त मन्दिर, शिव मन्दिर, शनि मन्दिर, अयोध्यापुरी, जनकपुरी, पुष्पवाटिका, मथुरापुरी तथा पाताल लंका का भी निर्माण कराया था। इन सभी स्थलों पर रामलीला के जुड़े कथा–प्रसंगों पर सुंदर कौड़ी चूना से बनी मूर्तियों ने इसके कलात्मक स्वरूप को बढ़ाया है। यह मूर्तियाँ बुन्देली लोककला का सुन्दर उदाहरण हैं।

लंका मीनार परिसर में अयोध्यापुरी

लंका मीनार मुक्ताकाशी–मंच की परिकल्पना पर बने एक विशाल परिसर में ऊँची पीठिका पर स्थित है जो प्राचीर से घिरी है। इस परिसर को 'लंका' कहते हैं। इसके प्रवेश द्वार पर नाग–नागिन अपने फन फैलाए छाया किए हुए हैं। दाईं ओर विशाल नाग है तथा बाईं ओर नागिन की लम्बाई छियासठ फीट है। प्रवेशद्वार के बाईं ओर चित्रगुप्त, शनिदेव एवं भगवान शिव का मन्दिर है जो दक्षिण भारतीय वास्तुशैली पर बना है। मन्दिर में सत्ताइस नक्षत्रों, बारह अवतारों, चार युगों तथा सभी ग्रहों की संगमरमरी प्रतिमाएँ हैं। यह देश में अपने ढंग का अनोखा मन्दिर है। प्रवेशद्वार की दाईं ओर एक छोर पर लंका मीनार है। मीनार के निकट कुम्भकर्ण की लगभग 60 फीट लम्बी लेटी हुई तथा मेघनाद की बैठी हुई मुद्रा में प्रतिमाएँ हैं। लंका मीनार कौड़िया चूना की सुर्खी से बनवाई गई है। इसे तैयार करने के लिए शंख, सीप, कौड़ी, चूना में गोंद, उड़द की दाल तथा गुड़ मिलाकर भलीभाँति पीसकर चिपकन पैदा की जाती थी। कौड़ी तथा शंख चमक प्रदान करते हैं। इसके ऊपर घोंट करने से चमक और अधिक बढ़ती जाती है।

लंका मीनार में 173 घुमावदार सीढ़ियाँ हैं। सात खण्डों में सोपान–मार्ग से परिक्रमा पूरी करते हुए ऊपर पहुँचा जा सकता है। शिखर पर ब्रह्मा जी की सुन्दर मूर्ति है। 1934 में आये भूकम्प में झटके से शिखर पर बनी पन्द्रह फुट ऊँची ब्रह्मा जी की मूर्ति छत्र सहित लटक गई है। सृष्टि के निर्माणकर्ता ब्रह्मा इतने वर्षों से यहाँ यूँ ही लटके हैं। वास्तुविदों के लिए यह आश्चर्यजनक

लंका में अयोध्यापुरी

है कि बिना लोहा तथा सरिया के बने इस शिखर में इतनी वजनी मूर्ति लटकने का आधार क्या है ? जो वायु के दबाव तथा आँधी के झोंके सहकर भी उसी स्थान पर टंगी है। एक मान्यता के अनुसार मनुष्य की मृत्यु के पश्चात् आत्मा सात लोकों में भटकते हुए ब्रह्मलोक पहुँचती है। इस प्रकार लंका के सात खण्डों के ऊपर ब्रह्मा की मूर्ति एक पौराणिक प्रतीक है। लंकामीनार की बाहरी दीवाल पर चारों ओर लंकाकाण्ड के विभिन्न दृश्य मूर्तियों के माध्यम से उकेरे गए हैं। मीनार में राम नहीं, रावण को केन्द्रीय व्यक्तित्व के रूप में चित्रित किया गया है। लगभग अस्सी फुट ऊँची रावण प्रतिमा विभिन्न प्रकार के अस्त्र–शस्त्रों से सन्नद्ध योद्धा की है। उसकी अपलक दृष्टि सामने बने शिव मन्दिर में अपने आराध्य भगवान शिव को निहार रही प्रतीत होती है। लंका मीनार तथा प्राचीर पर राक्षस–राक्षसियों की अनेक मूर्तियाँ बनी हैं।

अन्य पुरातात्विक स्थल एवं भवन : इसके अतिरिक्त कालपी नगर एवं उसके पास अनेक प्राचीन भवन हैं, जिनकी चर्चा धार्मिक स्थलों के अंतर्गत की गई है। कनार (वर्तमान जगम्मनपुर तक विस्तृत) क्षेत्र में भी अनेक क़िले एवं पुरातात्विक स्थल दर्शनीय हैं। इनमें जगम्मनपुर का किला तथा कुत्तों के शौकीन राजा

रामपुरा का किला है, जो अब 'हैरिटेज होटल' बन गया है। इसमें शेरनुमा माँदें हैं, जिनमें उनके कुत्ते रहते थे। निकट ही कानखेड़ा टीला है, जहाँ प्राचीन किला था तथा पुरातात्विक खुदाई में ई.पू. एक शताब्दी के मृद्‌भाण्ड तथा मनका आदि मिले हैं। यह गंगा घाटी क्षेत्र के अंतर्गत आता है।

धार्मिक पर्यटन स्थल कालपी

कालपी हिन्दू तथा मुस्लिम धर्मों की संस्कृति, सभ्यता एवं साधना का क्षेत्र रहा है। हिन्दू धर्म में इसे तीर्थ रूप में 'कालपी धाम' तथा मुस्लिम धर्म में 'कालपी शरीफ' (पवित्र कालपी) की संज्ञा दी गई है।

हिन्दुओं के धार्मिक स्थल

यहाँ हिन्दुओं के लगभग तीन सौ अच्छे सिद्ध मन्दिर हैं, वहीं औलिया इकरामों के 300 मज़ारात व मस्जिदें हैं। जहाँ देश भर से आने वाले श्रद्धालुओं का ताँता लगा रहता है। इनमें अनेक हिन्दू भी श्रद्धा के साथ मन्नत माँगते तथा चादर चढ़ाते हैं। जैन मन्दिर में बाहर से आने वाले जैन–मुनियों एवं श्रद्धालुओं के यात्रा–पड़ाव होने की सूचना इतिहास के पृष्ठों में दर्ज है। जैन मन्दिर की जानकारी पूर्व पृष्ठों में दी जा चुकी है। ह्वेनसांग के अनुसार यहाँ बौद्ध बिहार रहा है। यह नगर सर्वधर्म विश्वासी है।

हिन्दू धर्म की दृष्टि से कालपी में तीन टीले प्रसिद्ध हैं –

(1) व्यास टीला (2) नृसिंह टीला, और (3) सूर्यपत्तन टीला

व्यास टीला – पूर्व पृष्ठों में, विस्तार में, इस टीले की जानकारी दी जा चुकी है। यह कालपी रेलवे स्टेशन से लगभग तीन किलोमीटर की दूरी पर राजमार्ग (जुलहटी, राजघाट मुहल्ले होकर) से पक्की सड़क से जुड़ा है। 1953 में बने व्यास मन्दिर के पूर्व वहाँ एक छोटा–सा चबूतरा बना था जिसे व्यास–गद्दी कहते हैं। इस टीले पर 1953 में प्रदेश शासन ने 'व्यास स्मारक मन्दिर' बना दिया था जिसका लोकार्पण तत्कालीन राज्यपाल के.एम. मुंशी ने किया था।

वेद व्यास जी की मूर्ति : व्यास मन्दिर, कालपी

इस टीले पर पुराने मन्दिर के निकट काशीमठ संस्थान, उडुपी (कर्नाटक) ने वर्ष 97–98 में एक बाल व्यास मन्दिर का निर्माण कराया है। करोड़ों की लागत से इसका निर्माण दक्षिण भारतीय वास्तुशैली में कर्नाटक के प्रसिद्ध वास्तुकार सी.वी. कामथ (मंगलौर) के निर्देशन में, लगभग ढाई वर्ष में हुआ था। इसका शिलान्यास 12 फरवरी 1997 को काशीमठ संस्थान के धर्माचार्य सुधीन्द्र तीर्थ ने किया था। देश में गुरु परम्परा का यह अपने ढंग का प्रथम मन्दिर है, जो विष्णु चक्र की अष्टदल कमल संकल्पना पर कमल के आधार पर बनाया गया है। इस षटकोणीय व्यास मन्दिर में आठ विशाल गुम्बद हैं। गर्भगृह के बाहर दो परिक्रमा पथ हैं। गर्भगृह में कमल के ऊपर बाल व्यास का विग्रह प्रमुख है। इसमें माता सत्यवती की दाईं जंघा पर बालक–व्यास सुशोभित हैं। उन्हीं के दाईं ओर उनके पिता पराशर जी बैठे हैं। उनके चरणों के पास उनका कमण्डल रखा है। गर्भगृह के भित्तियों पर बनी रथिकाओं में राम–जानकी, लक्ष्मी जी, नरसिंह जी, राधाकृष्ण, श्रीदेवी, भूदेवी, वेंकटेश स्वामी, वामन जी, परशुराम जी, भगवान विष्णु की महाशक्ति लक्ष्मीजी विराजमान हैं। गर्भगृह का द्वार ईषानमुखी है, उसके बाहर भक्तगण खड़े होते हैं। गर्भगृह की बाह्यभित्ति पर भगवान विष्णु के 24 अवतारों को स्थानक मुद्रा में चित्रित किया गया है। बाह्य प्रदक्षिणा पथ में लगभग एक हजार श्रद्धालु एक साथ परिक्रमा कर सकते हैं। प्रदक्षिणा पथ में संस्थान के चार धर्माचार्यों माधवाचार्य, भुवनेन्द्र तीर्थ, *वर*देन्दु तीर्थ तथा सुकृतीन्द्र तीर्थ स्वामी की मूतियाँ प्रतिष्ठित हैं। सामने स्वामी जी का निवास, एक हजार व्यक्तियों की क्षमता का प्रवचन मण्डप, अतिथि भवन, वेद पाठशाला, गौशाला आदि भी है। प्रतिवर्ष गुरु पूर्णिमा (आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा) का उत्सव उत्साहपूर्वक मनाया जाता है।

बाल व्यास मंदिर का अतिथि भवन

नृसिंह टीला – यमुना के किनारे एक टीले को नृसिंह टीला कहते हैं। यह अत्यन्त प्राचीन है तथा *कल्याण* के 'तीर्थांक' विशेषांक में इसका वर्णन मिलता है। टीले पर एक मन्दिर भी है। इसका विवरण पूर्व में दिया जा चुका है।

सूर्य टीला तथा सूर्य पत्तन – इस टीले के बार में, कालप्रियनाथ सूर्य मन्दिर के संदर्भ में विस्तृत चर्चा की जा चुकी है। यहाँ मात्र इतना उल्लेख प्रासंगिक है कि कभी इस टीले पर पुराणकालीन सूर्य मन्दिर था, अब वहाँ इसके अवशेष मात्र भग्न–शिलाखण्डों के रूप में शेष हैं। इस स्थान पर अभी भी अगहन माह के अंतिम रविवार को सूर्य मेला (गजेटियर के अनुसार 'सूरज जात्रा तालाब मेला) भरता है। यहाँ पहुँचने हेतु थल–मार्ग अच्छा नहीं है। यहाँ से विधायक रहे डॉ. अरुण कुमार मेहरोत्रा की विधायक निधि से 80 लाख रुपये की लागत से सड़क बन गई थी, किन्तु उसके मार्ग में आरक्षित वन क्षेत्र पड़ जाने से वन विभाग के विरोधवश कार्य अधूरा पड़ा है। कालपी के तरीबुल्दा से, नौका द्वारा यहाँ सुविधापूर्वक पहुँचा जा सकता है। इस मन्दिर के उस ओर, यमुना पार, कुछ दूरी पर स्वयम्भू मुक्ता देवी (मूसानगर) का सिद्ध मन्दिर क्षेत्र है। यहाँ ग्रामसभा मदारलालपुर है। इसके निकट कभी सूर्यपत्तन बंदरगाह था। यहीं–कहीं मोदी टोला नामक व्यापारिक बस्ती होने की बात बताई जाती है। सम्भव है नौकाघाट के कारण वह 'टोला' रहा हो।

सूर्य प्रतिमा

कालपी के शैव मन्दिर

हिन्दू देवी–देवताओं में भगवान शिव का सर्वोच्च स्थान है। उन्हें देवों का देव, देवाधिपति महादेव की संज्ञा दी जाती है। वैष्णव धर्म के देव श्रीराम भी उन्हें अपना आराध्य मानते थे। उन्हें शीघ्र प्रसन्न होने के नाते आशुतोष, अवढरदानी तथा सरल प्रकृति के कारण भोले बाबा भी कहा जाता

है। समुद्र मंथन के समय सभी अमृत तथा रत्नों के पीछे दौड़े किन्तु हलाहल विष का पान, शिव ने ही किया। अतः वे विषपायी नीलकंठ बने तथा जगत को विष से बचाने के कारण वह शिवत्व (कल्याण) के देवता माने जाते हैं।

शिव परिवार के सदस्य होने के कारण गणेश, अन्नपूर्णा, कार्तिकेय तथा नाग मन्दिरों को भी शैव–मन्दिरों में परिगणित किया जाता है। कालपी में शिव–परिवार के सैकड़ों मन्दिर हैं किन्तु उनमें पातालेश्वर, माणिक्चेश्वर, ढोंड़ेश्वर, कपिलेश्वर शिव मन्दिर, खच्ची लाल का मन्दिर तथा गणेश मन्दिर प्रमुख हैं। कालपी के नौ–शिव मन्दिरों को 'नवेश्वर' कहा जाता है तथा बारह शिव मन्दिरों की श्रावण मास पूजा को द्वादश–ज्योर्तिलिंग का फल देने वाला कहा जाता है। अनेक सिद्ध शिव मन्दिरों की बहुलता के कारण कालपी को उपकाशी भी कहा जाता है। कालपी में शिवरात्रि के अवसर पर प्रमुख मार्गों से शिव–बारात भव्य रूप में निकाली जाती है। इसमें समाज के सभी वर्गों की सहभागिता होती है।

पातालेश्वर मन्दिर : यह मन्दिर यमुना के किलाघाट से ऊपर, वन विभाग विश्राम भवन जाने के मार्ग में स्थित है। प्राचीन ग्रंथों में 'माणिक्येश्वर' के नाम से जो उल्लेख मिलता है, वह भी इसी परिसर में है। यह मन्दिर द्वापर काल में भी विद्यमान था।

'पातालेश्वर' शिव के बारे में पुजारी श्री वीरेन्द्र पाठक बताते हैं कि पाताल से उनका प्राकट्य हुआ था, स्वयम्भू शिवलिंग है तथा प्राचीन नागों द्वारा सेवित हैं। यह स्थान नागराज कर्कोटक का स्थान है तथा पृथ्वी के मध्य में, शेषनाग के फन पर स्थित है। यह हजारों वर्ष प्राचीन 'वासुकि नाग', 'कालिया नाग', 'तक्षक नाग', 'कर्कोटक' तथा 'शेषनाग' का स्थान माना जाता

पातालेश्वर महादेव मन्दिर

है। यहाँ नागपंचमी का विशाल मेला जुड़ता है। इसमें हजारों भक्त आते हैं। यहाँ लगे एक शिलालेख के अनुसार यहाँ एक बार शेषावतार श्री बलराम जी तथा राजा नल भी पधारे थे। इसके प्रांगण में पुरातत्वीय महत्त्व के दो शिवलिंग पेड़ के नीचे रखे हैं, इसमें एक पंचमुखी अत्यंत कलात्मक तथा लाल बलुए पत्थर का है। एकल शिवलिंग भी दो हजार वर्ष पूर्व का लगता है। मन्दिर के पीछे एक सती स्तम्भ तथा नाग–मन्दिर है। कभी इसमें शिलालेख लगा हुआ था, अब गायब है।

कपिलेश्वर मन्दिर : यह मन्दिर कालपी में किलाघाट के निकट उच्च शिखराकार शिव–मन्दिर है। पुरातत्ववेत्ता प्रो. कृष्णदत्त बाजपेयी के अनुसार यह पुरातत्वीय दृष्टि से विशेष महत्त्व का है। इसमें एक बड़ा तथा दो छोटे शिखराकार मन्दिर हैं। प्रधान मन्दिर के चारों ओर बुर्जियाँ बनी हैं, मन्दिर के द्वार पर पत्थर का प्राचीन द्वार स्तम्भ रखा है जिसकी ऊँचाई दो फीट है। इस पर द्वारपालिका बनी है, जिसका केशपाश तथा अंग–विन्यास अत्यन्त कलापूर्ण है। यह प्रैवेयक, स्तन–हार, मेखला आदि आभूषण धारण किए है, द्वार पालिका के ऊपर अन्य लघु प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। मन्दिर के भीतर शिव की मूर्ति है। मन्दिर के पीछे एक पुरुष की भग्नमूर्ति है, जो लाल बलुए पत्थर की बनी है। पुरुष किसी जानवर सम्भवतः शेर से लड़ रहा है। जानवर का पंजा पुरुष के बाएँ कन्धे पर है। मूर्ति बड़े प्रभावोत्पादक ढंग से बनाई गई है और लगभग 600 ई. की कृति है। मन्दिर का शिखर–शिल्प मराठाकालीन है। ऐसा प्रतीत होता है कि मन्दिर अत्यन्त प्राचीन है। सम्भव है कि मूल मन्दिर नष्ट हो जाने के बाद मरहठा काल में इसका पुनर्निर्माण मरहठों द्वारा कराया गया हो।

ढोंड़ेश्वर शिव मन्दिर : यह मन्दिर कालपी के यमुना किनारे, तरीबुल्दा मुहल्ला में बना है। मरहठाकालीन शिल्प के इस मन्दिर का निर्माण ढोड़े नामक एक केवट के एक स्वप्न के आधार पर कराया गया है। इस मुहल्ले में निषादों का बाहुल्य है। वह नौका चलाकर जीवनयापन करते हैं। एक केवट ढोंड़े को शंकर जी का स्वप्न हुआ – 'मैं अमुक स्थान पर, यमुना किनारे दबा हुआ पड़ा हूँ, मेरा उद्धार करो।' उसने प्रातः ही उस निर्दिष्ट स्थल पर खुदाई की। खुदाई करने पर उसे ग्रेनाइट पत्थर का भव्य शिवलिंग प्राप्त हुआ। उसने इसकी चर्चा उसी घाट पर रहने वाले बाबा शंकर गिरि से की। उनकी प्रेरणा से, उसने अपनी समस्त जमा पूँजी से इस मन्दिर का निर्माण कराया। संस्थापक के नाम पर इस मन्दिर का नाम 'ढोंड़ेश्वर शिव मन्दिर' हो गया।

ढोंड़ेश्वर मन्दिर का पंचमुखी शिवलिंग

इस अष्टकोणीय शिखराकार बलुआ पत्थर के गर्भगृह में आठ रथिकाओं पर शिव पार्वती, ब्रह्माजी, सीताराम लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, हनुमान, राधाकृष्ण, गणेश आदि के विग्रह स्थापित हैं। मन्दिर उत्तराभिमुखी है। बाहरी भित्ति पर चतुर्भुजी विष्णु, अष्टभुजी सिंहवाहिनी देवी तथा गणेश की मूर्तियाँ बनी हैं। संगमरमर के नन्दी हैं। गर्भगृह का आँगन ही प्रदक्षिणा पथ है, जिसके बाहर पक्की प्राचीर बनी है। शिखर की ऊँचाई लगभग 75'–80' होगी। इसके वर्तमान प्रबन्धक संत अवधेश महाराज हैं।

श्री रामेश्वरम् मन्दिर : कालपी के रामचबूतरा मुहल्ले में स्थित यह अत्यन्त प्राचीन शिव मन्दिर है। मूल मन्दिर हजारों वर्ष पुराना था। लगभग दो सौ वर्ष पूर्व, इस मुहल्ले के ही लल्ली पुरवार नामक एक शिवभक्त को स्वप्न हुआ कि 'यहाँ प्राचीन शिव मन्दिर है। इसका शिवलिंग रामेश्वर से आया था।' स्वप्न के निर्देशानुसार उन्होंने इस शिव मन्दिर का पुनर्निर्माण कराया था। मन्दिर का नाम रामेश्वर मन्दिर रखा गया। विगत 2013 ई. में इसका जीर्णोद्धार वर्तमान प्रबन्धक गोपाल शरण के प्रयास से हुआ था।

मृत्युंजय – शिव मन्दिर : स्थानीय कालपी धाम वनखण्डी क्षेत्र में विगत चार–पाँच वर्ष पूर्व ही 'मृत्युंजय शिव' के मन्दिर का भव्य निर्माण हुआ है। महंत श्री जमुनादास जी ने बताया कि इस शिव मन्दिर परिसर का नाम 'मृत्युंजय लोक' रखा गया है। मृत्युंजय शिव का, कमल के आसन पर विराजमान अष्टभुजी शिव के रूप में ध्यान करके पूजा की जाती है, वही

विग्रह यहाँ स्थापित किया गया है। वह दो हाथों में अमृत घट लिए हैं, दो हाथ ऊपर किए हुए कलश से अभिषेक करते हैं। एक हाथ में माला है। मन्दिर के ठीक सामने नर्मदेश्वर शिवलिंग स्थापित हैं। द्वार कार्तिकेय तथा नन्दी द्वारा रक्षित है। मृत्युंजय लोक में पार्वती, गणपति तथा कार्तिकेय के सुन्दर विग्रह प्रभावोत्पादक हैं। यहाँ शिवरात्रि पर उत्सव तथा मेला का आयोजन होता है, शिव बारात निकाली जाती है।

गणेश मन्दिर कालपी : यह मन्दिर गणेशगंज मुहल्ले में है। इसी मन्दिर के नाम पर मुहल्ले का नाम 'गणेशगंज' हो गया है। मरहठा काल में इस मन्दिर का जीर्णोद्धार हुआ, इसका शिल्प मरहठाकालीन है। प्राचीन मन्दिर के अवशेषों को महाभारत कालीन माना जाता है। जहाँ एक टीले पर बलुआ पत्थर से बनी लघु आकार की गणेश मूर्ति थी। बाद में मरहठा शासकों ने, अपने आराध्य 'सिद्ध विनायक' के मन्दिर का निर्माण कराया। इस मन्दिर में तीन गणेश विग्रह हैं। एक प्राचीन लघु आकारीय मूर्ति मन्दिर के प्रांगण में, तुलसी चौरा के नीचे स्थित है। लगभग 1 फुट ऊँची तथा 8 इंच चौड़ी है। इस पर तीन फन युक्त नाग की छाया में गणेश जी शान्त मुद्रा में हैं। बताया जाता है कि इसकी स्थापना शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास द्वारा की गई थी। दो विग्रह गर्भगृह में विमान पर प्रतिष्ठित हैं, जिनके ऊपर मन्दिर का शिखर है। दोनों विग्रह सफेद संगमरमर के हैं। इन दो विग्रह में जो ऊँचा विग्रह है, 1749 वि.सं. में पेशवा बाजीराव प्रथम द्वारा उसकी प्रतिष्ठा की गई थी। इसकी शुण्ड दाईं ओर वक्राकार बनाई गई है। कम ऊँचाई का विग्रह 1858 ई. में क्रान्ति हेतु कालपी प्रवास में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई द्वारा स्थापित किया गया था। दोनों विग्रह एक ही सिंहासन पर स्थापित हैं।

सिद्धि गणेश मन्दिर का बाहरी दृश्य

कालपी के शाक्त मन्दिर

कालपी में अनेक मन्दिर देवी के विभिन्न स्वरूपों को समर्पित हैं, इनमें प्राचीनता की दृष्टि से कालपी धाम वनखण्डी मन्दिर, पचपिण्डा (पंच पाण्डव) मन्दिर तथा काली मन्दिर विशेष उल्लेखनीय हैं। अन्य मन्दिरों में आनन्दी देवी माता मन्दिर तथा गोमाता मन्दिर उल्लेखनीय हैं।

वनखण्डी देवी मन्दिर : 'वनखण्डी देवी' एक सामान्य प्रचलित शब्द है। किसी नगर के बाहर निकटवर्ती वन (खण्ड) में जो देवी मन्दिर पाए जाते हैं, उन्हें 'वनखण्डी देवी' कहा जाता है, भले ही कालान्तर में वह नगर क्षेत्र की परिधि में आ जावें। दतिया का विश्व–प्रसिद्ध पीताम्बरा मन्दिर भी इसी कारण 'वनखण्डी माता' मन्दिर कहलाता था। वस्तुतः दुर्गा सप्तशती में 108 देवी नामों में एक 'वन दुर्गा' भी है। यह 'वनखण्डी देवी' या 'वनखण्डी माता' उन्हीं का स्वरूप होती हैं। वह वन एवं निकटवर्ती नागर क्षेत्र के भक्तजनों की रक्षा करती हैं। देवी या शक्ति, सृष्टि के आदिकाल से ही पूज्य हैं।

कालपी नगर के पश्चिम की ओर स्थित आलमपुर ग्राम कभी सघन वन क्षेत्र था। इसमें हिंसक वन्य पशु भी पाए जाते थे। इस वनखण्ड में एक मन्दिर 'वन देवी' का लगभग आठ–दस एकड़ क्षेत्र में विस्तृत था। महन्त जमुनादास जी के अनुसार हजारों वर्ष प्राचीन इस मन्दिर में, महिषासुर मर्दिनी दुर्गा यहाँ स्वयम्भू देवी के रूप में पाषाण रूप में प्रकट हुईं जबकि यह पत्थरों या पर्वतों का क्षेत्र नहीं था। इन्हें वन देवी के रूप में 'वनखण्डी देवी' नाम दिया गया। कालान्तर में श्रद्धालुओं ने उक्त पाषाण–पीठ पर ही रंगों आदि से माँ का स्वरूप चित्रित किया, वही अब तक विद्यमान है।

माँ वनखण्डी देवी शक्ति पीठ, कालपी धाम

निःसंतान दम्पत्ति यहाँ सन्तान प्राप्ति हेतु मनौती मानते हैं तथा वृक्षों की डालों एवं तने पर चुनरी–धागा आदि बाँधते हैं। मनौती पूर्ण होने पर धागा खोलकर 'डला' चढ़ाते हैं।

पंचपिण्डा देवी : कालपी नगर के रामगंज में स्थित यह महाभारतकालीन मन्दिर है। अब इसे भव्य रूप दे दिया गया है। लोकश्रुति है कि पाण्डवों ने अज्ञातवास के समय, यहाँ माँ भगवती की आराधना की थी। पाँच पाण्डवों द्वारा स्थापित इस मन्दिर का नाम लोकबोली में पंचपाण्डव से 'पचपिण्डा' हो गया। कुछ लोग इसे 'पचपेंढा देवी' भी कहते हैं। यहाँ एक चहारदीवारी के भीतर बने गर्भ गृह में मुख्य मूर्ति बलुआ पत्थर से बनी अष्टभुजी काली माँ की लगभग ढाई फीट ऊँची मूर्ति है तथा अन्य मठियों में भी देवी के विभिन्न स्वरूपों के विग्रह स्थापित है। मान्यता है कि यहाँ प्रत्येक पाण्डव ने ग्यारह देवी रूप स्थापित किए। इस प्रकार पाँच पाण्डवों द्वारा बलुआ पत्थर की ही पचपन मूर्तियाँ बनाईं गईं। कालान्तर में यहाँ 55 मढ़ियाँ बन गईं तथा परिसर की प्राचीर भी बन गई। बलुआ पत्थर की माँ अन्नपूर्णा की मूर्ति अत्यन्त कलात्मक तथा सुन्दर है। गर्भ गृह के नीचे बनी एक कोठरी में दो भुजी देवी सिंह के साथ मल्लक्रीड़ारत है। इस मूर्ति का निर्माण काल 12वीं शताब्दी आँका गया है। यहाँ दोनों नवरात्रों में विशेष पूजाएँ होती हैं, मेला भी लगता है।

पचपिण्ड देवी मन्दिर

काली मन्दिर : माँ काली का यह मन्दिर वन विश्राम गृह तथा किलाघाट जाने के पूर्व मुहल्ला हरीगंज स्थित तिराहे पर स्थित है। गर्भगृह में लगभग 3 फुट ऊँची मूर्ति देवी के काली स्वरूप की है। यह मूर्ति स्थानक मुद्रा में है, जिनके दाएँ ओर एक बालक की मूर्ति अंकित है। पाषाण खण्ड पर एक 'शिला–लेख' अंकित है, जो स्पष्ट पठनीय नहीं है। मुहल्लावासी हिन्दू इसे

मरहठाकालीन मन्दिर बताते हैं, उनकी स्थानीय प्रबन्ध समिति है। यह प्राचीन सिद्धमूर्तियों में से एक मानी जाती है।

अनन्दी माता, कालपी : अनन्दी माता अथवा अनन्दी देवी का यह उत्तराभिमुखी मन्दिर रामचबूतरा कालपी में स्थित है। इसी में पूर्व की ओर अनन्दी माता प्रतिष्ठित है। पश्चिम की ओर बने गर्भ गृह में मुख्य मूर्ति लक्ष्मीनारायण की है। यह सिंहासन चार सोपानी है। सर्वोच्च सिंहासन भगवान लक्ष्मीनारायण की अष्टधातु युगल मूर्तियाँ लगभग सवा फीट ऊँची हैं। द्वितीय सोपान पर धनुधारी राम, लक्ष्मण, जानकी के धातु विग्रह हैं। तृतीय सोपान पर भी अष्टधातु से ही बनी राधाकृष्ण की युगल मूर्ति है। चौथी तथा अंतिम सोपान पर हनुमान जी, अन्य पार्षदों सहित विराजे हैं।

कालपी के वैष्णव मन्दिर

यहाँ वैष्णव मन्दिरों की संख्या सौ से अधिक होगी। उनमें प्राचीन तथा लोकश्रद्धा से आप्लावित आधा दर्जन से अधिक मन्दिर हैं। उनमें हर्षकालीन बड़ा स्थान, उदनपुरा का लक्ष्मीनारायण मन्दिर, हनुमान गढ़ी, कालिया हनुमान, बटाऊलाल मन्दिर, पाहूलाल का गोपाल बिहारी मन्दिर तथा बिहारी जी मन्दिर प्रमुख हैं। अतः इन मन्दिरों की संक्षिप्त चर्चा अपेक्षित है।

बड़ा स्थान : प्रभावती क्षेत्र (व्यास क्षेत्र के निकट) में ऊँचे टीले पर बना उत्तराभिमुखी मन्दिर कन्नौज नरेश हर्षकालीन है। लगभग डेढ़ हजार वर्ष प्राचीन इस मन्दिर का पुनर्निर्माण 800 वर्ष पूर्व हुआ। औरंगजेब के शासनकाल में इसकी जमीन का राजस्व माफ रहा है। वर्तमान में इस मन्दिर के गर्भगृह में मुख्यमूर्ति लक्ष्मीनारायण की सफेद संगमरमर की है। यह विग्रह हर्षकालीन मन्दिर की मूल प्रतिमा मानी जाती है। इसके सामने खुले प्रांगण में दक्षिणाभिमुखी

बड़ा स्थान कालपी

हनुमान की मठिया है। इस मन्दिर को नागा–अखाड़े का मन्दिर कहा जाता है।

हनुमान गढ़ी : यह प्रसिद्ध मन्दिर भी प्रभावती के निकट ऊँचे टीले पर पूर्वाभिमुखी है। इसके गर्भगृह में भगवान राधाकृष्ण की अष्टधातु की मूर्ति थी, जो अब चोरी चली गई है। गर्भगृह के द्वार के दाईं ओर रथिका में हनुमान जी की स्थानक मूर्ति है। इसी मूर्ति की सिद्धि के कारण इसे 'हनुमान गढ़ी' नाम दिया गया। इसके निर्माण को लगभग 200 वर्ष हो गए हैं। इसके निर्माता का नाम कुछ लोग भग्गू मदारी तथा कुछ लोग बलदेवा कंजर बताते हैं।

कालिया स्थान : यह स्थान भी प्रभावती मार्ग पर उत्तराभिमुखी है। गर्भगृह में हनुमान जी की चतुर्भुजी मूर्ति है। इसकी ऊँचाई मानवाकार है। कालपी के आदि ऋषि कालप्प देव के आराधना स्थल के रूप में यह स्थान जाना जाता है, कुछ लोग इसी को 'कालप्प टीला' भी कहते हैं, इसी से इसका नाम कालिया स्थान हो गया।

बिहारी जी मन्दिर : इस मन्दिर का निर्माण किलाघाट से ऊपर की ओर बिहारीलाल बलदेव प्रसाद की निजी भूमि पर कराया गया। मूल मन्दिर का निर्माण छोटी मठिया के रूप में लगभग 100 वर्ष पूर्व कराया गया था। वर्तमान में व्यवस्था स्थानीय 'घुमन्तू हसन्तू क्लब' देखता है। इस मन्दिर का निर्माण तथा विकास धीरे–धीरे विगत 100 वर्षों तक सहयोगियों के योगदान का फल है। मुख्य मन्दिर के गर्भगृह में बिहारी जी तथा राधाजी की मूतियाँ प्रतिष्ठित है। तीनों गर्भगृह पूर्वाभिमुखी हैं। निर्माण मरहठा शैली का है। एक अन्य मन्दिर में शिव तथा रथिकाओं में गणेश जी एवं गरुड़ा जी प्रतिष्ठित हैं। विशाल सभा मण्डप तथा वाटिका भी है। इसके नीचे यमुना नदी तक पहुँचने को पक्की सीढ़ियाँ हैं।

श्री बटाऊ लाल मन्दिर कालपी

बटाऊ लाल मन्दिर : यह मन्दिर कालपी नगर के अदलसराय मुहल्ला में स्थित है। इसके निर्माता बटाऊलाल खत्री के नाम पर इस मन्दिर का नामकरण हुआ था। यह मन्दिर लगभग 500 वर्ष प्राचीन है। गर्भगृह में मुख्य मूर्ति शिवलिंग है। इसके चारों ओर खुला हुआ परिक्रमापथ तत्पश्चात् बरामदा बना है। मन्दिर शिखराकार है, इसकी ऊँचाई लगभग 200 फीट है। मन्दिर में चारों कोने में गणेश जी, हनुमान जी, भैरव जी तथा सिंहवाहिनी दुर्गा जी है। इस मन्दिर के हुनमान जी की विशेष ख्याति है। यह मूर्ति लगभग आठ फुट ऊँची है। एक हाथ में गदा के साथ दूसरे हाथ में धनुष है। इसे दुर्लभ विग्रह कहा जाता है।

लक्ष्मीनारायण मन्दिर : मुहल्ला उदनपुरा स्थित यह पूर्वाभिमुखी मन्दिर भी लगभग 800 वर्ष प्राचीन माना जाता है। मन्दिर के गर्भगृह में ऊँची पीठिका पर भगवान विष्णु, लक्ष्मी जी सहित प्रतिष्ठित हैं। विग्रह सफेद संगमरमर का है तथा लगभग 15 फुट ऊँचा है। इसे बैरागियों का मन्दिर बताया जाता है। इसके संत मैकूदास अत्यन्त सिद्ध महात्मा थे।

पाहूलाल मन्दिर : यह मन्दिर कालपी के अदलसराय मुहल्ले में स्थित है। इसका निर्माण आज से लगभग ढाई सौ वर्ष पूर्व लाला पाहूलाल खत्री द्वारा कराया गया था। उनके परिवारीजन बताते हैं कि पाहूलाल जी के पुत्र कन्हाई प्रसाद हवेली के दोमंजिले से गिरने के कारण मूर्च्छित हो गए थे,

पाहूलाल गोपाल मन्दिर

चिकित्सकों ने उनके जीवन की आशा छोड़ दी थी। इस पर पाहूलाल जी ने मनौती माँगी थी कि यदि बेटा ठीक हो जावेगा तो वह गोपाल जी का मन्दिर बनवाएँगे। संयोग से बेटा बच गया तथा उन्होंने भव्य मन्दिर का निर्माण कराया। संवत् 1857 में मन्दिर का शिलान्यास तथा 1901 वि. (1844 ई.) में प्राण प्रतिष्ठा हुई। निर्माण में 54 वर्ष लग गए।

गर्भगृह में मुख्य विग्रह राधाकृष्ण (गोपाल बिहारी) का है किन्तु मन्दिर में कलात्मक दृष्टि से भव्य 101 मूर्तियाँ विभिन्न महँगे पत्थरों से बनवाई गईं। शिखराकार मन्दिर काफी विशाल है, मन्दिर में विस्तृत आँगन है। इसकी दीवालों पर दशावतार, ग्यारह रुद्र अवतार, जगतगुरु ब्रह्मा, पंचमुखी हनुमान, कृष्ण बलराम, चित्रगुप्त, सागर मंथन, देवर्षि नारद, राम तथा कृष्ण के जीवन की अनेक झाँकियों की भव्य मूर्तियाँ हैं। इन्हें देखकर इस मन्दिर को मूर्तियों का खजाना कहा जा सकता है। मन्दिर का द्वार तथा गर्भगृह पूर्वाभिमुखी है।

इस मन्दिर से कुछ ऐतिहासिक आख्यान भी जुड़े हैं। मन्दिर बनने के 12–13 वर्ष बाद सत्तावनी क्रान्ति हुई, कालपी क्रान्तिकारियों का केन्द्र बना। नाना साहब का मंत्रणाकक्ष तथा कोषागार कालपी दुर्ग में था किन्तु आवास के लिए नाना साहब, रानी लक्ष्मी बाई तथा जगदीशपुर के राजा कुँवर सिंह ने इसे आवास बनाया। नाना साहब की आसन्दी आबनूस की चौकी, लकड़ी का षोडश–वर्तिका दीप स्तम्भ (जिसमें 16 बत्तियाँ एक साथ जलती थीं) भी था। लकड़ी का दीपदान अब नष्ट हो गया है।

कालपी के मुस्लिम आस्था केन्द्र

खानक़ाह शरीफ़ : खानक़ाह शरीफ़ कालपी नगर के राजेपुरा मुहल्ले में है। अरबी के खानकाह शब्द का शब्दार्थ आश्रम या मठ होता है, शरीफ का अर्थ 'पवित्र' है। इस प्रकार यह स्थल पवित्र आश्रम है। प्रसिद्ध शायर अफजल इलाहाबादी, अकबर इलाहाबादी एवं नवाब कदौरा यहाँ की शिष्य परम्परा में थे। वे इसे मक्का मानते थे। इसकी स्थापना 1047 हिजरी में हुई। हज़रत इमाम हुसैन के वंशज सैयद मुहम्मद ने सूफी मशलक अरबी (विश्वविद्यालय) की स्थापना करके विश्वस्तरीय शिक्षा केन्द्र 'दारूल उलूम' की स्थापना की थी, जिसके कारण इस स्थान को 'मदरसा' नाम से जाना जाता है। यहाँ उल्मा, आलिम, हाफिज तथा मौलवी तथा अरबी भाषा की उत्कृष्ट शिक्षा दी जाती थी। तब से अब तक 'मदरसा' चालू है। वर्तमान में इसका प्रबन्ध 'दारूल–उलूम–मोहम्मदिया' नामक प्रबन्ध समिति करती है। इसके अन्दर एक विशेष श्रद्धा–स्थल एक वृक्ष है, जिस पर कभी, स्वाभाविक रूप से, ईमान का

खानकाह शरीफ

'पहला कलमा' उभर आया था। इस परिसर में संस्थापक सैयद मुहम्मद साहब के अलावा उनके पुत्र अहमद शाह, उनके पुत्र सैयद शाह जियाउल्ला, उनके पुत्र सैयद सुल्तान अहमद अबू सईद आदि की भी कब्रें हैं। इनमें जियाउल्ला शाह तथा सैयद सुल्तान अहमद शाह के काल में तत्कालीन शासकों नबाब मुहम्मद वंगश आदि ने भी ग्यारह मौजों की मुआफियाँ (राजस्व मुक्त खेती) दी थी। इनकी स्वीकृति मुगल बादशाह मुहम्मद शाह ने भी की थी।

इस परिसर की चहारदीवारी के अंदर एक पक्का कुआँ तथा अनेक सुरंगें हैं, जिनमें एक यमुना नदी तक बताई जाती है। यहाँ एक शानदार मस्जिद है जो दिल्ली के लाल किला की 'मोती मस्जिद' जैसी है। यहाँ अनेक मजारें तथा गुम्बद हैं, जो काफी प्राचीन प्रतीत होते हैं। अपने समय के मशहूर शायर अजमल इलाहाबादी, शाहिद मियाँ फाखरी तथा अकबर इलाहाबादी यहाँ के श्रद्धालुओं (अकीदतमंदों) में थे तथा अन्यन्त श्रद्धा के साथ सालाना उर्सों में उपस्थित रहते हैं। यहाँ पाँचों वक्त की नमाज तथा जुमा की नमाज भी नियमित होती है। यहाँ सैकड़ों लोग 'फातिहा' तथा नमाज पढ़ते हैं। इस परिसर में आते ही मनोमस्तिष्क में एक विशेष शान्ति तथा ऊर्जा प्राप्त होती है। वर्तमान पेश इमाम मुहम्मद रऊफ हैं।

मदार साहब का चिल्ला : यह स्थान वर्तमान व्यास क्षेत्र से सटे मुहल्ला मदारपुर में स्थित है। इसे प्राचीन काल में 'मत्स्यगंधापुर' तथा मंदार वृक्षों (सफेद अकौआ) की अधिकता के कारण 'मन्दारपुर' कहा जाता था। इसे हजरत बदरुद्दीन अली शाह (मदार साहब) का चिल्ला कहते हैं, क्योंकि

चिल्ला शब्द का अभिप्राय ऐसी कब्र से जहाँ लगातार चालीस दिनों तक खुदा की इबादत की गई हो। मदार साहब ने यहाँ ऐसा किया था। यहाँ अनेक पुराने मज़ारात तथा गुम्बद हैं। इनकी नक्काशी दर्शनीय है। यहाँ एक मजार के बाहर पत्थर का एक शेर बना है। कहा जाता है कि इस पर मदार साहब बैठकर शेर की सवारी करते थे। यहाँ रखा एक कलात्मक दीप स्तम्भ (चिरागदान) पुरातत्वीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। यहाँ पर बसन्त पंचमी के दिन विशाल मेला भरता है। हिन्दू तथा मुसलमान सभी उत्साह से शामिल होते हैं तथा मनौती मनाने के लिए तागे बाँधते हैं तथा गुम्बद पर कौड़ियाँ मारते हैं, उस दिन यहाँ कौड़ी–विक्रेताओं की दूकानें भी सजती हैं। इस परिसर में एक मस्जिद, अनेक मज़ारात तथा आवासीय भवन के भी अवशेष हैं।

शेख सिराजुद्दीन शालार सोख्ता का मज़ार : यह सालार सोख्ता के मज़ार के नाम से प्रसिद्ध है जो राजघाट से व्यास क्षेत्र जाते समय बीच में मिलता है। यहाँ एक शानदार गुम्बद है, उसकी छत टूटी हुई है। सालार सोख्ता साहब अपने समय के अरबी के विश्व–विख्यात प्रोफेसर (उस्ताद) थे तथा स्थानीय शासक कादिर शाह के आमंत्रण पर, शाह द्वारा निर्मित अरबी विश्वविद्यालय में सूफी धर्म की शिक्षा (दीनी तालीम) देने आए थे। इनकी आध्यात्मिक सिद्धियों की अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं। उसी समय के मदार साहब एक बार स्थानीय शासक कादिर शाह से नाराज होकर कालपी छोड़कर चले गए थे, तब उन्हें मनाने के लिए कादिर शाह ने सालार सोख्ता

मज़ार शेख सालारसोख्ता

साहब को मध्यस्थता के लिए भेजा तथा गुस्ताखी के लिए माफी माँगी थी। तब कहीं मदार साहब लौटकर कालपी वापिस आए थे।

औलिया अल्लाह शेख अहमद नाग़ोरी का मजार : कालपी के मुहल्ला हैदरपुरी (कालपी के किला घाट से राजघाट जाने वाले मार्ग पर) में एक कालपी का सुन्दरतम कलात्मक विशाल आयताकार गुम्बद बना है। यह दिल्ली तथा आगरा के खूबसूरत गुम्बदों जैसा है। एक सदर दरवाजे के साथ पक्की चहारदीवारी से घिरा हुआ था। इसके अंदर उनके शिष्यों की अनेक मजारात हैं, जिन्हें 'गंजे शहीदा' के नाम से जाना जाता है। उल्लेखनीय है कि नाग़ोरी साहब, हजरत ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती के खलीफा शेख हमीदुद्दीन नाग़ोरी के शिष्य थे। इनकी आध्यात्मिक सिद्धियों की चर्चा होती है।

इनके अलावा कालपी में सुवहान गुण्डा की हवेली तथा मस्जिद, पीर जंजानी, जीलानी का मजार, शायद विलायत साहब का मजार, मामू भांजे के दो मजारात, बहादुर शाह की मजार, दीवाना आलीस्ता की मजार, भोले शागार साहब का आस्ताना, मंजूर हसन चिश्ती का मजार, हजरत अजमतुल्ला देहली का मजार, दीने औलिया शहीद रहमतउल्लाह, शेख बरहम, बहादुर शहीद आदि प्रसिद्ध फकीरों की मजारें तथा चोलबीबी का मकबरा आदि भी मुस्लिम अकीदतमंदों के श्रद्धा–स्थल हैं।

लगभग दस वर्ग किलोमीटर में विस्तृत कर्बला (कब्रिस्तान) है, जहाँ अनेक सिद्ध–पीरों की आत्माएँ कब्रों में सोयी हैं, जिनके हजारों श्रद्धालु यहाँ देश के कोने–कोने से आकर 'फातिहा' पढ़ते तथा 'चादर' चढ़ाते हैं। इनमें एक दर्जन से अधिक पर सालाना उर्स मनाया जाता है। कालपी में लगभग 700–800 वर्ष पुरानी विस्तृत शाही जामा मस्जिद भी है।

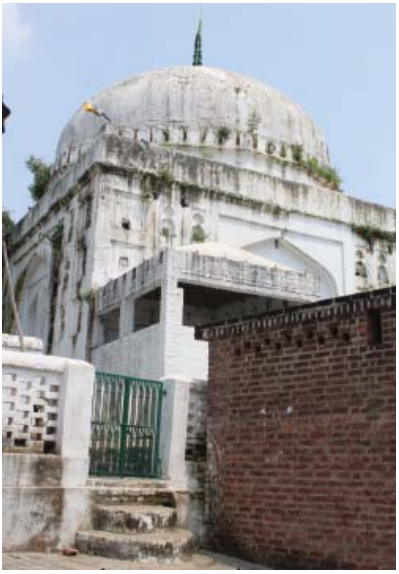

मज़ार शेख अहमद नाग़ोरी

जैन धर्म के आस्था स्थल

कालपी जैन संस्कृति का भी महत्त्वपूर्ण केन्द्र रहा है। इसके प्रमाण मुहल्ला सदर बाजार में स्थित दो जैन देवालय हैं। भले ही जैन मतावलंबी कम संख्या में रहे हों किन्तु उनके प्रसिद्ध मन्दिर रहे हैं। यहाँ जैन परिवार व्यापारिक क्षेत्रों में भी प्रभावशाली थे। जिला गजेटियर 1909 के अनुसार सन् 1901 में कालपी में 133 जैन मतावलंबी व्यक्ति थे। यह सभी वैश्य वर्ग के थे तथा वाणिज्य कर्म में लगे थे। इस मन्दिर का निर्माण सं. 1863 (1806 ई.) में आध्यात्मिक चेतना जागरण हेतु माखन लाल हरप्रसाद जैन द्वारा करवाया गया। इसमें प्रतिदिन दोनों समय पूजन आरती होती है। मन्दिर में भगवान पार्श्वनाथ तथा भगवान शान्तिनाथ (तीर्थंकरों) की पाषाण प्रतिमाएँ तथा भगवान ऋषभनाथ की धातु प्रतिमाएँ हैं।

जैन मन्दिर, कालपी

इसमें भगवान तीर्थंकर के निर्वाण उत्सव का हस्तनिर्मित चित्र विशेष महत्त्वपूर्ण है। मन्दिर में प्राचीन हस्तलिपियों में धर्म–ग्रंथों तथा जैन वंशावलियों का अच्छा संग्रह है। इन पाण्डुलिपियों का अध्ययन पूर्व प्रबन्धक स्व. विमल जैन ने भलीभाँति किया था। कालपी के वरिष्ठ पत्रकार श्री प्रकाश नारायण द्विवेदी ने इस लेखक को बताया कि श्री विमल जैन के अनुसार कालपी का अंतिम राजा श्रीचंद्र उर्फ लहरया राजा जैन मतावलम्बी था। उसके नाम पर उक्त बाजार को 'श्री बाजार' कहते थे तथा उसको मुसलमान आक्रांताओं ने मारने के बाद, यहीं के प्रवेशद्वार की प्राचीर में चिनवाया गया था तथा कालान्तर में इसका नाम नागरिकों ने 'श्री दरवाजा' रख दिया था। उक्त जैन देवालय तथा विमल जैन का आवास भी इसी श्री दरवाजे के निकट ही है।

ईसाई धर्म के आस्था स्थल

सर्वधर्म समभावी कालपी नगर ईसाइयों का भी महत्त्वपूर्ण शासन केन्द्र रहा है। इस शासन काल में अनेक ईसाई धर्मावलम्बियों का कालपी में निधन हुआ अथवा मारे गए। उनकी कब्रें, पुराने किले से नीचे की ओर,

ईसाई कब्रिस्तान

पातालेश्वर मन्दिर के उत्तर में ईसाई कब्रिस्तान में बनी हैं। इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कब्र ईस्ट इंडिया कम्पनी की बुन्देलखण्ड पॉलिटिकल एजेन्सी (जिसका मुख्यालय 1818–1824 तक कालपी में स्थित रहा), के पॉलिटिकल एजेन्ट थामस मूडी नामक अंग्रेज की है। यह कब्र भारत में ईसाई अधिकारियों की पुरानी सिमेट्री (कब्र) की दृष्टि से राष्ट्रीय महत्त्व की है।

उक्त कब्रों में किसी पर शिलालेख नहीं लगा है। स्थानीय नागरिक बताते हैं कि पूर्व में, शिलालेख लगे थे। सम्भव है बाद में नष्ट हो गए हों, या लोग निकाल ले गए हों, क्योंकि कालपी में पुरावशेष चोरी की अनेक घटनाएँ होती रही हैं।

इनमें कुछ कब्रें कलात्मक हैं। सबसे सुन्दर कब्र लगभग 15′ ऊँची हैं, जिसके दोनों ओर दो कब्रें लगभग पाँच फुट ऊँची बनी हैं। ब्रिटिश स्थापत्य शैली की ऊँची कब्र मीनारनुमा किसी उच्च पदस्थ व्यक्ति की स्मृति में बनी प्रतीत होती है। अधिकांश कब्रें बरसों से धूल खा रही हैं, इनका कोई रख–रखाव नहीं होता है। यह परिसर भारतीय पुरातत्व द्वारा संरक्षित स्मारक है।

स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े अन्य पर्यटकीय स्थल

सत्तावनी क्रान्ति की दृष्टि से कालपी महत्त्वपूर्ण केन्द्र रहा है। उस समय के अनेक भवन चिह्नित करके उन्हें पर्यटक स्थल में शामिल किया जा सकता है। इनमें कालपी किला, पाहूलाल मन्दिर आदि की प्रायः चर्चा होती

1857 के क्रान्तिकारी राजा परीक्षित (भदेख) के ध्वस्त दुर्ग का अवशेष द्वार

है, तथा पंचनद क्षेत्र में भदेख के क्रान्तिकारी राजा परीक्षित का दुर्ग अचर्चित है तथा अनेक हवेलियाँ भी मंत्रणा केन्द्र रही हैं, जो उस संग्राम–रचना की साक्षी हैं। ऐसी अनेक हवेलियाँ नष्ट हो गई हैं किन्तु कुछ अभी भी अच्छी हालत में हैं। इनमें कुछ ज्ञात तथा अज्ञात मालिकों की हैं। मुहल्ला हरीगंज में स्वतंत्रता सेनानी बद्रीप्रसाद पुरवार की हवेली की रख–रखाव होने से, अभी भी अच्छी हालत में है। उनके पुत्र समाजसेवी संतोष पुरवार ने कहा कि उनके पिताश्री बताते थे कि यह हवेली क्रान्तिकाल में अनेक क्रान्तिकारियों की मंत्रणा स्थली रही है। साथ ही स्वराज आन्दोलन के दौर में भी यहाँ देशभक्तों की बैठकें गुप्त रूप से होती थीं। इसमें स्वतंत्रता सेनानी ऐसे भी रहे, जिन्होंने अपने त्याग के मूल्य रूप में सरकारी पेंशन नहीं ली थी। बद्रीप्रसाद पुरवार उनमें से एक थे।

कालपी राज्य में आने वाले कनार क्षेत्र में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े अनेक दुर्ग हैं। इनमें एक सही हालत में गोपालपुरा में है, एक भदेख में राजा परीक्षित के दुर्ग (भग्नावशेष) के रूप में है। कालपी के पतन के पश्चात् क्रान्तिकारी सुरक्षित निकलकर इसी गोपालपुरा दुर्ग में एकत्र हुए, जहाँ उनकी अन्तिम मंत्रणा हुई। इसमें नाना साहब, पेशवा, रानी लक्ष्मीबाई आदि की उपस्थिति की सूचना मिलती है। उसके बाद ये क्रान्तिकारी योजनानुसार अलग–अलग स्थानों पर गए। रानी ग्वालियर की ओर चली गईं, जहाँ बाद में भीषण संग्राम हुआ। भदेख में सत्तावनी क्रान्ति के एक सूरमा राजा परीक्षित का भग्नकिला शेष है। राजा तथा उनकी पत्नी चंदेलन जूदेव ने इस संग्राम

में सक्रिय भाग लिया था। राजा ने दुर्ग के एक कुएँ में कूदकर आत्महत्या कर ली थी तथा रानी को पकड़कर अंग्रेजों ने बिहार की मुंगेर जेल में भेज दिया था। उनका पुत्र, बालक किसी प्रकार बचकर अपने रिश्तेदारों के यहाँ इन्होंना (कानपुर) पहुँच गया। बाद में कई पीढ़ी बाद इस परिवार के राजा रघुनाथ सिंह सामने आए। वे कानपुर में राजनीति, गंगा–उद्धार तथा समाजसेवा में सक्रिय रहे।

स्वराज आन्दोलन में भी कालपी सक्रिय रहा। बावनी राज्य से मुक्ति के लिए आजादी के बाद 25 सितम्बर 1947 को हुए संघर्ष में जो ग्यारह जवान शहीद हुए थे, उनकी समवेत समाधि 'शहीद स्मारक' नाम से कालपी के हरचंदपुर गाँव में हुई बनी है। इस अँचल के ऐसे अनेक स्थलों को चिह्नित कर व्यापक योजना अपेक्षित है।

कालपी के संग्रहालय

कालपी में हिन्दी भवन महात्मा गांधी संग्रहालय की स्थापना हुई थी, जिसे पुरातत्ववेत्ता कृष्ण बलदेव वर्मा ने सत्तावनी क्रान्ति से जुड़े अनेक पुरावशेष, चित्र, मूर्तियाँ, पाण्डुलिपियाँ तथा लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह (जो कालपी की बेटी ताज आरा क़िश्वर के पुत्र थे) का अंगरखा आदि भेंट किए थे। इसके संस्थापक बाबू मोतीचंद्र वर्मा, चंद्रभान विद्यार्थी आदि ने श्रमपूर्वक इसे बनाया तथा विकसित किया था। यह पुरातत्व विभाग में भी पंजीकृत रहा। किन्तु कालान्तर में रख–रखाव सही न होने से तथा लापरवाहियों के चलते अनेक बार चोरी की घटनाएँ हुईं, अनेक पुरावशेष स्वतः नष्ट हो गए, कुछ गायब हो गए। नया भवन भी जर्जर होकर अपने उद्धार की प्रतीक्षा में है। वर्तमान प्रबन्ध का दायित्व डॉ. अरुण मेहरोत्रा (पूर्व विधायक) तथा सर्वेश विद्यार्थी पर प्रमुख रूप से है।

प्राकृतिक स्थल

कालपी क्षेत्र में अनेक सुन्दर प्राकृतिक स्थल, प्राचीन वन क्षेत्र, वन विहार के लिए उपयुक्त स्थल हैं। वन विभाग ने कुछ दशक पूर्व वन विहार हेतु 'मृगदाव' बनाया था, वह भी अव्यवस्था का शिकार हो गया। कालपी में यमुना नदी के अनेक सुन्दर मनोरम घाट हैं। यह जाने कितनी शौर्य–गाथाओं, प्रेम–गाथाओं, जौहर–प्रसंगों तथा कालपी के अंतर्राज्यीय व्यापारिक वैभव के साक्षी हैं। राधाकृष्ण की प्रेमलीला, जहाँ मथुरा–वृन्दावन में उनकी यमुना तट पर स्मृतियों को जीवन्त करती है। उसे व्यक्त करने वाले अनेक मन्दिर यहाँ

कालपी यमुना का दृश्य

यमुना के तट पर हैं। इस क्षेत्र में विशेष प्रकार की मछलियों का 'मत्स्य घर' भी बनाया जा सकता है।

कालपी के अनेक घाटों में, जिनमें अधिकांश पक्के घाट बने हैं, बिहारी घाट, किला घाट, बाई घाट, पीला घाट, ढोड़ेश्वर घाट, लक्ष्मीनारायण घाट, मोरी घाट, राजघाट, महाघाट, सूर्यघाट आदि को वाराणसी की तर्ज पर, पौराणिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक संदर्भों से जोड़कर आकर्षक तथा पर्यटकों की रुचि के अनुकूल विकसित किया जा सकता है। कालपी में अनेक प्राचीन बगीचे भी रहे हैं। इनके अतिरिक्त अनेक विस्तृत रमणीय तालाब रहे हैं, बड़े कुएँ, बावड़ियाँ रही हैं। नगर का प्रमुख जलस्रोत ये तालाब, बावड़ियाँ तथा यमुना नदी रही है। इन तालाबों में ख्वाजा का तालाब, कोन–सागर (सपील) सुन्दर ताल (जहाँ कजरी विसर्जन होता है) डाकघर के निकट बड़ी तलैया, बटाऊलाल की तलैया, जैसे अनेक तालाब हैं। भारत सरकार की जल संरक्षण योजना में, मनरेगा से इनका विकास, पुनरुज्जीवीकरण, सुन्दरीकरण सम्भव है। इनका विस्तृत सर्वेक्षण तथा नियोजन अपेक्षित है।

नौकायन : कालपी में नौकायन तथा उनकी प्रतियोगिताओं की सम्भावना है। कभी कालपी में 1000 नावें चलती थीं, नाविक थे, नौका घाट थे। आज भी वे परिवहन का साधन हैं। निषाद समाज के साथ बैठकर इनकी योजना बनाई जा सकती है, इससे उस समाज की अनेक समस्याओं का भी स्वतः समाधान हो जाएगा। अनेक मुगल शासक नौकाओं से, अपनी राजधानी आगरा से कालपी होकर इलाहाबाद तथा आगे पटना तक जाते थे।

कालपी में इतना कुछ अधिक दर्शनीय है कि बहुत कुछ देखने के बाद भी यह लगा रहता है कि कुछ और देखा जाए। वरिष्ठ कथाकार गोविन्द मिश्र के अनुसार –

'हल्की–सी टीस लिए लौटना हुआ–वह पंचनद वाला क्षेत्र जो भारत में अनूठा है 'वहाँ कब जाना होगा? कालप्रियनाथ मन्दिर'? दूर था "नाव से आठ किलोमीटर जाना' बताया गया वहाँ सिर्फ अब भग्नावशेष हैं। यह भी देश के तीन प्रसिद्ध सूर्य मन्दिरों में से एक था। उस क्षेत्र को अब सूर्यकुंड के नाम से जाना जाता है। खँडहर ही सही पर जाना चाहता हूँ। कैसे अपने देश की कालपी जैसी छोटी जगहें अपने भीतर क्या–क्या छुपाए हुए हैं और कैसे हर जगह में ही कुछ ऐसा झलक जाता है, जिसे देखने की प्यास भीतर सुलग उठे। कविवर टैगोर ने एक जगह लिखा था, "मैं देश–विदेश कहाँ–कहाँ घूमता रहा और अपने द्वार की एक पत्ती पर ओस की जो एक बूँद ठहरी हुई थी, उसकी तरफ ध्यान ही न गया। मेरे शहर बाँदा के इतने पास थी कालपी और मैं देख पाया अब।'

⌘

यमुना में नौका विहार

उद्यमशील कालपी

कालपी प्राचीन काल से ही एक प्रमुख व्यापारिक केन्द्र के रूप में विख्यात रहा है। जल मार्ग पर नदी से परिवहन का साधन तथा उत्तरपथ एवं दक्षिणापथ के मिलन केन्द्र पर होने के कारण यह जहाँ एक ओर राजमार्गीय महापथ से होने वाले सार्थवाह का प्रमुख स्थल रहा, वहीं यमुना तटीय प्राचीन बन्दरगाह होने के कारण जल–व्यापार का भी केन्द्र रहा। इसका नौका व्यापार इसे उत्तर से दक्षिण तथा पश्चिम से पूर्व तक ताम्रलिप्ति बन्दरगाह तक जोड़ता था। इस व्यापार मार्ग से मौर्यकाल से ही भारत और रोम के बीच व्यापार होता था। ई.एच. वारमिंगटन (दी कामर्स बिटवीन दि रोमन एम्पायर एण्ड इंडिया में) तथा प्लनीज ने (नेचुरल हिस्टोरिया लाइजिंग) इस मार्ग से रोम जाने वाले व्यापारिक वस्तुओं की सूची दी है। यह मार्ग जलमार्ग से बन्दरगाहों अथवा उत्तरापथ के माध्यम से रेशम मार्ग होकर थल द्वारा रोमन साम्राज्य में पहुँचाते थे। स्वाभाविक है, यदि कालपी होकर यह माल आता–जाता तथा रुकता था तो आसपास के क्षेत्रों में भी उसका आयात तथा पूरक सामग्रियों का निर्यात होता होगा, जिसका प्रभाव कालपी, कोंच तथा बुन्देलखण्ड के अन्य व्यापार पर भी पड़ा होगा। कुषाण काल में करनखेरा क्षेत्र से काँच के मनके का व्यापार होने की सूचना मिलती है। वहाँ उत्खनन में उसी कालखण्ड के काँच के मनके मिले हैं, जो कण्ठहार में प्रयोग किए जाते थे।

प्लिनी के अनुसार 'भारत इस अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में 100 गुना लाभ कमा रहा था। रोम से निरंतर 10 करोड़ सेस्टर्स सोना, जिसका मूल्य 10 लाख डॉलर प्रतिवर्ष था, रोमन महिलाओं की प्रसाधन की वस्तुओं एवं सुख–सुविधा एवं विलासिता की वस्तुओं के बदले में भारत आता था।' इसी मार्ग से बुन्देलखण्ड तथा मालवा के रेशमी वस्त्र विदेश जाते थे। कुमारगुप्त बन्धु वर्मा का एक अभिलेख (मालव संवत् 493–529) मिला है। उसमें रेशमी साड़ी की सुन्दरता के बारे में लिखा है कि "यौवना नारी जब तक इन रेशमी वस्त्रों को धारण नहीं कर लेती तब तक वह अपने प्रियतम से मिलने नहीं जाती।"

तारुण्य कानयुप चितोप्ति सुवर्ण हार,
ताम्बूल पुष्प–विधिना समलंकृतोऽपि
नारीजनः प्रियैमुपैति न तावद्प्रियां
यावन्न पट्टमय वस्त्र युगानि धन्ये।

यहाँ पट्टमय वस्त्र (रेशम) को 'पाट' भी कहते हैं। इस रेशम का वस्त्र बनाने तथा आभूषण पिरोने का काम करने वाले 'पाटकार' (पटवा) कहे जाते हैं। इस क्षेत्र के पटवा रेशम के धागों से माला गुहने तथा बटुआ (पर्स) आदि बनाने में अत्यन्त कुशल रहे हैं। इस कौशल को 'मनिहारी' तथा इन 'पटवा' वर्ग के लोगों को 'मनिहार' (मणियों का हार बनाने वाले) भी कहते हैं। कई स्थानों पर मनिहार बाजार होते थे। इस अंचल में पटवा समाज की अच्छी आबादी है। कोंच नगर में, जहाँ रामलीला भवन है, वहाँ प्राचीन मनिहार बाजार था।

कालपी के निकट भोगनीपुर से प्राचीन मुगलरोड जाता था जो दिल्ली से आगरा, भोगनीपुर, प्रयाग, वाराणसी जाता था। बाद में शेरशाह सूरी के समय में इसे पेशावर के कोलकाता तक बढ़ाकर इसका नाम जी.टी. रोड किया गया। जी.टी. रोड को कालपी के बजाय (एन.एच. 2 के रूप में) आगरा से कानपुर परिवर्तित किया गया है। इस मुगल रोड पर शेरशाह सूरी के समय मीनारों के अन्दर मिट्टी के स्टोनवेयर पाइप बिछे थे, जिसमें आवाज देने पर प्रत्येक 5 किलोमीटर की दूरी पर दूसरे छोर तक सुनाई देती थी। भोगनीपुर से इलाहाबाद (बाया घाटमपुर) जाने पर इन मीनारों के ध्वंसावशेष आज भी साक्षी हैं। ये मीनारें उस समय शाही सरकारों द्वारा संवाद–प्रेषण के काम भी आती थीं। इनसे आपातकालीन चेतावनी भी दी जाती थी। कालपी निवासी (घरजमाई) राजा टोडरमल को इस राजमार्ग के बनाने का श्रेय प्राप्त है। इस राजमार्ग का उपयोग उज्जयिनी से पाटलिपुत्र जाने में भी होता था, इससे कालपी के व्यापारिक उत्कर्ष को गति मिली थी। 'उक्त मीनारों' का नाम पुरातत्वीय अभिलेखों में 'कोस–मीनार' मिलता है।

गुप्तकाल में आन्ध्र मालखण्ड के राजा इन्द्र तृतीय ने कन्नौज पर आक्रमण के लिए इसी मार्ग का उपयोग किया था तथा कालपी में यमुना किनारे बने सूर्य मन्दिर में विश्राम (पड़ाव) करने के बाद वह कन्नौज पहुँचा था। इन मार्गों के विवेचन का उल्लेख कालपी की व्यापारिक केन्द्र के रूप में अनुकूलता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। कालपी में नौका निर्माण, रख–रखाव, संचालन आदि का बड़ा कारोबार था, जो निषाद समाज के हाथ में था। इस क्षेत्र में जलदस्युओं से रक्षा के लिए बाहुबली रहते थे, जिन्हें स्थानीय भाषा में 'गुण्डा' कहते थे। वह रक्षा शुल्क वसूलते थे। उनकी हवेलियों में बड़े–बड़े

तहखाने होते थे, जिनमें नौका हेतु मौसम प्रतिकूल होने पर महँगे मालों के भण्डारण की सुविधा रहती थी। इनमें स्थानीय शिल्पियों ने तहखानों को स्वतः वातानुकूलित बनाया था जिसमें वणिक–वर्ग भी कुछ समय रुक सकता था। जब तक पक्के राजमार्ग नहीं थे, यहाँ शकट–मार्ग (बैलगाड़ियों योग्य पथ) बने थे। इस मार्ग पर सड़क मार्ग से व्यापार करने वालों के रुकने के लिए, बंजारों की बावड़ी (धर्मशाला सह कुओं) की व्यवस्था थी। कालपी से एरच–कोंच–मोंठ आदि में ऐसी बाउड़ियाँ हैं, ये सब पुराने मार्ग और यात्रा के पथ संकेत हैं। (बुन्देलखण्ड का राजनीतिक सांस्कृतक अनुशीलन–डॉ. रामस्वरूप ढेगुला, सहपठित संघन 2005)। कौटिल्य काल में कालपी में यमुना घाट पार करने के लिए तट–कर लगता था। उसका नाका यहाँ था। शासन की अनुमति के बिना नदी पार करने का निषेध था तथा दण्डविधान भी था। इसमें कुछ अपवाद भी हैं, कुछ वर्ग के लोगों को अनुमति लेना आवश्यक नहीं था। अराजक तथा अपराधी तत्वों को बन्दी बनाने का नियम था। निष्कर्ष यह कि व्यापारिक परेशानियों को हल करने के प्रति शासन जागरूक रहता था।

कानपुर विश्वविद्यालय के प्रथम कुलपति श्री राधाकृष्ण अग्रवाल के पूर्वज कालपी के निकट काशीरामपुर खेड़ा के मूल निवासी थे, वह बाद में हरदोई रहने लगे थे। उन्होंने एक साक्षात्कार में बताया था कि इस जलमार्ग पर नावों के मजबूत पाल तथा मत्स्य पकड़ने के मजबूत जाल, यहीं सन तथा डाब से बनते थे। उनका भण्डारण (डंपिंग) का सबसे बड़ा स्थान कालपी था, नौकाओं की मरम्मत का भी। बाद में इसी माल का अवशेष कागज की लुगदी बनाने में काम आता था। उन दिनों वह कागज के कच्चे माल का सबसे बड़ा स्रोत था।

कालपी गल्ला, तिलहन, दलहन, कपास आदि का प्रमुख उत्पादक क्षेत्र रहा। यहाँ इनके सुरक्षित भण्डारण हेतु भूमिगत गोदाम थे, जिन्हें खत्ती या 'खोड़िया' कहते थे। यह पक्की बनाई जाती थीं। इनमें माल बोरों में नहीं, अपितु ढेर के रूप में रखा जाता था। उसकी नाप 'पया' होती थी। कालपी में अभी भी खत्तियाँ टरननगंज बाजार के पुराने हातों, गल्ला–गोदामों में तथा दीवान टॉकीज के खुले मैदान में देखी जा सकती है। इसकी भण्डारण क्षमता छोटी से लेकर हजारों मन तक विस्तृत होती थी। छोटे भण्डारण के लिए घर में बण्डा बना लिए जाते थे। इन 'बण्डों' अथवा 'खत्तियों' को भी वायुरोधक ढंग से बंद कर दिया जाता था ताकि नमी से माल खराब न हो सके तथा सुरक्षित निकल सकें। गरीब किसान इन भण्डारकर्ताओं से बुआई के समय

अथवा आपातकाल में 'सवाई' पर माल उधार लेते थे। 'सवाई' का अर्थ होता था – मूल माल की सवागुनी मात्रा की वापसी। आज की भाषा में मूल मात्रा का पच्चीस प्रतिशत अधिक। इसकी वापसी अवधि प्रायः एक वर्ष (अगली फसल आने तक) होती थी।

कालपी का 'पीला चना' तथा 'बाजरा' अत्यन्त उच्चकोटि का होता है। बम्बई के गल्ला–बाजारों के भाव प्रति सप्ताह जारी किए जाते हैं तथा यहाँ के व्यापारियों को भाव–पत्रक भेजे जाते हैं। इनमें अन्य क्षेत्रों की तुलना में कालपी का 'बाजरा' तथा कोंच, कालपी का 'पीला चना' उच्च दर पर अलग से दर्शाया जाता है। कालपी मूँगफली का भी अच्छा उत्पादन क्षेत्र था, जो यहाँ से बम्बई, कलकत्ता, दक्षिण आदि के सुदूर बाजारों में निर्यात की जाती थी। यह लदान पहले नौकाओं से होता था। वर्ष 1869 में जी.आर.पी. रेलवे का रेलपथ चालू होने के बाद माल की ढुलाई रेल–वैगनों तथा ट्रकों से होती है। कालपी क्षेत्र में माधवगढ़ आदि में (पंचनदा के आसपास) गन्ना का उत्पादन क्षेत्र व्यापक था। खेत पर ही कोल्हुओं से गन्ना पेरकर उसका रस निकाल लेते हैं तथा उसे जमाकर देशी गुड़ (कैमिकल रहित) बनाते हैं। यहाँ गुड़ की गुणवत्ता काफी अच्छी है। बुन्देलखण्ड विकास निगम ने माधवगढ़ में चीनी मिल खोला था जो कालान्तर में बन्द हो गया। गन्ने की छिलकन का उपयोग कागज–उत्पादन में होता है। यहाँ का गुड़ अभी भी लोकप्रिय है।

कालपी प्राचीन काल से ही चीनी उत्पादों का बड़ा बाजार रहा है। इसके लिए चीनी बाहर की मण्डियों से आती थी तथा यहाँ के कारीगर उससे विशेष प्रक्रिया से मिश्री, दनदान, पट्टी, घुल्ले, बताशे तथा गट्टा आदि बनाते थे। मिश्री की गुणवत्ता बहुत उच्चकोटि की थी। उसे लगभग एक माह की अनेक प्रक्रियाओं से गुजरकर बनाया जाता था, जो हीर–कनी जैसी चमकदार तथा पारदर्शी बनाई जाती थी। लोग उसकी गुणवत्ता देखकर आश्चर्य करके दंग रह जाते हैं। कालपी की मिश्री, अकबर को अत्यन्त प्रिय थी। *दि आइने अकबरी* (पृष्ठ 192) के अनुसार कालपी में शक्कर की मिश्री बहुत उत्तम किस्म की बनती थी। वह मुगल हरमों तथा लखनऊ नवाबी खानदान में भारी मात्रा में आपूर्ति की जाती थी। कुछ आयुर्वेदिक ग्रंथों के अनुसार औषधि बनाने में कालपी की मिश्री का उपयोग होता था। गुणवत्तापरक हीर–कनी जैसी मिश्री के निर्माता गुल्लू लाल पुरवार का एक पुराना परिवार अभी भी है, यह परिवार लगभग दो सौ वर्षों से पुरानी विधि से पारम्परिक मिश्री तैयार कर लेता है। उस परिवार में गुल्लू लाल के पुत्र सुकड़ूलाल, उनके पुत्र राजाराम की

परम्परा के संवाहक श्री राधेश्याम गुप्ता (बताशा वाले, टरननगंज कदौरा फाटक) ने इस लेखक को मिश्री तथा चीनी उत्पादों की प्रक्रिया आदि की विस्तृत जानकारी दी तथा नमूना भी बनाकर दिया। उनका कहना है कि अब प्रतियोगिता के बाजार में लोग गुणवत्ता में विश्वास नहीं करते हैं, सस्ता माल ही बिकता है। इससे 'हीर–कनी मिश्री' विशेष आदेश पर ही बनाते हैं। वह शिल्प भी विलुप्ति की ओर है। 'भारतीय शिल्प (स्किल) अभियान – स्किल इण्डिया' में इसे सम्मिलित किया जा सकता है।

कालपी में चीनी का उपयोग 'गुजिया' तथा 'सोहन हलुवा' बनाने में भी होता है। यहाँ मावा (खोवा) की गुजिया कड़ी भुनाई की श्रम साध्य प्रक्रिया से बनाई जाती है, जिसमें कभी मिश्री, गुलाब–दल तथा केसर डाला जाता था। केशर शकटों (बैलगाड़ियों) से कश्मीर के पम्पापुर क्षेत्र से आता था। गुजिया के अंदर विभिन्न प्रकार के सूखे मेवे भरे जाते हैं तथा ऊपर से नारियल की कतरनों की 'ड्रेसिंग' की जाती है। यह गुजिया लगभग एक पखवारे तक सुरक्षित रखी जा सकती है। पिछली शताब्दी में कालपी में 'खुन्नीलाल हलवाई' की गुजिया काफी स्तरीय बनती थी। कालपी नगर में अधिकांश हलवाई गुजिया बनाते हैं किन्तु अब वह स्वाद कहाँ ? विशेष आदेश पर अच्छी गुजिया (भले ही थोड़ी महँगी हो) अभी भी बनाई जाती है।

कालपी की एक और मिठाई भी लोकप्रिय है – सोहन हलुवा। यह हलुवा पिछली शताब्दी में गबद्दे नामक हलवाई तथा उसके पूर्वज बनाते थे। उसकी लोकप्रियता से यह अब 'गबद्दे का हलुवा' नाम से प्रसिद्ध है। अधिकांश लोग अनुमान करते हैं कि 'गबद्दे' कोई पदार्थ होगा, जिससे यह बनता है। किन्तु वास्तव में यह दूध को भलीभाँति लगभग आठ घण्टे तक ओंटकर बनाया जाता है। इसके निर्माण की विशेष तकनीक है। लकड़ी की आँच पर, विभिन्न स्तरों पर अलग–अलग तापमानों पर पकाया जाता है। सोंधेपन के लिए गेहूँ की 'हीर' (विशेष प्रकार से निकाला गया 'सत') विभिन्न सोपानों पर मिलाया जाता है। आठ घण्टे तक आँच के सामने बैठना तपस्या के बराबर है। दूध औंटते–औंटते कत्थई रंग (चाकलेट कलर) का हो जाता है। इसके उत्पादन की प्रक्रिया जटिल, श्रमसाध्य तथा समयसाध्य है। गबद्दे की पुरानी दूकान अभी भी सदर बाजार में श्री दरवाजा के ठीक बगल में है। गबद्दे बताते हैं कि उसके पूर्वजों द्वारा बनाई गई यह मिठाई जर्मनी तक गई थी। इसे हिटलर को भेंट किया गया तो उसने इसे "ग्रांड इण्डियन मिल्क चाकलेट" कहा था।

कालपी के चीनी व्यापार का उत्कर्ष यह है कि इसका भण्डारण

भारी मात्रा में होता है। 1857 की क्रान्ति का आँखों देखा हाल लिखने वाले मराठी ब्राह्मण विष्णु गोडसे की पुस्तक माझा–प्रवास (हिन्दी में *आँखों देखा गदर*, अनुवादक अमृतलाल नागर) में उल्लेख है कि फिरंगियों ने शहर में लूट मचाई तो कालपी शहर की सड़कों पर चीनी (शकर) की मोटी–मोटी तहें बन गई थीं। कहने का तात्पर्य यह कि चीनी का भण्डारण यहाँ उसके स्थानीय उपभोग के कारण, भारी मात्रा में रहता रहा है।

चीनी उत्पादों के 'घुल्ला' (चीनी से बने खिलौने, फूल, पशु–पक्षी आदि) का एक प्रसंग अभी भी लोग दन्त कथा के रूप में सुनाते हैं। कालपी में एक नामीगिरामी वकील बाबू मथुरा प्रसाद निगम 'लंकेश' थे। अपने को 'लंकेश' कहने लगे थे। वह अपने को 'रावण' का अवतार मानते थे। पारिवारिक उत्सवों में वह भोजन में शक्कर के रंग बिरंगे घुल्ले घोड़े, शेर, चीता आदि बनवाते थे तथा परोसते समय कहते थे – रावण के यहाँ तो शेर, चीता, हाथी, घोड़ा जानवर ही खाने पड़ेंगे। शराब के रंग का 'लाल शर्बत' पीने को दिया जाता था।

कालपी आने वाले पर्यटक, वापिस जाते समय कालपी की मधुरता की प्रतीक 'गुजिया' तथा 'सोहन लहुवा' अपने साथ ले जाना नहीं भूलते। इस मिठास का मिठबोलापन कालपी के निवासियों की जुबान पर भी देखने को मिलता है।

कालपी में नौका निर्माण, नौका–जाल तथा पाल का उत्पादन, भण्डारण, मत्स्य आखेट, मछली पालन तथा मछली–निर्यात का अच्छा व्यापार है। इस पर निषाद समाज का एकाधिकार रहा है, अब कुछ अन्य जातियों के व्यापारी भी इस व्यवसाय में आ गए हैं।

प्राचीन काल में जिला जालौन कपास का अच्छा उत्पादन केन्द्र था, इसमें जिले की कुल कपास उत्पादन का 18 प्रतिशत कालपी में था तथा इससे अधिक 25 प्रतिशत कोंच क्षेत्र में था। यह सफेद तथा मुलायम एवं उच्च स्तरीय रुई का स्रोत था। इसकी पैदावार देखकर ईस्ट इंडिया कंपनी ने वाणिज्यिक निवेश हेतु कालपी को चुना था तथा 'कॉटन एजेन्सी' का क्रय केन्द्र खोला था। उस समय सरकारी (अंग्रेजी) खरीद लगभग 40 लाख रुपये तथा प्राइवेट खरीद लगभग 18 लाख थी। प्राइवेट कम्पनियों में इंग्लैण्ड की दो फर्में लीवर ब्रदर्स तथा राली ब्रदर्स प्रमुख थीं, कुछ देशी कम्पनियाँ भी थीं। उक्त कम्पनियों के क्रय–एजेन्ट कालपी तथा कोंच में नियुक्त थे। कालपी, एट तथा कोंच में कपास के जिनिंग मिल थे। इनमें कपास की ओंटाई, बिनौले

की बिनाई, सफाई के बाद गाँठ बनाने का काम होता था। कालपी तथा एटा की मिलें जुग्गी लाल कमलापत चलाते थे, वह जॉब–वर्क भी करते थे। कोंच की मिल कलकत्ते की एक फर्म ने खोली थी जिसे इंग्लैण्ड की मफस्सिल एण्ड कम्पनी ने किराये पर ले लिया था तथा जाब वर्क पर स्थानीय व्यापारियों का माल, उक्त प्रक्रिया के बाद गाँठ बनाकर बेचती थी। यहाँ का माल भी कालपी जाकर जलमार्ग से बम्बई–कलकत्ता होकर मैनचेस्टर जाता था अथवा बम्बई की कॉटन मिलों को आपूर्ति की जाती थी। मफस्सिल एण्ड कम्पनी के जॉब वर्क के कुछ अभिलेख इस पुस्तक लेखक के अभिलेखागार में सुरक्षित हैं।

इसके अतिरिक्त कालपी में प्राकृतिक रंगों का भी व्यापार था। इनमें नीला रंग बनाने के लिए नील की खेती होती थी। पलाश (टेसू) तथा कुसुम की खेती (कोंच) में होती थी, इससे पीला रंग बनता था। 'आल' का उत्पादन कोंच तथा कालपी के आटा क्षेत्र में होता था, इनसे महावरी रंग (मेहरुन) तथा 'आलता' बनता था। बुन्देली कवि 'ईसुरी' की फागों में नायिकाओं के 'आल' में रंगी हुई साड़ी तथा लहँगा पहनने का उल्लेख मिलता है – "पके आल कौ लहँगा पैरें, डोरादार धँगरुआ।" इन रंगों से कालपी, कोटरा तथा कोंच में भी कपड़ों की रंगाई का काम होता था। अन्य मंडियों में भी यह वानस्पतिक रंग जाते थे। किन्तु आयातित सिंथेटिक–रंगों ने इन रंगों का व्यापार चौपट कर दिया।

कालपी में हथकरघों का काम जुलाहे करते थे। केवल इस काम के लिए जुलाहों की पूरी बस्ती 'जुलहटी' थी। यह करघे कई प्रकार के उत्पादन करते थे। मुगलों के शासन काल में तम्बुओं का कपड़ा यहीं तैयार होता था। (हरिविष्णु अवस्थी का लेख – संधान 2012, पृष्ठ–107, सपठित गोरेलाल सं. महेन्द्र सिंह, दिल्ली, पृष्ठ–97)।

कालपी से कपास का अधिकतर भाग निर्यात कर दिया जाता था, शेष का स्थानीय स्तर पर रुई निकालकर धुनाई करके सूत काता जाता था। उससे धागा तैयार करके लकड़ी की मशीनों से, जिसे 'हथकरघा' कहते हैं, स्थानीय बुनकर कपड़ा बुनते थे। कालपी के बुनकरों (जुलाहों) में बहुलांश मुसलमानों का रहा है।

श्री मुन्ना लाल खद्दरी ने यहाँ की रॉ (कच्ची) ऊन से चादर, बिछावन, कंबल, स्वेटर, मफलर, सूती तथा ऊनी दुसूती, दरी आदि बनाने के लिए स्थानीय श्रमिकों तथा बुनकरों को प्रोत्साहित किया। उनका गांधी जी से

सीधा पत्र व्यवहार था तथा वह 'कालपी के गांधी' कहे जाते थे। इस ऊन के धागे यही बनाए जाते थे। इसके लिए कच्ची ऊन राजस्थान के अनेक नगर – अजमेर, बीकानेर, जयपुर आदि से आती थी। बाद में कालपी के निकट चौरा ग्राम (रेलवे स्टेशन भी है) ऊन के बड़े बाजार के रूप में विकसित हो गया। यमुना तटवर्ती ग्रामों के पाल तथा अन्य पशुपालक जातियों के लोग कच्ची ऊन उतारकर यहाँ बेचने लगे। बाहर की मंडियों तथा छोटे–छोटे स्थानों की कच्ची ऊन तथा व्यापारी आने लगे तथा मंगलवार को बाजार लगने लगा। इस ऊन का अधिकांश उपयोग कालपी में ऊनी कालीन बनाने में होने लगा। कालपी में ऊनी कालीन बनने के बाद हाथ से धोए जाते थे अथवा लकड़ी के विशेष फाँवड़े से, काम्बिंग शैली में धोए जाते थे, फिर हाथ से, बढ़े हुए यत्र–तत्र धब्बे काटकर समतलीकृत किया जाता था। बाद में, ग्वालियर तकनीकी ढंग से धुलाई, सफाई, कंघीकरण (छँटाई) का केन्द्र बन गया। इससे यहाँ का कालीन ग्वालियर के माध्यम से आगरा से निर्यात होने लगा। कालपी में ईरानी शैली के मजबूत, बेहतरीन कालीन बनते थे। डिजायन पूरी भरी हुई होती थी। मजबूती की दृष्टि से प्रतिवर्ग इंच में 11X9 गाँठें लगाते हैं, अर्थात् 209 गाँठें। इसी प्रकार 19X9 तथा 29X9 गाँठ के कालीन भी बनते हैं। इससे कालीन में मजबूती आती है, जबकि अन्य स्थानों पर कम गाँठ के कालीन बनते हैं। सबसे अधिक गाँठ के कालीन कश्मीर में 600 गाँठ तक के पश्मीना ऊन से बनते हैं। कालपी के कालीन निर्यात होते हैं। इनकी विदेशों में भारी माँग है।

श्री खद्दरी जी ने कालपी में हस्तनिर्मित कागज निर्माण को भी मुहल्ले–मुहल्ले घूमकर प्रोत्साहित किया। वस्तुत खद्दरी जी कालपी में कुटीर उद्योग के जागरण–पुरुष थे। उनके प्रयास से कालपी गोरक्षक जूतों का अच्छा उत्पादन केन्द्र बन गया था। इन जूतों में तल्ला (सोल) टायर–ट्यूब का होता था तथा ऊपरी हिस्सा कालपी के बने मोटे कपड़े का होता था। इन कपड़ों को रंग–बिरंगा वानस्पतिक रंगों से रँगा जाता था।

कालान्तर में यह हथकरघे तथा पावरलूम के करघे कालपी में टेरीकॉट उत्पादन में आगे बढ़ गए। इसने संपूर्ण बुन्देलखण्ड को प्रेरित तथा प्रोत्साहित किया। कुछ ही दिनों में कोटरा तथा रानीपुर भी टेरीकॉट के बड़े उत्पादन केन्द्र बन गए तथा उन नगरों के आर्थिक विकास को गति मिली।

कालपी के मदारपुर क्षेत्र में नदी–तटीय उगने वाली 'डाब' नामक घास से बान मूँज बाँटकर उसे बाहर की मण्डियों में भेजा जाता है। प्राचीन

काल में इससे नौकाओं के 'पाल' तथा मछली पकड़ने के मजबूत 'जाल' बनाए जाते थे। इस डाब से गृह उपयोगी कलात्मक सामान भी बनाए जाते हैं – यथा बाल हैंगिंग, हैण्ड बैग आदि।

कालपी के व्यापार और उद्योग में सबसे प्रमुख है – हाथ से बना कागज, जिसने इसे वैश्विक पहचान दिलाई, देश–विदेश तक पहुँचा। इस क्षेत्र ने अनेक उतार चढ़ाव देखे तथा भविष्य में सम्भावनाएँ भी बहुत हैं जो कालपी के प्राचीन वैभव को पुनः जीवित कर सकती है। यह उद्योग यहाँ हजारों वर्ष प्राचीन बताया जाता है किन्तु प्रामाणिक उल्लेख आल्हाखण्ड (12वीं शती) में मिलता है। उसमें जब भी कहीं चिट्ठी लिखने के उल्लेख आते हैं, कालपी के कागज मँगाने तथा उसके उपयोग की चर्चा होती है। देखें दो प्रसंग –

कागज लैकें कालपी वारौ, लई मल्हना नें कलम उठाय
चिट्ठी लिख आल्हा ऊदल को, फिर धावन सें दई पठाय।

X X X

कागज लैकें कालपी वारौ, आपन कलमदान लै हाथ
लिखी हकीकत पृथीराज कों, पढ़ियो जाय वीर चौहान।

इन पंक्तियों से यह आभास मिलता है 12वीं शताब्दी के कई शताब्दी पूर्व से यहाँ कागज का उत्पादन होता था, उसकी मजबूती तथा अन्य लेखन–माध्यम होने से यह लोकप्रिय होकर ख्याति के उच्च स्तर तक पहुँच चुका था। उसमें कई सौ वर्षों का समय लग गया होगा।

इसको सर्वप्रथम संरक्षण यहाँ मुस्लिम शासन के आने के पश्चात् मिला। शाही फरमान जारी करने तथा मुहाफिजखानों (अभिलेखागारों) में रखने लायक सरकारी दस्तावेजों में यह प्रयोग हुआ। क्योंकि अभिलेखागारों तथा प्राच्य पुस्तकालयों में रखी पाण्डुलिपियों तथा सरकारी दस्तावेज हाथ से बने कागज पर ही मिलते हैं। अन्य किसी निकटवर्ती स्थान पर हस्तनिर्मित कागज बनाने की सूचना नहीं मिलती है। इससे अनुमान है कि उस कालखण्ड से लेकर अंग्रेजी हुकूमत तक इसे संरक्षण मिला। इसके लिए कालपी में बाकायदा एक मुहल्ला बसाया गया। नाम रखा गया – 'कागजीपुरा'। इस तथा अन्य मुहल्लों में प्राचीन भवनों की खुदाई में कागज बनाने के पक्के हौज मिलने की भी जानकारी मिली है। इससे इसके निरंतर बनते तथा बढ़ते रहने का संकेत मिलता है।

स्वतंत्रता आन्दोलन के युग में जब कांग्रेस ने स्वदेशी के प्रचार तथा विदेशी सामान के बहिष्कार का नारा लगाया, तब इसे गति मिली। 1938 में, हाथ कागज के अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के विशेषज्ञ डॉ. डाड हंटर ने भारत भ्रमण किया, वे विशेष रूप से कालपी आए। कागजीपुरा के उत्पादकों तथा कारीगरों से भेंट की तथा अत्यन्त प्रभावित हुए। उन्होंने एक कागजी रामसहाय जी के यहाँ बने उत्पाद देखकर प्रमाण पत्र दिया कि भारत में यह सर्वोत्तम हाथ–कागज है। इससे राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कालपी के कागज की चर्चा होने लगी। अंतरिम सरकार ने उसी वर्ष यहाँ के दस्तकारों तथा निर्माताओं को प्रोत्साहित किया तथा कुछ विभागों में इसकी खरीद अनिवार्य कर दी। इसी बीच गांधी जी के भक्त कालपी के श्री मुन्नालाल खद्दरी का उदय हुआ। वे कुटीर उद्योगों के जागरण पुरुष के रूप में सामने आए। हथकरघे के सूती ऊनी वस्त्र तथा गोरक्षक जूतों के अतिरिक्त हाथ से बने कागज का निर्माण करने घर–घर अलख जगाई, पूँजी की समस्या हल कराई, श्रमिकों की भी चिन्ता की तथा कालपी का कागज घर–घर बनने लगा। उसी कालखण्ड में एक हाथ कागज उत्पादन केन्द्र सरकार ने खोलकर (लंका परिसर के निकट) सभी कागजियों द्वारा बनाए गए माल को ठीक–ठाक कराकर उत्पादनों को बिकवाने की मदद की। आजादी के बाद (खादी ग्रामोद्योग आयोग के गठन के बाद) इसमें कुछ प्रगति हुई। आयोग का कार्य क्षेत्र कम करके सभी राज्यों में प्रदेशीय खादी बोर्ड बन गए। आयोग ने उनके माध्यम से मदद भिजवाई तथा 1962 में कालपी में एक 'राजकीय कागज केन्द्र' एम.एस.वी. इंटर कॉलेज रोड पर, हिन्दी भवन के सामने खोल दिया गया था।

उस समय कालपी में मुख्य रूप से निम्नांकित कागजों का उत्पादन होता था ड्राइंग पेपर, वाटर मार्क, डिप्लोमा पेपर, बॉण्ड पेपर, फिल्टर पेपर, ब्लॉटिंग पेपर, फाइल कवर, फाइल पैड, फाइल बंधना तथा रंगीन व सफेद राइटिंग पेपर (बॉन्ड) तथा रंगीन व सफेद कार्ड पेपर, स्थायी दस्तावेज के कवर, एल्बम पेपर, पेस्टल पेपर आदि। इसमें फिल्टर पेपर, फाइल कॅवर, फाइल पैड तथा बंधना पूरे देश में प्रसिद्ध हो गए। स्थायी कागजों मे शेयर सर्टीफिकेट, शिक्षा बोर्डों की सनदें तथा विश्वविद्यालय की वाटरमार्क अंकित उपाधियाँ कालपी की नवोन्मेषी दृष्टि का उदाहरण लेकर आई।

यहाँ रेलवे लाइन न होने तक पहले कच्चा माल आने की ढुलाई की समस्या थी। तब कच्चे माल के रूप में स्थानीय घासें, डाब, सन, रद्दी कागज तथा मछली पकड़ने वाले जाल नौकाओं के फटे–पुराने 'पाल' आदि से

कागज बनता था। ढुलाई सुविधा होने तथा सरकारी संरक्षण मिलने के बाद कच्चे माल में शिक्षा बोर्ड की रद्दी कापियाँ, मिलिट्री के कपड़े बनाने वाले कारखानों की कतरनें, होजरी निर्माताओं की कतरनों, स्कूलों के सड़े–गले टाट, सेना की वर्दी के पुराने कपड़े तथा रेलवे के व्यर्थ टिकट भी मिलने लगे।

कागज निर्माण की प्रक्रिया में कतरनों की छटाई, धुलाई करके बड़े हौजों में पहले पैरों से कुचलकर लुगदी बनाई जाती थी। यांत्रिकीकरण के बाद 'बीटर' नामक यंत्र से 'पल्प' तैयार होने लगा। लुगदी को भण्डार में रखकर जाली के फ्रेम में उसकी लिफ्टिंग, प्रैसिंग (दबाई) के बाद कागज सुखाया जाता है। तत्पश्चात् उसे अलग करके छाँटने तथा आकार सही करके लेखन–योग्य बनाने के लिए माड़ी लगाकर घुटाई (ग्लेजिंग) की जाती है। तब पैकिंग करके रिम का बण्डल बन जाता है। सम्पूर्ण प्रक्रिया हाथ से पूरी होती है। इसमें सिलेण्डर मशीन आने के बाद यांत्रिकीकरण आसान हो गया। जाली से लिफ्टिंग के बजाय सिलेण्डर में ही प्रेस होकर कागज निकल आता है। प्रेस करने के लिए मशीन में लोहे की प्लेटें लगी होती हैं। श्रम–मूल्य तथा समय की बचत कम होने से लागत कम हो गई।

हस्तनिर्मित कागज बनाते हुए श्रमिक

इस बीच नवोन्मेषी दृष्टि लेकर कुछ नए उत्पादक सामने आए। उन्होंने पल्प में ही दूर्वा, फूल, जीरा, काही स्ट्रा (भूसी) पीपल के पत्ते, अरण्डी के पत्ते रखकर प्रेस करके कलात्मक डिजायन तथा रंग संयोजन किए। यह दस्तकार का सौंदर्य बोध है कि विभिन्न रंग निश्चित डिजाइन में कैसे फैले? कागज मोड़कर टोपी या नाव बनाकर घोल में डुबाकर रंग–बिरंगे कागज तथा मार्बल जैसे रंग उभर आए। मैटेलिक रंग का कागज बनने लगा। इस कार्य में चित्रकार–कलाकार बजरंग बिश्नोई, संतोष पुरवार, उदय सिंह, राधेश्याम गुप्ता, पदमकांत पुरवार जैसे उद्यमियों ने नए प्रयोग किए। इसी

अवधि में उ.प्र. खादी बोर्ड के चेयरमैन/एम.डी. कला–प्रेमी आई.ए.एस. अधिकारी डॉ. कमल टावरी आ गए। वे इन उत्पादों से खुश हो गए तो देश–विदेश से आर्डर मिलने लगे। राजकीय विभागों में खरीद का आरक्षण कराया, बोर्ड ने स्वयं आर्डर थोक में प्राप्त करके कागज उत्पादकों को दिलाए। वह कालपी कागज का उत्कर्ष का दौर था।

इसके बावजूद कालपी कागज का पराभव प्रारम्भ हो गया। हस्तनिर्मित कागज, सेमी मिलों से बनने लगा। पहले पुणे तथा साँगानेर (राजस्थान) के मिलों के कागज ने तथा बाद में चीन से आयातित कागज ने इसे परास्त कर दिया। अब व्यापार अवनति पर है किन्तु उसकी प्रगति की सम्भावनाएँ अब भी है।

यहाँ राजकीय कागज केन्द्र सत्तर के दशक में खुला था। उसमें लगभग 25 वर्ष प्रबन्धक रहे प्रेमशंकर शुक्ला का कहना है कि पहले यहाँ से प्रतिवर्ष लगभग दो करोड़ रुपए के फाइल कॅवर्स, फाइल पैड तथा बंधना, सरकारी खरीद में जाते थे वह बिचौलियों तथा मिल वालों के दबाव में बन्द हो गए। यदि अभी भी सूक्ष्म, लघु तथा मध्यम स्तरीय उद्योग मंत्रालय कुछ केन्द्रीय विभागों में हस्तनिर्मित कागज की अनिवार्य खरीद का आदेश कर दे तो इस उद्योग में नई जान आ सकती है। यदि इसके लिए यहाँ एक सरकारी इम्पोरियम बन जाए तो सीधे उत्पादकों से माल खरीदे तथा यहीं पेमेंट हो तो ज्यादा अच्छा हो। स्थानीय इम्पोरियम माल की एकरूपता तथा गुणवत्ता परख सकता है तथा उस पर नियंत्रण रख सकता है। उसके लिए सभी मशीनें राजकीय कागज केन्द्र में है। सरकार ने यहाँ किले पर कागज तथा कुछ कुटीर उद्योगों का प्रशिक्षण देने के लिए एक प्रशिक्षण केन्द्र खोला था, मशीनें थीं, छात्रों के लिए छात्रावास भी था किन्तु वहाँ प्रशिक्षित लोगों को बोर्ड ने अन्यत्र भेज दिया तथा अन्य दायित्व दे दिया। इससे उसका प्रयोजन ही समाप्त हो गया। यदि प्रशिक्षित श्रमिक हों, उनको राज्य कर्मचारी बीमा की सुविधा हो तो गुणवत्तापरक माल बनाकर फिर बाजार चमक सकता है।

कालपी के कागज से अनेक उत्पाद बनाकर निर्यात किए जा रहे हैं – इनमें महिलाओं के आभूषण, लैम्प शैड्स, क्रिसमस स्टोर लैम्प शैड्स, डायरियाँ, फोटो एल्बम आदि। इनमें पेपर थियेटर, दिल्ली तथा न्यू इरा क्रियेशन उल्लेखनीय हैं।

खादी ग्रामोद्योग आयोग के एक सर्वेक्षण अध्येता श्री हरिबल्लभ गुप्त के अनुसार – 'हाथ कागज उद्योग कचरे को काँचन में बदलने वाला

उद्योग है। कालपी जैसे हस्तनिर्मित कागज को आर्थिक प्रगति का आधार बनाकर स्वावलम्बी अर्थव्यवस्था खड़ी करने से सारा देश औद्योगिक गतिविधियों से आप्लावित हो सकेगा। भूख और शोषण से मुक्त प्रत्येक व्यक्ति अपना–अपना लाभकारी व्यवसाय चला सकेगा। जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था में व्याप्त निर्धनता और विषमता का लोप हो जाएगा। इस प्रकार हर व्यक्ति देश की अर्थव्यवस्था में अपना अमूल्य योगदान करके इसे और सुदृढ़ बनाने में समर्थ होगा।'

⌘

संभावना–सक्षम कालपी

कालपी का वैभव आज अनेक दृष्टियों से पराभव की ओर है। देश में हस्तनिर्मित कागज का सबसे पुराना केन्द्र यहाँ था। वह कभी देश–विदेश में निर्यात करके, विदेशी मुद्रा अर्जन का साधन था, तो पारम्परिक शिल्प को निरन्तरता के माध्यम से उसे बचाए हुए था। उसमें आई कमी के कारणों तथा कारणों के निवारण पर चिन्तन तथा सुधार के कारगर उपाय करने से कालपी को उत्कर्ष की ओर ले जाया जा सकता है। करघा शिल्प से जुड़े हथकरघा, सूती वस्त्र, ऊनी वस्त्र तथा कालीनों का व्यापार काफी कम हो गया है। इनके पारम्परिक लोक–शिल्पी हजारों की संख्या में हैं। यदि उन्हें न सहेजा गया तो यह शिल्प विलुप्त हो सकता है। गल्ला आदि के भण्डारण के लिए, वायु प्रतिरोधक अनेक खत्तियों की आधारभूत संरचना का संरक्षण तथा उपयोग कैसे हो सकता है ? एक ओर शासन राज्य तथा केन्द्रीय भण्डार गृहों का निर्माण कर रही है दूसरी ओर यह पारम्परिक विरासत विनाश के कगार पर है। कभी मुगल हरमों तक यहाँ की मिठाइयाँ प्रसिद्ध रही हैं तथा उनको यहाँ से भारी बाजार प्राप्त होता था। आज जब डिब्बाबंद मिठाइयों का बाजार बढ़ रहा है, इस स्थानीय व्यवसाय को नया स्वरूप देना आवश्यक है। कई कम्पनियों का इस क्षेत्र में बड़ा अन्तर्राष्ट्रीय बाजार है। 'हल्दीराम' समूह 107 देशों में अपना परचम फहरा रहा है तो यहाँ की गुजिया, सोहनहलुवा, मिश्री, दनदान, पट्टी आदि को भी देश–विदेश में अच्छा बाजार मिल सकता है।

इन लघु, कुटीर तथा सूक्ष्म उद्योगों के विकास तथा पारम्परिक शिल्पों के विकास हेतु केन्द्रीय सरकार ने 'स्किल इण्डिया' आदि अभियानों के माध्यम से गति दी है, पूर्वांचल का तो नक्शा बदलता दीख रहा है, जिसे इस क्षेत्र में भी लागू कराया जा सकता है। प्रदेश शासन ने भी अब छोटे, झौले उद्यमियों के लिए 'सिंगल विंडो सिस्टम' पद्धति लागू करने की घोषणा की है। उसकी युगानुरूप मदद लेनी होगी।

स्वतन्त्रता आन्दोलन के संघर्षकाल में देश के पुनर्जागरण के लिए, प्राचीन शिल्पों के विकास, स्वरोजगार तथा स्वदेशी के विकास हेतु राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत–भारती' में एक मार्गदर्शक विचार दिया था। वह आज भी अत्यन्त प्रासंगिक है। इस दृष्टि से निम्नांकित छन्द पठनीय तथा

विचारोत्तेजक हैं –

हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्यायें सभी।
यद्यपि हमें इतिहास अपना प्राप्त पूरा है नहीं,
हम कौन थे, इस ज्ञान को, फिर भी अधूरा है नहीं।

इतिहास में इस देश की वाणिज्य–वृद्धि प्रसिद्ध है,
अन्यान्य देशों से वहाँ सम्बन्ध इसका सिद्ध है।
बनकर यहाँ वर वस्तुएँ सर्वत्र ही जाती रहीं,
नर–रचित कहलातीं न थीं, सुर रचित कहलाती रहीं।

है बदलता रहता समय, उसकी सभी घातें नईं,
कल काम में आती नहीं है, आज की बातें कईं,
है सिद्धि–मूल यही कि जब जैसा प्रकृत का रंग हो –
तब ठीक वैसी ही हमारी कार्य्य–कृति का ढंग हो।

तात्पर्य यह कि हमें युगानुकल तकनीक, परिस्थितियों, वैश्विक परिवेश तथा अपनी क्षमता का पुनः आकलन करना पड़ेगा। पुरातन–पंथी होने का विचार छोड़कर नई शैली–परम्परा, औद्योगिक राग–ढंग, शासकीय नीति तथा वैश्विक बाजार के हिसाब से कार्य–नीति बनानी होगी। इसके निमित्त एक नई कार्यशैली विकसित करनी होगी। इसे सूत्र रूप में 'लोकल एक्शन तथा ग्लोबल विजन' का नाम दे सकते हैं। अर्थात् वैश्विक दृष्टि के साथ स्थानीय संसाधनों तथा युगानुकूल कार्यप्रणाली। इस कार्य में कालपी के ही उद्यमियों, विशेषकर युवकों को आगे आना होगा। प्रश्नगत अध्याय में विस्तृत चर्चा की जा चुकी है। उन पर मंथन तथा क्रियान्वयन की दिशा तय करनी होगी। इस कार्य में जाति, धर्म बीच में नहीं आता है। यद्यपि पारम्परिक शिल्पी अल्पसंख्यक समुदाय के हैं। उनका सहयोग लेकर उनके हितों को भी ध्यान में रखकर ऐसी योजना बनाई जा सकती है कि समाज के सभी वर्गों का आर्थिक स्तर सुधरे। नगर तथा क्षेत्र का नक्शा बदल जाए। उक्त विवेचन के आधार पर कुछ बातें विशेष ध्यान में रखने योग्य हैं। इस अँचल में अच्छी मात्रा में निवेश करने की क्षमता कम ही व्यक्तियों में है, अतः एक केन्द्रीय इम्पोरियम स्थापित हो, जो इन विभिन्न उद्योगों के उद्यमियों को कच्चे माल से उत्पादन तथा विपणन तक की सुविधा प्रदान करे। कुछ केन्द्रीय विभागों में यहाँ के उत्पादों की अनिवार्य खरीद लागू करे, सीधी खरीद उत्पादकों से यहीं हो, उसका अग्रिम भुगतान का अच्छा प्रतिशत यहीं मिले। वहीं इम्पोरियम

सम्बन्धित विभागों से रेट कान्ट्रैक्ट पर आदेश प्राप्त करे तथा कोई नीति बनाकर उसे लागू करे। पूर्व में ऐसा होता रहा है।

कालपी में एक बड़ा औद्योगिक संसाधन यमुना नदी में प्रचुर मात्रा में जल है। उससे पेयजल हेतु जल शुद्धीकरण संयंत्र लगाया जा सकता है। अभी तक 'रिवर्स ओस्मोसिस' तकनीक से जल शुद्धीकरण–परियोजना में अधिक जल बरबाद जाता है। इस संदर्भ में नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल का कहना है कि 'महाराष्ट्र के फलटन स्थित निबंकर कृषि अनुसंधान संस्थान में कम लागत में स्थाई जल शोधन प्रणाली में लगे वैज्ञानिकों ने, दो स्तरीय जल शोधन प्रणाली विकसित की है जो न सिर्फ कम लागत में कार्य करती है अपितु उसमें जल की कोई बर्बादी नहीं होती है और बिजली की भी आवश्यकता नहीं पड़ती है। पहले चरण में जल को चार तह के सूती कपड़े से छाना जाता है और दूसरे स्तर पर इसे मैनीफोल्ड से जुड़ी वैक्यूम नलियों से भरा जाता है, जो जल के तापमान को 600 डिग्री तक बढ़ा देते हैं जिससे जल के सभी हानिकारक जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। यहाँ सौर नलिका हीटर का भी विकास किया गया है जिससे ईंधन की आवश्यकता समाप्त हो जाती है और वह बादलों वाले दिनों में भी काम करता है। इस तंत्र के निर्माता अनिल राजवंशी का कहना है कि हम इस प्रौद्योगिकी को ग्राम स्तर पर प्रयोग करने की सम्भावनाएँ खोज रहे हैं ताकि तीस से चालीस हजार लीटर पानी को रोज पीने योग्य बनाया जा सके।' यह भारत में निर्मित एक महान उत्पाद है। इससे कालपी क्षेत्र में ग्रामीण औद्योगिक क्रान्ति आ सकती है तथा सस्ते जल संयंत्रों के लगने से कुटीर उद्योगों का जाल बिछ सकता है। यह शुद्ध पेयजल के राष्ट्रीय संकट में भी सकारात्मक योगदान दे सकता है। झाँसी तथा कानपुर का रेलवे–नेटवर्क एवं सैन्य छावनी इसको बड़ा बाजार मिल सकता है, महानगर तो हैं ही।

आजकल सरकारों का जोर पर्यटन तथा सांस्कृतिक विकास पर है। इस लक्ष्य को लेकर बड़ी नदियों के तटीय क्षेत्र में जलमार्ग से पर्यटन विकास हेतु राष्ट्रीय जलमार्ग विधेयक 2015 में, जलमार्ग से नदियों के तट पर स्थित धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थलों को जोड़ने के लिए एक विकास–योजना की कल्पना की गई है। जैसा कि पुरातन काल में होता था। इस मार्ग पर मुगल बादशाह अपनी राजधानी आगरा से कालपी होकर इलाहाबाद, बनारस, पटना के रास्ते बंगाल तक जाते रहे। इस दौर में भी वह सपना साकार हो सकता है। हमारे समय में ऐसा पर्यटन लोगों की आजीविका को बढ़ावा देगा तथा 'रॉयल ट्रेन' जैसी 'शाही राजमहल क्रूज' (जलयान) यात्रा का शाही

आनन्द दे सकता है। जहाजरानी, भूतल परिवहन तथा पर्यटन मंत्रालय ऐसी परियोजना पर विभिन्न हितधारकों के साथ वार्ता कर रहे हैं। टर्मिनल, बुनियादी नागरिक सुविधाओं, नदी–परिभ्रमण, दर्शनीय स्थलों के लिए कनेक्टिविटी पर (रेल तथा राजमार्ग से सम्बन्धित स्थल तक बसों) की चर्चा आदि कार्य प्रगति पर हैं ही। विकास के लिए इलाहाबाद, वाराणसी, पटना, गुवाहाटी, भागलपुर, कोलकाता, तेजपुर और नीमती के आसपास सर्किट की पहचान की गई है। अभी भी विदेशी पर्यटक, स्वर्णिम चतुर्भुज यात्रा के लिए दिल्ली से आगरा तथा वाराणसी अवश्य जाना चाहते हैं। उनकी यह इच्छा इस जल परिवहन के माध्यम से पूरी हो सकती है।

कालपी इस परियोजना में एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र के रूप में उभर सकता है। कालपी के उत्तर में पंचनद क्षेत्र पर्यटन योग्य स्थलों से भरा है। वह स्थल पर्यटकों की रुचि के भी हो सकते हैं (विशेष सन्दर्भ–लेख, विकास की आस में पंचनद–साप्ताहिक *ई–पांचजन्य*, दिनांक 23 अगस्त, 2015)। इस संदर्भ में एक घटना और उल्लेखनीय है। आज से लगभग 75–80 वर्ष पूर्व पं. जवाहर लाल नेहरू के मित्र तथा इंग्लैण्ड के इतिहासकार–पत्रकार एडवर्ड थामसन ने 7 मार्च 1940 को नेहरू जी को पत्र लिखकर गंगा पर (उद्गम से गंगासागर तक) एक फिल्म निर्माण करने की इच्छा व्यक्त की थी। उनके सुझाव भी माँगे थे। नेहरू जी ने इस संदर्भ में ऐतिहासिक महत्त्व का एक पत्र लिखकर सुझाव भी दिए थे जिसमें गंगातटीय ऐतिहासिक–सांस्कृतिक स्थलों के कथानकों, विभिन्न युद्धों आदि को भी 'फ्लैश–बैक शैली' में फिल्माने का सुझाव दिया था। जिसमें ऐतिहासिक, पौराणिक, भारतीय परम्पराओं को शामिल करने के अलावा इस फिल्मांकन में गंगा के साथ यमुना को भी जोड़ने की वकालत की थी तथा ब्रज की लोक–संस्कृति, नृत्यों, राधाकृष्ण के नृत्यादि के फिल्मांकन पर जोर दिया था। उन्होंने लिखा था – 'अगर आप बहुत सुन्दर और शालीन नदी यमुना का लें तो आपके मथुरा–वृन्दावन के चारों ओर सारी कृष्ण–लीला और ब्रजभाषा के मधुर गीत मिल जाते हैं। उन्होंने सुझाव दिया था कि कुम्भ के समय यह फिल्मांकन बेहतर होगा। यह कुम्भ 12 साल बाद होता है। किन्तु आवागमन की परेशानियों तथा नदी मार्ग पर प्रतिकूल मौसम को देखते हुए वह विचार स्थगित कर दिया गया था। वह योजना आज भी प्रासंगिक है, उसमें गंगा के साथ अथवा समानान्तर यमुना पर भी शानदार फिल्म बन सकती है। यह विचार किसी अच्छे भारतीय फिल्म निर्माता को जँच जाए, तो क्या कहने ? इस संदर्भ में राजनैतिक इच्छा शक्ति की भी आवश्यकता होगी।

कालपी में एक और सम्भावना है 'डॉल्फिन' सहित लगभग साठ मत्स्य प्रजातियों का 'मछलीघर' बनाने की। उल्लेखनीय है कि कालपी के उत्तर में पंचनद में डॉल्फिन मछली पाई गई है। कालपी के दक्षिण में इलाहाबाद से पहले फतेहपुर में भी डॉल्फिन मछली संरक्षण केन्द्र बनाया गया है। (विशेष संदर्भ : पंचदेव यमुना नहीं मित्र समिति इकडला की फेसबुक)। उल्लेखनीय है कि इण्टैक द्वारा दिल्ली की यमुना नदी की पारिस्थितिकी के सर्वेक्षण में वहाँ मछलियों की 63 प्रजातियाँ पाई गई हैं। पर्यटकीय दृष्टि से यह एक बड़ी परियोजना बन सकती है।

कालपी के ही एक वरिष्ठ कवि बजरंग बिश्नोई के अनुसार कालपी के लोगों में अच्छा कार्य करने की ललक तो रहती है किन्तु उसे उत्कर्ष तक पहुँचाना, उसके लिए सपना देखना, उसके प्रति आकांक्षा और समर्पण यह उनके लक्ष्य में नहीं रहता है। जैसा भाव बजरंग बिश्नोई की कविता में व्यंजित हुआ है।

इस संपूर्ण प्रयास में क्षेत्रीय हित के साथ राष्ट्रीय हित, विदेशों में देश की उत्कृष्ट छवि तथा यहाँ के उत्पादों की वैश्विक लोकप्रियता तथा विश्वनीयता बनाए रखने में स्थानीय उद्यमियों की ईमानदारी भी अपेक्षित है। पुनः *भारत–भारती* के स्वर हमारा पथ–प्रशस्त करें –

विद्या कला, कौशल्य में, सबका अटल अनुराग हो,
उद्योग का उन्माद हो, आलस्य–अघ का त्याग हो
सुख और दुख में एक–सा, सब भाइयों का भाग हो,
अन्तःकरण में गूँजता राष्ट्रीयता का राग हो।

⌘

परिशिष्ट–एक

संदर्भ–सूची

1857 का स्वतन्त्रता संग्राम और जनपद जालौन	देवेन्द्र कुमार सिंह
अकबर दी ग्रेट	डॉ. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव
अकबरी दरबार भाग–2	रामचंद्र वर्मा
अकबरी दरबार के हिन्दी कवि	डॉ. सरयू प्रसाद अग्रवाल
आइने अकबरी	अबुलफज़ल
आइने कालपी	इनायतुल्ला
आँखों देखा गदर	विष्णु गोडसे, अनुवाद–अमृत लाल नागर
ईसुरी	अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद'
उत्तर रामचरितम्	भवभूति
कन्नौज : एक झलक	उ.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, कन्नौज
कालपी दिग्दर्शन	रूप किशोर टण्डन
कालपी महात्म्य	(हिन्दी भवन, कालपी)
काव्य मीमांसा	राजशेखर
चन्देलकालीन लोक महाकाव्य आल्हा	डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त
जगनिक	अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद'
जिला गजेटियर जालौन	डी.एल. ड्रेक ब्रोकमैन
ताजुल–मासिर	हसन निजामी (अनु. इलियट)
तारीखे मुहम्मदी (अप्रकाशित पाण्डुलिपि)	बिहामद खानी (ब्रिटिश म्यूजियम)
तारीख फरिश्ता	उ.प्र. हिन्दी संस्थान
तुगलक कालीन भारत (भाग–2)	सैयद अतहर अब्बास रिज़वी
दी कामर्स विटवीन दी रोमन एम्पायर एण्ड इंडिया	ई.एच. वारमिंगटन
निषाद दर्पण	श्रीमती पुष्पा निषाद
नेचुरल हिस्टोरिया लाइजिंग	जिलानी
प्राच्य निबंधावली	डॉ. वी.वी. मिराशी
पाणिनि सूत्र	पाणिनि
पुरातन गाथाओं का नगर	डॉ. राजेन्द्र कुमार पुरवार
पूर्ण प्रदक्षिणा	सम्पादक–योगेन्द्र मोहन गुप्त
पुराणम्	पं. श्याम बिहारी मिश्र
फ्रीडम स्ट्रगल इन उत्तर प्रदेश (खण्ड–3)	ए.ए.ए. रिजवी
बावनी बलिदान	डॉ. कर्ण सिंह कुमार (सं. अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद')
बुन्देलखण्ड का लोकजीवन	अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद'
बुन्देलखण्ड की राजनैतिक प्रयोगशाला–जनपद जालौन	डॉ. राजेन्द्र कुमार पुरवार
बुन्देलखण्ड का राजनैतिक तथा साहित्यिक इतिहास	अब्दुल कय्यूम मदनी
बुन्देली और उसके क्षेत्रीय रूप	डॉ. कृष्णलाल हंस
बुन्देलखण्ड की काव्यात्मक कहावतें	अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद'

बुन्देलखण्ड की फागें	अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद'
बुन्देलखण्ड : संस्कृति और साहित्य (हिन्दी अनुशीलन विशेषांक)	डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह
बुन्देलखण्ड का राजनैतिक सांस्कृतिक अनुशीलन	डॉ. रामस्वरूप ढेंगुला
बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन	डॉ. राधाकृष्ण बुन्देली तथा श्रीमती सत्यभामा बुन्देली
ब्रह्माण्ड पुराण	गीता प्रेस
भारत के तीर्थ	रामगोपाल मिश्र
भारत भारती	मैथिली शरण गुप्त
भद्रबाहु संहिता	नेमिचंद्र शास्त्री
भारत का भाषा सर्वेक्षण	जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन
भातीय ज्योतिष	नेमिचन्द्र शास्त्री
महाभारत (आदि पर्व)	गीता प्रेस
माडर्न वर्नाकुलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान	जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन
मीर कादिर अली	बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई
मुगल रोमांसिज	चोब सिंह वर्मा
रंगों की गंध	गोविन्द मिश्र
सप्तदल	अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद'
सार्थवाह	डॉ. मोती चंद्र
साक्षी है कालंजर	डॉ. अजीत कुमार सिंह
साहित्य सौरभ	सं. बनारसीदास चतुर्वेदी
साहित्यिक श्राद्ध	अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद'
सांस्कृतिक बुन्देलखण्ड	अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद'
स्टडीज इन दी ज्योग्राफी आफ ऐंशिएंट एण्ड मेडिवल इंडिया	डॉ. डी.सी. सरकार
सर्वेक्षण रिपोर्ट–खादी ग्रामोद्योग आयोग (अप्रकाशित)	हरिबल्लभ गुप्त
शिवपुराण	गीता प्रेस
श्री देवी भागवत	गीता प्रेस
हिस्टोरियन्स आफ मेडिवल इंडिया	पीटर हार्डी
हिस्ट्री आफ मेडिवल हिन्दू इंडिया	चि.वि. वैद्य

व्यक्तिगत पत्र

क्षेत्रीय पुरातत्व अधिकारी, क्षेत्रीय पुरातत्व इकाई झाँसी का पत्र सं. 173 दिनांक–19.8.16 श्री अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद' के नाम, विषय – कालपी में किए गए उत्खनन के फलस्वरूप हाथियों के जीवाश्म विषयक रिपोर्ट

पत्र–पत्रिकाएँ

अमर उजाला, कानपुर संस्करण
कल्याण – सूर्यांक (गीता प्रेस)
कालपी कीर्ति अंक – एम.एस.वी. इण्टर कॉलेज, कालपी
देहाती (साप्ताहिक) उरई
पांचजन्य (साप्ताहिक) नई दिल्ली
लक्ष्यपथ : स्मारिका – लोगमंगल उरई
विरासत – पत्रिका (इन्टैक)
वीरेन्द्र (साप्ताहिक) कोंच
सारस्वत (सरस्वती विद्या मन्दिर इण्टर कॉलेज, उरई की पत्रिका)
सबकी खैर खबर, जालौन
संधान, झाँसी

साक्षात्कार

1. डॉ. जयश्री पुरवार
2. (डॉ.) राजेन्द्र कुमार पुरवार
3. श्री राधेरमन पुरवार
4. श्री देवेन्द्र कुमार सिंह
5. श्री सन्तोष कुमार पुरवार
6. (डॉ.) अरुण कुमार मेहरोत्रा
7. श्री गबद्दे हलवाई
8. श्री राधेश्याम गुप्ता, बताशा वाले
9. श्री प्रेमशंकर शुक्ला
10. श्री महंत जमुना दास जी वनखण्डी धाम
11. श्री मुहम्मद रऊफ, पेश इमाम, खानकाह शरीफ
12. श्री अनिल कुमार कान्हेरे, पुजारी गणेश मन्दिर
13. श्री वीरेन्द्र पाठक, पातालेश्वर मन्दिर
14. श्री पद्मकान्त पुरवार, प्रदेश अध्यक्ष, हस्तनिर्मित कागज निर्माता संघ
15. श्री नवीन गुप्ता, अध्यक्ष, हस्तनिर्मित कागज निर्माता संघ
16. श्री बजरंग बिश्नोई
17. श्रीमती रीना अग्रवाल
18. डॉ. नरेश मैहर

19. प्रकाश नारायण द्विवेदी, पत्रकार
20. श्री आर.पी. रामसखा
21. श्री बाबूलाल निषाद
22. डॉ. रामस्वरूप खरे, उरई
23. श्री रामप्रकाश पुरवार

⌘

परिशिष्ट–दो

देहाती का सम्पादकीय

(साप्ताहिक *देहाती* में यह सम्पादकीय खून की प्रतीक लाल स्याही से प्रकाशित किया गया था जिस पर ब्रिटिश सरकार ने इस समाचार को प्रतिबन्धित तथा सम्पादक–पं. बेनीमाधव तिवारी को दण्डित किया था)

"भारतीय के खून की बूँदें भारत की आजादी का घोषणा लिख रही हैं"

जहाँ में उनका आना ही मुबारक है मुबारक है।
रहें सफ में शहीदों के जो अपने खूँ में तर होकर।।

धन्य है वे आदमी जो आत्म सम्मान और आजादी के नाम पर अपने प्राणों की आहुति दे अनंत काल के लिए अमर हो जाते हैं।

हँसते–हँसते फाँसी के फंदे में अपनी गर्दन फँसा कर फट से अपने जीवन के फूल को फेंक देना और सनसनाती हुई गोलियों को गले लगाकर देश और कौम के लिए मर मिटना, ओह ! कितनी बड़ी बात है।

उनकी कार्यप्रणाली से किसी का भी मतभेद हो सकता है, उनके विचारों से कोई भी विभिन्नता प्रकट कर सकता है, पर उनकी आजादी की लगन, और उनके निस्वार्थ बलिदान की कौन सराहना न करेगा ?

खुदी राम बोस, सत्येंद्र, कन्हाई लाल दत्त और मि. टिगार्ट के धोखे में मि. डे की हत्या करने वाले गोपीनाथ साहा आदि एक श्रेणी के आदमी हैं जिन्होंने देश और कौम का नाम लेकर सरकार की सूली का स्वागत किया और 'मारना तथा मरना' ही अपना सिद्धांत रखा।

दूसरी ओर जलियाँवाला बाग के शहीद रायबरेली के कृषक किसान और जैतूँ के अकाली जत्थे आदि हैं जो नौकरशाही और नाभाशाही के गोलियों के शिकार हुए और जिनका देश और कौम के नाम पर शत्रु का नहीं किंतु अपना बलिदान करना ही अटल सिद्धांत कहा जा सकता है।

इसमें संदेह नहीं कि यदि भारत आज स्वतंत्र होता तो उसमें ऐसी हत्याएँ और बलिदान कदाचित् और कदापि न होते।

अस्तु हमें दृढ़तापूर्वक यह कहना ही पड़ेगा कि इन दोनों प्रकार की हत्याओं अथवा ख़ून के वे ही जिम्मेदार हैं कि जिनके कारण सबसे प्राचीन और संसार की सभ्यता के जन्मदाता हमारे भारत पर परतंत्रता की मुहर लगी हुई है।

हम चाहते हैं कि ऐसी हत्याएँ और खून भारतवर्ष में सदा के लिए बंद हो जाएँ और उनके बंद कराने का केवल यही एक जरिया है कि भारतवर्ष में स्वराज्य स्थापित हो जाए। परन्तु ब्रिटेन के राजनीतिज्ञों को कदाचित् इसी में मजा आता है अथवा वे भारतवर्ष की आजादी से ब्रिटेन की हानि समझते हैं। इसीलिए वे पग–पग पर भारतवर्ष की स्वाधीनता का विरोध करते हैं और प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रीति से ऐसे अनेक हत्याकाण्डों का समर्थन किया करते हैं।

भारतवर्ष की आत्मा जाग रही है। वह अपने शरीर पर के बंधन तोड़ने के लिए बेचैन है। अब वह तलवार और मशीनगनों के जोर से अधिक दिन तक गुलाम नहीं रखा जा सकता जो जोर जबरदस्ती से इन 30 करोड़ आदमियों को गुलाम रखना चाहते हैं। वे अमेरिका और आयरलैण्ड के इतिहास से आँखें कींच लेते हैं। एक कौम दूसरी कौम की हुकूमत का जुआ सदैव अपने कब्ज़े में रखे रहे यह बिल्कुल अस्वाभाविक है।

अस्तु, निसंदेह ब्रिटेन और ब्रिटिश साम्राज्य का इसी में हित है कि वह स्वेच्छा से भारत में स्वराज स्थापित कर सदा के लिए भारतीयों को अपना मित्र बना ले और नौकरशाही द्वारा होने वाले इन नित नए अत्याचारों को सदा के लिए रोक दें। मि. टिगार्ट के प्राण लेने की फिक्र, मि. डे की हत्या, गोपीनाथ साहा को फाँसी का हुक्म, अकाली जत्थे पर गोलियों की बौछार और भारत मन्त्री लार्ड ओलीबर की हाल की घोषणा ने भारतवर्ष में फिर नई समस्या उपस्थित कर दी है और प्रत्येक दिल में तहलका मचा दिया है।

हम मि. टेगार्ट के प्राण लेने के पक्षपाती नहीं, पर हम अवश्य उस शासन प्रणाली के प्राण लेने के पक्षपाती हैं कि जिसमें मि. टेगार्ट को ऐसे कृत्य करने को मौका लगता है कि जिनसे देश के नवयुवक इस हद तक उत्तेजित हो जाते हैं।

मि. डे की हत्या को जितना हम बुरा समझते हैं उतना ही बुरा हम उस हुक्म को समझते हैं कि जिनके कारण हमारे देश के युवक गोपीनाथ साहा को फाँसी दी जाएगी। यदि गोपीनाथ साहा को फाँसी न देकर ब्रिटेन

के उन राजनीतिज्ञों की बुद्धि को फाँसी दे दी जाती तो अधिक अच्छा होता कि जिसके कारण भारतवर्ष में मौजूदा शासन प्रणाली मौजूद है।

अकाली जत्थे पर गोली चलाकर नाभाशाही और नौकरशाही के सम्मिलित कृत्यों ने देश के खून को खौला दिया है। भारत मन्त्री की हाल की घोषणा ने भारतवासियों की उस आशा और विश्वास को चौपट कर दिया है कि जिसे वे मजदूर सरकार पर लगाए हुए थे।

हम ब्रिटेन के राजनीतिज्ञों से पूछना चाहते हैं कि भारतवासियों के हकों को इस तरह कुचलना और देश के वक्षस्थल को उन्हीं के खून से रँगना अंत में क्या रंग लाएगा ?

पता नहीं हमारे इस सवाल का वे क्या उत्तर देंगे ? पर हम तो संसार के इतिहास को सामने रख केवल इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि ब्रिटेन के राजनीतिज्ञ अपनी बुद्धि का यदि यों ही परिचय देते रहे और आए दिन इसी तरह भारतीयों के रक्त से भारत की ज़मीन रंजित होती रही तो भारत की आजादी की घोषणा ब्रिटेन द्वारा नहीं किंतु भारतीयों द्वारा होगी जिसे आज उनके खूद की बूँदें इतिहास के पन्नों पर लिखने जा रही है।"

⌘

परिशिष्ट–तीन

कालपी में झाँसी की रानी का युद्ध

(डॉ. आनन्द द्वारा लिखित महाकाव्य झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का सम्बन्धित अंश)

अपने अतीत पर रानी ने, उस क्षण अपनी डाली निगाह,
फिर आगे कुछ बढ़कर देखा, कल–कल कलिन्दजा का प्रवाह

फिर मुड़कर देखा एक ओर, तो दुर्ग कालपी का देखा,
जिसके ऊपर फहराता था, झण्डा विद्रोही का देखा

था श्वेत रंग से पुता हुआ, वह किला कालपी का विराट
लगता था जैसे भस्म युक्त, हो अविनाशी शिव का ललाट

कालपी बस्ती न पूछो है कहाँ पर, वीर ही पैदा सदा होते वहाँ पर
कालपी का नाम ही क्यों कालपी, काल को भी लोग पी जाते जहाँ पर

आज कोलाहल अचानक हो उठा क्यों, आग में पड़ जाय घी की आहूति ज्यों
हो उठीं चर्चाएँ घर–घर में डगर में, कालपी में लोग कहने लग गए क्यों

क्यों गगन में लाल आँधी छा गई है, किस बबंडर का सहारा पा गई है
क्यों हवा का रुख बदलने लग गया है, लोग कहते हैं कि रानी आ गई है

जो नरम थे शूर वह गरमा गए हैं, जंग का सामान लेकर छा गए हैं
तात्या टोपे तैयारी कर चुके हैं, फौज ले नब्बाब बांदा आ गए हैं

आ गए दो सौ सिपाही कानपुर के, जो उगलने लग गए अंगार उर के
बाँध बन्दूकें दुनाली तीन तोपें, आ गए राजा बुंदेला कानपुर के

हो गए शामिल अनेकों वीर बढ़ के, आ चुके थे जो प्रलय के पाठ पढ़ के
लोरियाँ बदली हुई थी लाल आंखे, पीसते थे दाँत राजा शाहगढ़ के

कन्ध केहिर पर उठाए वीर भुज थे, देव थे कोई मनो कोई दनुज थे
भार से इनके धरा थी डगमगाती, किन्तु कहने के लिए केवल मनुज थे

चल रहे सीना उठा ऐंठे हुए हैं, रण कुशलता में पले पैठे हुए हैं
देख इनके राष्ट्र का ध्वज लग रहा, यह इनके झण्डे पर गरूड़ बैठे हुए हैं

घूम कर सेना घटा सी छा गई है, धूल उड़कर व्योम तक मँडरा गई है

इस तरह से आ गई रानी कि जैसे, कौंध कर बिजली धरा पर आ गई है

युद्ध की चर्चाएँ चलने लग गई हैं, बरछियाँ घर–घर सँभहलने लग गई हैं
म्यान से बाहर निकलने को कृपाणें, म्यान के भीतर मचलने लग गई हैं

पर इधर गोरे सिपाही बढ़ रहे थे, हर गली हर रास्ते से कढ़ रहे थे
कालपी पर मृत्यु के गोले गिराते, सृष्टि का संहार करते चढ़ रहे थे

पेशवा की फौज से आगे निकल कर, आ गई रण क्षेत्र में रानी सम्हलकर
नाचती रण योगिनी सी थी समर में, पैंतरा आड़ा कभी तिरछा बदलकर

एक महफिल सी सजाई जा रही थी, दुन्दुभी रण रागिनी सी गा रही थी
हिनहिनाने जब लगे घोड़े समर में, ध्वनि मजीरों की खनक सी आ रही थी

वाद्य रण के सुन पखावज लरज रहे हैं, तार साँसों के सुरीले सज रहे हैं
जब कि टकराकर हुई झंकृत कृपाणें, लग रहा था यह कि घुँघरू बज रहे हैं।

आज कोई सामने आता नहीं था, आ गया तो लौटने पाता नहीं था
तेग रानी की लगी जिसके गले पर, कौन जिसका मौत से नाता नहीं था।

है स्वाभाविक ही सुदृढ़ बना, आकार और जिसका प्रकार
कहते हैं जिसको वीर भूमि, बुन्देलखण्ड का प्रवेश द्वार

थी कला रण की नई कौशल नए थे, तेज मुख पर बाहुओं में बल नए थे
जय शिखर तक तो पहुँच रानी गई थी, पर पुराने पेशवा के दल नए थे

घाम से वे लोग घबराने लगे थे, लू लपट में मूर्छा खाने लगे थे
खिल रहे थे फूल से रण में बुन्देले, किन्तु प्यासे कंठ कुम्हलाने लगे थे

जेठ की गरमी सही जाती नहीं थी, सह रहे थे पर सही जाती नहीं थी
जीव जल थल के उबलने लग गए थे, देश क्या दुनिया रही जाती नहीं थी

ग्रीष्म प्रकोप का वायुवेग, हो क्रुद्ध चल उठा सांय सांय
अंगार उगलती थी तोपें, गाले दगते थे धांय धांय

रवि की प्रचण्ड किरनें तप कर, भू पर बरसाने लगी आग
कोमल कलियों की क्या बिसात, जल उठा आम्र बन का पराग

विषमज्वर से सौगुना बढ़ा, धरती का तीक्ष्ण ताप मान
अपने तन की छाया तक भी, अपने तन में छिप गई आन

हो गया ठीक दोपहरी में, धरती का कण–कण लाल लाल
क्या पशु पक्षी क्या जीव जन्तु, सब हाँफ उठे जीभें निकाल

सूखे थे कण्ठ सवारों के, प्यासे घोड़े अड़ जाते थे

लू की लपेट में गोरे तन, काले काले पड़ जाते थे
दोपहरी के तपते–तपते, काली–काली पड़ गई धूप
रण त्राहि–त्राहि कर बोल उठा, सब खौल उठे तालाब कूप
यह कुछ न समझ में आता था, विधि के विधान का राग–बाग
लग रहा आग में पानी है, या पानी में लग रही आग
सह सके ग्रीष्म का ताप न जब, सूरज तक ऊपर अम्बर में
व्याकुल हो नभ से भाग चले, गिरने को पश्चिम सागर में
हर ओर चमकते थे रण में, भाला बरछी तेगा बुलन्द
रण की विभीषिका से रण में, हो गई हवा की हवा बन्द
हो गया पसीना खून एक, छूटीं वह धारें धरती में
लोहू का ऐसा वेग पड़ा, पड़ गई दरारें धरती में।
आतंक छा गया कुछ ऐसा, यह उठा धुआँ वह गिरी गाज
डर था कि समा जाए न कहीं, धरती में धरती का जहाज
आया कुछ ऐसा हलाडोल, जब रण में योधा गण मचले
रूहें मुर्दों की काँप उठीं, कबरों के भीतर कफर तलें
तोपों की भीषण मारों से, फौजें भागीं मुँह मोड़–मोड़
भय से यमुना का पानी भी, हट गया किनारा दूर छोड़
आगी की लपटें धरती से, उठ–उठ कर छूने लगीं गगन
रण से घबरा कर भाग पड़ीं, वह पंत पेशवा की पलटन
फौजें हटते ही टूट गया, पेशवा व्यूह का अग्र भाग
क्या रानी क्या तांतिया वीर, सब लौट पड़े रण भूमि त्याग
योधा जो बच–बच कर निकले, वह जा पहुँचे गोपाल पूर
रह गया जहाँ से ग्वालियर, है ठीक छियालिस मील दूर।

⌘

परिशिष्ट–चार

कालपी में लोकतान्त्रिक प्रतिनिधित्व

जालौन जनपद के लोकसभा सदस्य
(जालौन–गरौठा लोकसभा क्षेत्र)

puko o"k	fuokfpr lkln	ny	çkIr er	fudVre çR;k'kh	ny	çkIr er
¼f}lnL;h½ tkyku&bVkok						
1952	चौ. लोटनराम	कांग्रेस	151820	ज्वाला प्रसाद	असूमों	88659
	होतीलाल	कांग्रेस	121586	देवीदयाल	सो.पा.	83358
¼f}lnL;h½ tkyku&gehjiqj						
1957	मन्नूलाल द्विवेदी	कांग्रेस	230730	झन्नीलाल पाण्डेय	प्रसोपा	227224
	चौ. लच्छीराम	कांग्रेस	181864	ज्वालाप्रसाद	प्रसोपा	165998
1962	चौ. रामसेवक	कांग्रेस	100530	ज्वालाप्रसाद	प्रसोपा	65224
1967	चौ. रामसेवक	कांग्रेस	124040	चौ. फुन्दीलाल	जनसंघ	99927
1971	चौ. रामसेवक	कांग्रेस	147731	कुंजीलाल	जनसंघ	121844
1977	रामचरन दोहरे	सी. एफ.डी.	276429	चौ. रामसेवक	कांग्रेस	91154
1980	नाथूराम शाक्यवार	कांग्रेस	147400	रामसेवक भाटिया	लोकदल	130966
1984	चौ. लच्छीराम	कांग्रेस	170510	रामसेवक भाटिया	दमकिपा	117273
1989	रामसेवक भाटिया	लोकदल	164933	रामाधीन	बसपा	140417
1991	ग्याप्रसाद कोरी	भाजपा	151007	रामाधीन	बसपा	105355
1996	भानुप्रताप वर्मा	भाजपा	190464	चैनसुख भारती	बसपा	144740
1998	भानुप्रताप वर्मा	भाजपा	233727	मान सिंह वर्मा	बसपा	188087
1999	ब्रजलाल खाबरी	भाजपा	197705	भानुप्रताप वर्मा	भाजपा	184353
2004	भानुप्रताप वर्मा	भाजपा	195228	घनश्याम कोरी	सपा	168437
2009	घनश्याम अनुरागी	सपा	283016	तिलक चन्द्र अहिरवार	बसपा	271610
2014	भानुप्रताप वर्मा	भाजपा	540435	ब्रजलाल खाबरी	बसपा	258698

कालपी के विधानसभा सदस्य (उत्तर प्रदेश विधानसभा)

चुनाव वर्ष	निर्वाचित विधायक	दल	प्राप्त मत	निकटतम प्रत्याशी	दल	प्राप्त मत
1962	शिवसम्पत्ति शर्मा	कांग्रेस	17450	अग्रवाल मन्नी लाल	प्रसोपा	14025
1967	चौ. शंकर सिंह	जनसंघ	21189	शिवसम्पत्ति शर्मा	कांग्रेस	20342
1969	शिवसम्पत्ति शर्मा (मध्यावधि)	कांग्रेस	21880	चौ. शंकर सिंह	जनसंघ	18531
1974	वीर सिंह बबीना	जनसंघ	39736	शिवसम्पत्ति शर्मा	कांग्रेस	31504
1977	चौ. शंकर सिंह	ज.पा.	29926	लाल सिंह	भाकपा	28702
1980	चौ. शंकर सिंह	ज.एस.	25503	परमात्मा शरण चतुर्वेदी	कांग्रेस	22388
1985	बद्री सिंह	कांग्रेस	27660	चौ. शंकर सिंह	दमकिपा	23992
1989	चौ. शंकर सिंह	ज.द.	42116	श्रीराम पाल	बसपा	31351
1991	श्रीराम पाल	बसपा	25653	चौ. शंकर सिंह	सजपा	19570
1993	श्रीराम पाल	बसपा	54834	रविकान्त द्विवेदी	भाजपा	27664
1996	श्रीराम पाल	बसपा	47255	रविकान्त द्विवेदी	भाजपा	40685
2002	अरुण मेहरोत्रा	भाजपा	42312	श्रीराम पाल	सपा	39581
2007	छोटे सिंह बैरई	बसपा	46273	श्रीराम पाल	सपा	44143
2012	उमाकांति सिंह	कांग्रेस	64289	संजय सिंह भदौरिया	बसपा	57639
2017	नरेन्द्र पाल सिंह	भाजपा	105988	छोटे लाल	बसपा	54504

कालपी नगर पालिका परिषद् के अध्यक्ष

क्र0 सं0	अध्यक्ष का नाम	कार्यकाल
1	श्री श्रीप्रकाश जैतली	21.12.1944 से 29.08.1947 तक
2	श्री जुगराज सिंह	30.08.1947 से 18.11.1953 तक
3	श्री लल्लूराम चौधरी	19.11.1953 से 19.11.1957 तक
4	श्री रामस्वरूप गुप्त	20.11.1957 से 04.09.1959 तक
5	श्री लल्लूराम चौधरी	14.12.1964 से 29.03.1969 तक
6	श्री मुस्तफा खाँ	30.03.1969 से 05.07.1971 तक
7	श्री भीष्म पितामह	06.07.1971 से 08.11.1974 तक
8	श्री जावेद अख्तर	28.11.1988 से 18.01.1994 तक
9	श्री डॉ. राममोहन गुप्ता	02.12.1998 से 02.12.2000 तक
10	श्री कमर अहमद	03.12.2000 से 01.12.2005 तक
11	श्रीमती संतोष गुप्ता	16.11.2006 से 15.07.2012 तक
12.	श्री कमर अहमद	16.07.2012 से 2017 तक
13.	सुश्री बैकुंठी देवी	2017 से अब तक

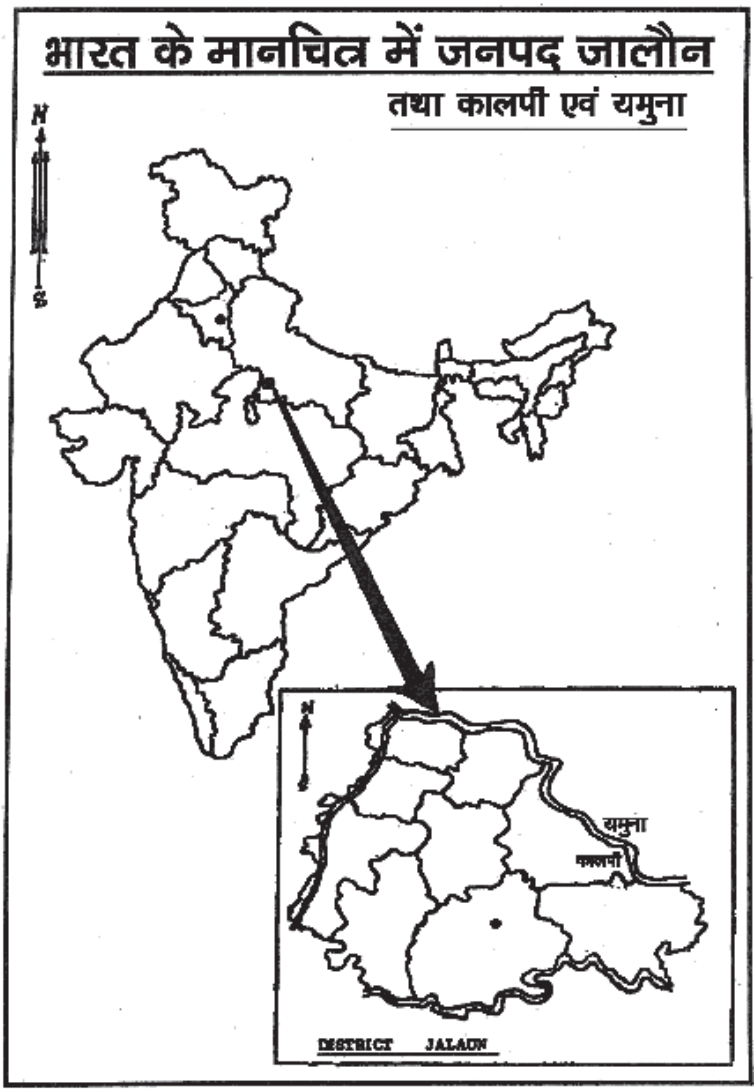
भारत के मानचित्र में जनपद जालौन
तथा कालपी एवं यमुना
N
S
N
यमुना
कालपी
DISTRICT JALAUN

परिशिष्ट–पाँच (ब)

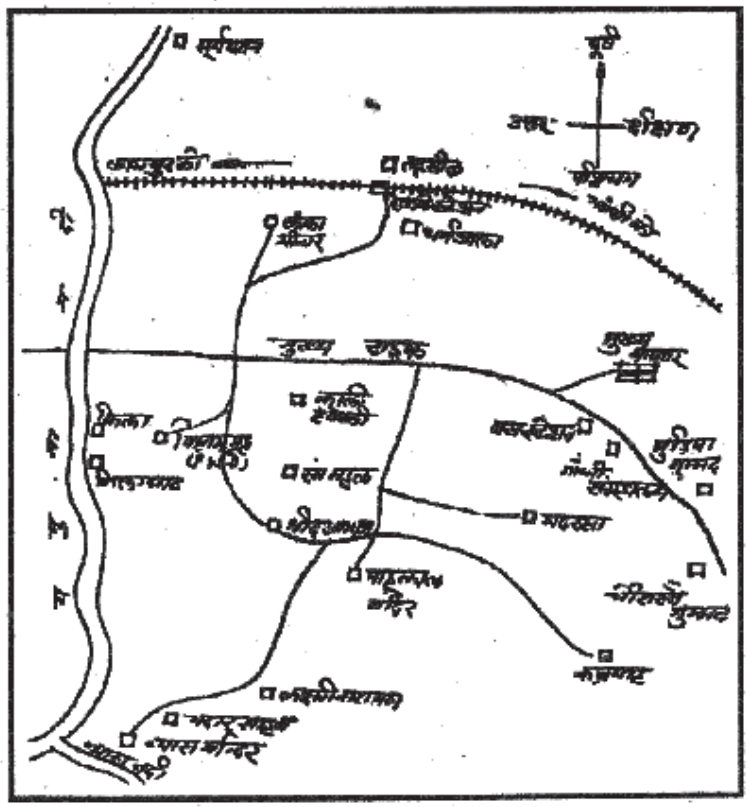

परिशिष्ट–छह

चित्रावली

आदि गणेश मन्दिर में समर्थ गुरु रामदास एवं बाजीराव पेशवा प्रथम द्वारा स्थापित गणेश विग्रह

चौरासी गुम्बद

लंका मीनार

मदार साहब का चिल्ला

धनुषधारी हनुमान

श्री बाल व्यास मन्दिर, कालपी

किला घाट

कालपी दुर्ग

खानकाह शरीफ

श्री दरवाजा

मृत्युंजय शिव, वनखण्डी धाम

गणेश जी (भोजपत्र पर स्वर्ण–रजत पत्र से निर्मित कलाकृति)

बाबा साहब मन्दिर, पंचनद (कनार क्षेत्र)

राजा बीरवर (बीरबल)

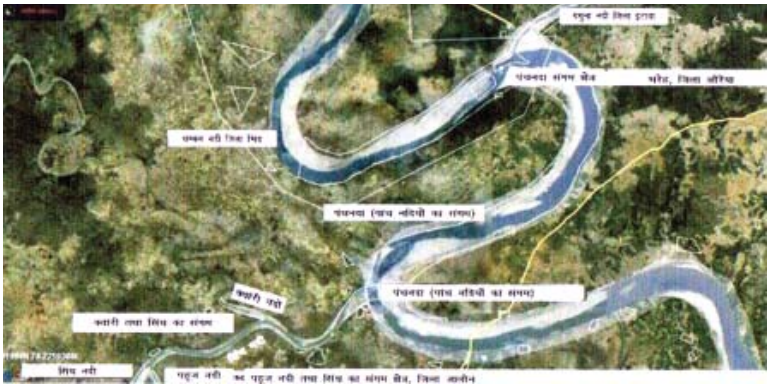

पंचनद संगम (कनार क्षेत्र)

जगम्मनपुर किला (कनार क्षेत्र)

रामपुरा किला, हैरीटेज होटल (कनार क्षेत्र)

सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र

(संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार का स्वायत्तशासी संस्थान)

एक परिचय

भारत की बहुरूपी, समृद्ध, जीवंत सांस्कृतिक परम्पराओं एवं औपचारिक शिक्षा पद्धतियों के बीच अन्तर दूर करने हेतु मई, 1979 में सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र (सीसीआरटी) की स्थापना की गई। इसका मुख्य ध्येय तथा उद्देश्य समस्त सांस्कृतिक स्रोतों को साथ रखते हुए शिक्षा पद्धति में औपचारिक व अनौपचारिक शिक्षा के सभी स्तरों को अंतर्भूत करना है। उदाहरण के तौर पर पारंपरिक कलाओं: चाक पर मिट्टी का कार्य, बांधनी काग़ज के खिलौने समेत हस्तकलाओं का प्रशिक्षण, सांचे बनाना, पुतली कला की विभिन्न विधाएँ और नृत्य एवं संगीत के बहुरंगी रूप को न केवल इतिहास तथा सामाजिक विज्ञान वरन् गणित, रसायन एवं भौतिकी विज्ञान जैसे विषयों के संग शैक्षिक माध्यम के रूप में उपयोग में लाना।

इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कई नवीन योजनाएं विकसित की गईं। कार्यक्रम के स्तर पर शिक्षा प्रशासकों एवं शिक्षक प्रशिक्षकों हेतु नियमित कार्यशालाओं; शिक्षकों हेतु अनुस्थापन एवं पुनश्चर्या पाठ्यक्रम तथा विद्यार्थियों हेतु कार्यशालाओं एवं शिविरों का आयोजन किया जाता है। सांस्कृतिक प्रतिभा तथा विद्वत्ता की पहचान के लिये भारत सरकार की योजनाओं हेतु सीसीआरटी एक मुख्य संस्थान के रूप में कार्य कर रहा है।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सीसीआरटी, सांस्कृतिक सामग्री का संग्रहण व प्रलेखन करता एवं श्रव्य-दृश्य किट तैयार करता है, जो विभिन्न विन्यासों में क्षेत्रीय संस्कृति अथवा विशिष्ट कला रूप के अध्ययन को प्रोत्साहित करता है और जिन लोगों ने इन कला रूपों की रचना की है, उनके विषय में जानकारी देता है।

एक संस्था के रूप में सीसीआरटी ने एनसीईआरटी और राज्यों के स्तर पर एससीईआरटी के साथ एक विस्तृत नेटवर्क (कार्यतंत्र) स्थापित किया है। आज इसके तीन क्षेत्रीय केन्द्र उदयपुर, हैदराबाद तथा गुवाहाटी में हैं। सीसीआरटी ने भारत के शिक्षक एवं विद्यार्थी समुदाय में राष्ट्रीय एकता तथा सांस्कृतिक पहचान के आदर्शों को सुदृढ़ करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। समृद्ध तथा विविधतापूर्ण प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक धरोहर की इस धरा पर यह आवश्यक है कि भारत में आज का युवा अपनी तथा दूसरों की समृद्ध संस्कृति के प्रति एक गूढ़ समझ तथा सराहना की भावना को लेकर पल्लवित हो। सीसीआरटी के जन्म का श्रेय श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय तथा डा. कपिला वात्स्यायन (जो क्रमश: इसकी प्रथम अध्यक्ष व उपाध्यक्ष थीं) की दूर दृष्टि व प्रयासों तथा आठवें दशक में भारत सरकार के शिक्षा, समाज कल्याण एवं संस्कृति मंत्रालय के सहयोग को जाता है।

सीसीआरटी, भारत सरकार की राष्ट्रीय सांस्कृतिक प्रतिभा खोज छात्रवृत्ति योजना कार्यान्वित करता है, जिसका लक्ष्य विविध कलात्मक क्षेत्रों में विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति प्रदान करना तथा सुविधायें उपलब्ध कराना है। 10 से 14 वर्ष के आयु समूह वाले शिक्षारत बच्चे या पारंपरिक कलारूपों से जुड़े परिवारों के बच्चे इस राष्ट्रीय सांस्कृतिक छात्रवृत्ति योजना में भाग लेने के पात्र हैं।

विभिन्न सांस्कृतिक क्षेत्रों में युवा कलाकारों को छात्रवृत्ति प्रदान करने की योजना संस्कृति मंत्रालय द्वारा सीसीआरटी को स्थानांतरित की गई है, जिसके तहत भारतीय शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत, नाट्य, दृश्य कला, लोक कला आदि क्षेत्रों में 18 से 25 वर्ष की आयु वर्ग के अधिकतम 400 युवा कलाकारों को छात्रवृत्तियाँ (निधि की उपलब्धता के अनुसार) प्रदान की जाती हैं।

सीसीआरटी संस्कृति मंत्रालय की कुछ अन्य नीतियों का भी कार्यान्वयन करता है, जैसे सांस्कृतिक पक्षों पर 400 शोध अध्येताओं को अध्येतावृत्ति प्रदान करना। इनमें 200 कनिष्ठ तथा 200 वरिष्ठ शोध अध्येताओं का चयन किया

जाता है। शोध में मुख्य बल संस्कृति के विभिन्न पहलुओं में 'गहन अध्ययन/अनुसंधान' पर दिया जाता है, जिसमें सांस्कृतिक अध्ययनों के नये उभरते क्षेत्र भी शामिल हैं।

सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केंद्र ने 1985 से सीसीआरटी शिक्षक पुरस्कार की स्थापना की है, जो प्रति वर्ष उन शिक्षकों को दिया जाता है, जिन्होंने शिक्षा व संस्कृति के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य किया हो। पुरस्कार में प्रशस्ति पत्र, प्रतीक चिह्न, अंगवस्त्रम् तथा नकद धनराशि ₹ 25000/-प्रदान की जाती है।

सीसीआरटी ने संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार की एक नई पहल के अन्तर्गत 'राष्ट्रीय संस्कृति एवं धरोहर प्रबन्धन संस्थान' की संकल्पना के अनुसार कला प्रबंधन योजना पर प्रशिक्षण कार्यक्रम भी आयोजित करने आरंभ किए हैं।

भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय ने देश के सांस्कृतिक स्थानिक भूगोल के सर्वेक्षण की महत्त्वाकांक्षी परियोजना - 'भारत का सांस्कृतिक मानचित्रण' - की पहल की है। इस परियोजना का मुख्य केन्द्र विविध क्षेत्रों के कलाकारों के वर्तमान आँकड़ों की तुलना करना व उन्हें उपयोग में लाना है। ये सूची व आँकड़े कहीं से भी लिए जा सकते हैं, चाहे कोई गैर सरकारी सरकारी संस्था हो या संस्कृति के प्रचार-प्रसार में लगी हुई भारत सरकार के अधीन/स्वायत्त संस्थाएँ-जैसे-संगीत नाटक अकादमी, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, ललित कला अकादमी, साहित्य अकादमी, क्षेत्रीय सांस्कृतिक केन्द्र, ऐंथ्रोपॉलॉजिकल सर्वे ऑव् इण्डिया या अन्य संस्थाएँ जैसे-इंटेक आदि। इनके अलावा यह अनुभव किया गया कि संस्कृति मंत्रालय को चाहिए कि वह दुर्लभ कलाओं/परंपराओं का सर्वेक्षण भी आरंभ करे ताकि इन पर ध्यान जाए तथा इनको फिर से सहेजा जा सके। इस परियोजना में न केवल आँकड़े व सूची एकत्र होंगे अपितु मंत्रालय उन योजनाओं को भी धन उपलब्ध कराएगा जिन्हें वित्तीय व सामाजिक उन्नति अपेक्षित होगी। सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र सांस्कृतिक कलाकारों के आँकड़े उपलब्ध कराने में सहायता कर रहा है। अप्रैल, 2018 में यह परियोजना इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र (आईजीएनसीए) को स्थानांतरित कर दी गई है।

संस्कृति मंत्रालय द्वारा वाराणसी में 'संस्कृति' परियोजना का नोडल एजेंसी के रूप में सहसंचालन एवं श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय की स्मृति में 'विरासत-कमला देवी' सांस्कृतिक उत्सव का आयोजन सीसीआरटी के महत्त्वपूर्ण कार्य हैं। इसके लक्ष्य एवं उद्देश्यों के बारे में और अधिक जानकारी हेतु इसकी वेबसाइट www.ccrtindia.gov.in देखी जा सकती है।

सीसीआरटी

क्षेत्रीय केन्द्र
सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र
सीआईआई (कन्फेडेरेशन ऑव् इण्डियन इंडस्ट्री) के सामने, गूगल कार्यालय के करीब
मधापुर से कोण्डापुर मुख्य मार्ग
मधापुर, हैदराबाद, आंध्र प्रदेश
पिन कोड: 500084
दूरभाष: 040-23117050, 23111918
ई-मेल : rchyd.ccrt@nic.in

क्षेत्रीय केन्द्र
सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र
3बी, अम्बावगढ़, स्वरूप सागर झील के पास
उदयपुर, राजस्थान
पिन कोड: 313001
दूरभाष: 0294-3291577, 2430771, 2430764
ई-मेल : ccrtrcud@rediffmail.com

क्षेत्रीय केन्द्र
सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र
58, जुरीपार, पंजाबारी रोड
गुवाहाटी, असम
पिन कोड: 781037
दूरभाष: 0361-2330152
ई-मेल : rc_ccrt@rediffmail.com

नगरों पर आधारित पुस्तक-शृंखला की अन्य पुस्तकें

पुस्तक	*लेखक*
चंबा	सुदर्शन वशिष्ठ
हमारा सहारनपुर	राजीव उपाध्याय 'यायावर'
चंपावत का सांस्कृतिक वैभव	इंद्र लाल वर्मा
सीकर	ओम प्रकाश चल्का
देवास	जीवन सिंह ठाकुर
सूर्यदेहा का सूरत और सूरत के हीरे	विजय सेवक
पिथौरागढ़	मोहन चंद्र जोशी
आरानामा	विमल कुमार

श्री अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद'

ओजस्वी कवि-वक्ता, भारतीय संस्कृति, पत्रकारिता तथा लोककलाओं के सशक्त हस्ताक्षर अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद' बुन्देलखण्ड के सक्षम सन्दर्भ व्यक्ति हैं। 15.07.1944 को कोंच (जालौन, उ.प्र.) में जन्म। डेढ़ दर्जन से अधिक प्रतिष्ठित सम्मान उन्हें प्राप्त हुए हैं। बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी द्वारा 'अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद' : व्यक्ति और साहित्य' विषय पर (एक शोध छात्र डॉ. रणविजय सिंह चौहान को) पीएच.डी. उपाधि प्रदान की गई है। श्री कुमुद की रचनाएँ विभिन्न शिक्षा बोर्डों यथा सी.बी.एस.ई./सी.सी.ई. द्वारा स्वीकृत हिन्दी विषय की पाठ्य-पुस्तकों में सम्मिलित हैं। लगभग पाँच दशक से जागरूक पत्रकार के रूप में मीडिया में जुड़े रहे हैं, जिनमें *दैनिक जागरण*, कानपुर तथा *यू.एन.आई./ यूनीवार्ता संवाद समिति, पांचजन्य* साप्ताहिक प्रमुख हैं। प्रबन्धन, व्यक्तित्व-विकास-प्रशिक्षण, रंगमंच, सक्रिय समाजसेवा आदि उनकी बहुआयामी क्रियाशीलता के कुछ आयाम हैं। श्रीराम वनगमन-पथ-शोध-सृजन यात्रा समिति (मध्य प्रदेश शासन) के सदस्य के रूप में दुर्गम वन-प्रान्तर की यात्रा करके सांस्कृतिक-संधान के सहयोगी बनने का श्रेय भी उन्हें प्राप्त रहा है। भारत सरकार, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश राज्यों के संस्कृति विभाग की अनेक समितियों में रहे हैं।

प्रकाशित कृतियाँ : *ईसुरी, कोंच की रामलीला, जगनिक, हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास - उत्तर प्रदेश* (सहलेखन), *मूलचन्द्र अग्रवाल-कृष्णानन्द गुप्त, मैथिलीशरण गुप्त : पचास कविताएँ, साहित्यिक-श्राद्ध, कहावतों में लोकनीति, बुन्देलखण्ड में मेला, यात्रा और उत्सव, लोकस्मृति में बुन्देलखण्ड के इतिहास प्रसंग, मध्य प्रदेश के मेले और तीज-त्योहार, जालौन जनपद की ऐतिहासिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, सुरम्य बुन्देलखण्ड, बुन्देलखण्ड की काव्यात्मक कहावतें, सांस्कृतिक बुन्देलखण्ड, भारतीय लोककलाओं के विविध आयाम, बुन्देलखण्ड की फागें, लोक-संस्कृति, बुन्देलखण्ड का लोकजीवन, सप्तदल, जालौन-जनपद, साहित्य-मंजूषा* आदि। अनेक प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक मण्डल से जुड़े रहे।

पुरस्कार तथा सम्मान : सीनियर फेलोशिप, संस्कृति विभाग, भारत सरकार, फेलोशिप, माखनलाल चतुर्वेदी विश्वविद्यालय, हैनरी गिसेनबियर फेलोशिप, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय : विशिष्ट सम्मान, विद्या भास्कर पुरस्कार, लोकभूषण सम्मान, सोनचिरैया लोककला सम्मान, अकादमी पुरस्कार, पं. रामनरेश त्रिपाठी पुरस्कार, भारतीय हिन्दी परिषद (इलाहाबाद) सम्मान, सेठ गोविन्द दास सम्मान, साकेत सम्मान, बुन्देलखण्ड गौरव सम्मान, माधवराव सप्रे संग्रहालय सम्मान, राव बहादुर सिंह बुन्देला स्मृति सम्मान, साधक सम्मान, संस्कार भारती सम्मान, लोककला रत्न आदि। श्री कुमुद के बुंदेलखण्ड संबंधी कार्यों का सम्मान करते हुए माधव राव सप्रे समाचार-पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल ने एक शोध-दीर्घा स्थापित की है-''अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद' बुंदेलखण्ड अध्ययन केंद्र''।

सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र

(संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार का स्वायत्तशासी संस्थान)

15ए, सेक्टर-7, द्वारका, नई दिल्ली-110075, भारत

दूरभाष: 91-11-25309300, फैक्स: 91-11-25088637

ई-मेल : dir.ccrt@nic.in, वेबसाइट : www.ccrtindia.gov.in